श्री आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज

आपका जन्म मंगसिर सुदी २ वि० सं० १९६० को ग्राम कोथलपुर, वेलगांव, मैसूर प्रान्त में एक जमींदार परिवार में हुआ था। आपकी पूज्य माता जी का नाम श्री अक्कावती और पिता का नाम श्री सत्य गौड़ जी था, जन्म के समय ज्योतिषी ने भविष्य वाणी की थी कि बालक महान् पुरुष होगा, आपका नाम वालगौड़ा रखा गया। तीन माह की अल्पायु में ही माता के वात्सल्य से वंचित हो गये, आपका लालन-पालन आपकी नानी ने किया, किन्तु अभी १२ साल की ही आयु हुई थी कि आपके सिर से पिता का साया भी उठ गया, कुछ दिन आप अपनी बुआ जी के पास और कुछ दिन काकाजी के पास रहे। बचपन से ही आप सच्चरित्र एवं मेधावी रहे। एक बार कोथलपुर में आचार्य पाय सागर जी महाराज पधारे और उनके सदुपदेश से आपका मन त्याग की ओर अग्रसर हो गया।

गलतगा ग्राम में आपने आचार्य महाराज पायसागर जी से सप्त व्यसन का त्याग और अष्टमूल गुणों का नियम ग्रहण किया जिसका आपने बड़ी दृढ़ता और लगन से पालन किया, आपकी इच्छा त्याग की तरफ ज्यादा रहने लगी, कुछ दिन बाद आचार्य पायसागर जी के शिष्य मुनिराज जयकीर्ति जी महाराज स्तवनिधि पधारे, जिनके प्रवचन से विरागवृत्ति बलवती हो गई और आपने महाराज श्री के चरणों में दीक्षा की प्रार्थना की

संसार की असारता से आपका मन व्याकुल हो उठा, महाराज श्री जयकीर्ति जी से सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। महाराज जयकीर्ति जी ने कुछ समय पश्चात् रामटेक जिला नागपुरमें ऐलक दीक्षा दी और बालगौड़ा से देशभूषण नाम रखा गया।

अपरिग्रह से प्रभावित हो निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनि पद की दीक्षा देने की प्रार्थना आपने गुरुवर्य से की, पूज्य महाराज जी ने सिद्ध क्षेत्र कुन्थलगिरि जी पर मुनि दीक्षा प्रदान की। मुनि देशभूषण जी संघ सहित सूरत पधारे, समाज की प्रार्थना पर वहीं पर चतुर्मास किया। महाराज की विद्वता, व्यवहार कुशलता संघ के अनुशासन आदि को देखकर समस्त समाज ने निर्णयकिया कि मुनि देशभूषणजीको आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया जाय जिससे समाज को सबल नेतृत्व मिल सके। समाज ने चतुर्विध संघ का नेतृत्व और आचार्य पद ग्रहण करने की प्रार्थना की, किन्तु आपने कहा कि पूज्यपाद आचार्य पायसागर जी महाराज विराजमान हैं वगैर उनकी आज्ञा से यह कैसे सम्भव है, महाराज पायसागर जी ने यह सुनते ही सूरत वालों से कहा कि देशभूषण इस पद के सर्वथा उपयुक्त हैं आपको सूरत में भव्य आयोजन के मध्य आचार्य पद से विभूषित किया गया। इसके पश्चात् दिल्ली की धर्म परायण जनता ने आचार्य देश भूषण जी को आचार्य रत्न की उपाधि से अलंकृत किया और गोम्मटेश्वर मस्ताभिषेक के अवसर पर एकत्रित जैन समाज के चतुर्विध संघ ने उन्हें मुख्य आचार्य घोषित किया।

महाराज श्री ने असंख्य लोगों को धर्म का लाभ दिया मद्य मांस का त्याग कराया, आपके प्रवचन से जनजीवन में धर्म प्रेम उमड़ने लगता है आपका उपदेश किसी वर्ग, सम्प्रदाय और मान्यताओं तक सीमित नहीं रहता है। धर्म सबका है आप सब के हैं।

आपने अनेक स्थानों पर मंदिरों का निर्माण कराया। तथा अनेक मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया। प्रतिष्ठायें कराई हैं। कोल्हापुर में शिक्षा कालेज, श्री अयोध्या जी में भगवान ऋषभ-देव जी का भव्य मंदिर एवं गुरुकुल, कोथलपुर का श्रीजिन मंदिर और गुरुकुल हाई स्कूल आपकी मुंह बोलती तस्वीरें हैं। सम्प्रति भगवान महावीर स्वामी के २५००वें निर्वाण महोत्सव पर दिल्ली में महावीरस्वामी की भव्य उत्तुंग खडगासन प्रतिमा के विराजमान कार्य को पूरा कराने में प्रयत्नशील हैं।

अनेक विदेशी जिज्ञासु वन्धु महाराज श्री के चरणों में धर्म लाभ लेने आते रहते हैं, व्रत नियम ग्रहण करते हैं। आचार्य श्री ने अनेक मौलिक ग्रन्थों की रचना की है अनुवाद किया है जिनकी संख्या लगभग पचास से अधिक है। प्राचीन अप्राप्य अप्रकाशित ग्रन्थों का प्रकाशन करा कर श्री जिनवाणी के प्रचार में दत्तचित रहते हैं प्रस्तुत ग्रन्थ आपके परिश्रम का ही फल है। वस्तुतः आचार्य श्री स्वयं में एक जीवित संस्था हैं नवचेतना के सूत्रधार हैं, जागरण के अग्रदूत हैं। अहिंसा अप-रिग्रह के समर्थ सन्देशवाहक हैं।

७३ वर्ष की आयु में भी आप हमेशा ध्यान, तप और साहित्य सृजन के कार्य में लीन रहते हैं। इस समय आप दिल्ली जैन समाज की प्रार्थना पर देहली में ससंघ विराजमान हैं और भगवान महावीर स्वामी के २५००वें निर्वाण महोत्सव की सफलता के लिए पूर्ण प्रयत्नशील हैं, उसी शृंखला में श्री 'भगवान महावीर स्वामी' से सम्वन्धित कई ग्रन्थों की रचना तथा सम्पादन के कार्य में संलग्न है।

आपके सरल स्वभाव से मानव के चित्त को बड़ी शान्ति मिलती है।

प्रस्तावना

"जसहर चरिउ"—यशोधर चरित्र, जैन प्रथमानुयोगका प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी मूल रचना अपभ्रंश भाषामें हुई है। इस ग्रन्थका कथानक इतना रोचक है कि इसे प्रारम्भ कर वीचमें छोड़नेको जी नहीं चाहता। यही कारण है कि इस पर सोमदेव, वादिराज, सकलकीर्ति, वासवसेन, सोमकीर्ति, हरिभद्र, क्षमाकल्याण आदि अनेक दिगम्वर, श्वेताम्वर कवियों ने अपने-अपने ढँगसे प्राकृत और संस्कृतमें अपना-अपना रचना-चातुर्य प्रकाशित किया है। इस विषयमें सोमदेवका "यशस्तिलकचम्पू" तो सर्वथा बेजोड़ ही है।

अहिंसा जैन सिद्धान्तका प्रमुख प्रतिपाद्य विषय है। इस ग्रंथके कथानकसे भी यही सिद्ध किया गया है कि राजा यशोधर ने अपनी माताके उपदेशसे प्रभावित होकर अम्बिकादेवीके लिये चूर्णनिर्मित मुर्गाका बलिदान किया था उसी पापसे उन्हें माता के साथ ही साथ सात भवोंमें अनेक दुःख सहन करने पड़े हैं। उन दुःखों का वर्णन कविने जिस प्रकार किया है उसे पढ़कर पाठक का शरीर रोमाञ्चित हो उठता है और हृदय सहसा सिहर उठता है। इस बलिदान और श्राद्धतर्पणके विषयमें स्वार्थी विप्रों द्वारा जो तात्कालिक जनता को प्रेरणा मिलती रही है उसीके फलस्वरूप उनके प्रति सहसा घृणा का भाव उद्भूट हो उठता है।

इस खण्डकाव्यके रचयिता कविवर्य श्री पुष्पदन्तजी हैं।

ये काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम केशवभट्ट और माताका नाम मुग्धादेवी था। इनके माता-पिता पहले शैव थे। परन्तु अन्तमें दिगम्बर जैन गुरुके उपदेशसे जैन हो गये थे। इनका एक नाम 'खण्ड' था। सम्भवतः उनका यह नाम घरू या बोलचालका रहा होगा। महाराष्ट्र प्रान्तमें अब भी 'खण्डूजी' 'खण्डोबा' आदि नाम अधिक मात्रामें रखे जाते हैं। 'अभिमान मेरु, अभिमान चिह्न, काव्यरत्नाकर, कविकुल—तिलक, सरस्वती निलय, कव्वपिशल्ल···ये उनकी पदवियाँ थीं। जिनका प्रयोग कविने अपने ग्रन्थोंमें जहां तहां किया है। 'अभिमान मेरु' और 'अभिमानचिह्न' इन दो पदवियोंसे उनके स्वाभिमानी होनेका पता चलता है और अन्य पदवियोंसे उनके काव्य विषयक वैदुष्यका।

अभी ग० वा० तगारे एम० ए० बी० टी० नामक विद्वान ने श्री पुष्पदन्तको प्राचीन मराठीका महाकवि बतलाया है और उनकी रचनाओंसे बहुतसे ऐसे शब्द चुनकर बतलाये हैं जो प्राचीन मराठीसे मिलते जुलते हैं अतः बहुत कुछ संभव है कि महाकवि पुष्पदन्त मराठी प्रधान प्रान्तके सम्भवतः विदर्भ (बरार) के मूल निवासी हों परन्तु उनका कार्यक्षेत्र 'मान्यखेट' नगर रहा है। निजाम राज्यका वर्तमान मलखेड़ कस्बा ही उस समयका मान्यखेट नगर है मान्यखेट नगर आगे चल-कर राष्ट्रकूट महाराजाकृष्ण तृतीयकी राजधानी रही है और यहींपर कविवर का उनके भरत मन्त्रीसे साक्षात्कार होता है। महामात्य भरतकी प्रेरणासे ही कविने अपभ्रंश भाषामें महापुराणकी रचनाकी थी। पुष्पदन्तने अपने महापुराणमें महामात्य भरतका बहुत कुछ परिचय दिया है और उनकी प्रशंसामें अनेक पद्य लिखे हैं।

अबतक इनके बनाये हुए तीन ग्रन्थोंका पता चला है—

१—तिसट्ठि महापुरिस गुणालंकारु (महापुराण), २—नाय-कुमार चरिउ और ३—जसहर चरिउ। हर्ष है कि प्रथम ग्रन्थ माणिकचन्द्र ग्रन्थमाला बम्बई से और शेष दो ग्रन्थ कारंजासे प्रकाशित हो चुके हैं। तीनों ग्रन्थोंका सम्पादन आधुनिक रीति से हुआ है। महापुराणमें त्रेशठ शलाकाके पुरुषोंका चरित है, जिसके आदिपुराण और उत्तरपुराण के भेद से दो भेद हैं। नाग-कुमार चरित में पञ्चमी के उपवासका फल बतलाने वाला नागकुमार का चरित निबद्ध है और यशोधर चरित में राजा यशोधर का पूर्व भवावली के साथ सुन्दर चरित अंकित किया गया है।

यशोधर चरितमें चार सन्धियाँ हैं। कविवरने यह ग्रन्थ महामात्य भरतके पुत्र और वल्लभ नरेन्द्रके गृहमन्त्री नन्नके लिये उन्हींके महल में रहते हुए लिखा था। यही कारण है कि कविने इसीके लिये प्रत्येक सन्धिके अन्तमें 'णण्णकर्णाभरण' (नन्नके कानोंका गहना) लिखा है।

इसकी दूसरी, तीसरी और चौथी सन्धिके प्रारम्भमें नन्न के गुण कीर्तन करने वाले तीन पद्य हैं। इस ग्रन्थकी कुछ प्रतियोंमें गन्धर्व कविके बनाये हुए कुछ क्षेपक भी शामिल हो गये हैं।

इतिहासज्ञ, वयोवृद्ध विद्वान् श्री पं० नाथूरामजी प्रेमीने अनेक प्रमाण देते हुए यह सिद्ध किया है कि शक संवत् ८८१ में पुष्पदन्त मेलपाटीमें भरत महामात्य से मिले और उनके अतिथि हुए। इसी साल उन्होंने महापुराण शुरूकर उसे श० सं० ८८७ में समाप्त किया। उसके बाद उन्होंने नागकुमार चरित और यशोधर चरित बनाये।

यशोधर चरित की समाप्ति उस समय हुई जब मान्यखेट लुटा जा चुका था। यह शक संवत् ८९४ के लगभगकी घटना

है इस तरह वे ८८१ से लेकर कम से कम ८९४ श० सं० तक लगभग तेरह वर्ष मान्यखेटमें महामात्य भरत और नन्नके सम्मानित अतिथि होकर रहे, यह निश्चित है। इसके बाद वे और कबतक जीवित रहे यह नहीं कहा जा सकता।[1]

यह ग्रन्थ स्वाध्याय करने योग्य है तथा शास्त्रसभामें सुनाने योग्य है अतः पाठकोंसे हम निवेदन करते हैं कि इसका आद्योपांत दो तीन बार पठन पाठन करें व इसका अजैन समाजमें भी प्रचार करें क्योंकि इस ग्रन्थमें अहिंसा सिद्धान्तका अभूतपूर्व वर्णन कथाके रूप है।

यद्यपि यह प्रकाशन हिन्दी भाषामें है तो भी इसमें बारह भावनाओंका स्वरूप तो मूल प्राकृत गाथा, संस्कृत छाया व भावार्थ सहित दिया गया है जो स्वाध्याय-प्रेमियोंको अधिक रुचिकर होगा।

यशोधर चरितका हिन्दी अनुवाद बहुत पहले प्रकाशित हुआ था जिसमें मूल ग्रन्थकी सिर्फ गाथा देकर बाकी अंश छोड़ दिया गया था और उसका भावानुवाद ही पुरानी हिन्दीमें दिया गया था। कुछ समयसे यह अनुवाद अप्राप्य हो गया था परन्तु उसकी मांग बनी हुई थी।

यह प्रार्थना कुछ श्रावकों ने आचार्यश्री १०८ देशभूषणजी महाराज से की और महाराजश्री ने इस सर्दी के मौसम, अस्वस्थ शरीर के बावजूद भी समय निकालकर यह कार्य पूर्ण किया। जिसको श्रीमती प्रेमवति जी जैन ध० प० स्व० श्री मदनलाल जी कागजी ने स्वद्रव्य से प्रकाशित कराकर श्री जिनवाणी का

---

१. जैन साहित्य का इतिहास पृष्ठ ३२८-३२९

प्रचार किया स्व० लाला मदनलाल जी बड़े धार्मिक स्वभाव के श्रावक थे और चारों दानों में अपनी चंचला लक्ष्मी का सदुपयोग करते थे उनकी धर्मपत्नी जी एवं उनके सुपुत्र भी पुण्य कार्य में सदैव तत्पर रहते हैं। मैं उनके परिवार को धन्यवाद देता हूँ। प्रस्तुत संस्करण बहुत शीघ्रता में प्रकाशित किया गया है अतः अशुद्धियां रह जाना स्वाभाविक है आशा है पाठक क्षमा करेंगे।

दिल्ली
वसंत पंचमी
वीर निर्वाण सं०
२५००

विनीत
वैद्य प्रेमचन्द जैन शास्त्री

भारत गौरव, आचार्यरत्न, श्री १०८ देशभूषण जी महाराज

का

शुभाशीर्वाद

"यशोधर चरित्र" के मूल रचयिता श्री पुष्पदन्त जी हैं, सोमदेव, वादिराज, सकलकीर्ति, वासवसेन, सोमकीर्ति, हरिभट्ट क्षमाकल्याण आदि अनेकों कवियों की प्राकृत और संस्कृत में हुई टीकायें इस ग्रन्थ की उपयोगिता की परिचायक हैं। वास्तव में यह ग्रन्थ जैन धर्म और अहिंसा का उपदेशक है।

राजा यशोधर को अपनी मां के उपदेश से चूर्ण निर्मित मुर्गे की बलि चढ़ाने के कारण मां के साथ ही साथ सात भावों तक अनेक दुख सहन करने पड़े थें। आज के इस भौतिक वादी युग में जबकि हिंसा का प्रावल्य है, इस तरह के धर्म ग्रन्थ अहिंसा मयी धर्म को मानव जाति में प्रचारित करने में बड़े सहायक हैं।

श्रीमती प्रेमवती ने इसका प्रकाशन कराकर जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्त अहिंसा का जो प्रचार किया उससे न केवल उनका अपितु मानव जाति का कल्याण होगा। भविष्य में भी इसी प्रकार शास्त्र दान करके जैन धर्म का प्रचार करते रहेंगे। जिसके लिये इनका परिवार आशीर्वाद का पात्र है।

ग्रन्थ के पठन पाठन से सब जीवों का कल्याण हो।

इति आशीर्वाद।

विषय सूची

तृतीय परिच्छेद

चतुर्थ परिच्छेद

॥ श्री जिनाय नमः ॥

श्री यशोधर-चरित्र

(अनुवादक कृत मंगल)

छप्पय

प्रणमि संत अरिहंत कंत शिवनंत गुणाकर।
समिकवंत वरभंत अमीवृष हंत दुखाकर॥
करम अंतकरि सुख लहंत भगवंत त्रिलोकी।
इन्द्र वृंद सेवंत मंत तुम पाद विलोकी॥
सुरनर मुनेंन्द्र नित रटतवर, चरणयुगल मम हिय वसो।
आनंद कंद मंगल सुकर, नमो नमो कर जोडिकर॥१॥

सवैया तेईसा

सिद्ध नमो त्रियमुक्ति रमों सुकुबुद्धि वमों अविरुद्ध सदाहीं।
लोक अलोक पदारथ जे अविलोक ते समये इक माहीं॥
कर्मके सूल किये निरमूल भये भरपूर सुधातम साहीं।
अक्षयनंत अखंड निशंक स्वयं निकलंक सुखामृत पाहीं॥२॥

नाराच छन्द

नमामि पर्मसूरको, उड़ाय कर्म धूरको, बताय शर्म मूरको सुभाव पोत धारिके। रखें न ग्रन्थ पास ते, द्विधर्मको प्रकाशते भौसुक्खते उदासते, कषाय योग टारिके॥ त्रिरत्न हार भूषितं हितेश बचपियूषितं न राग है न दूषितं, कुध्यानको निवारिके। सु मुक्ति पथ साधते, न जीवको बिराधते, निजात्मा अराधते, स्वतत्वको विचारके॥३॥

चौपाई

नमो सर्व उत्तम उवझाया । पाठन पठन सकल गुणदाया ।
पंडित द्वादशांग भर पूरे । हित उपदेश करनको सूरे ।।४।।
पंचवीस गुणगणके धारी । पर उपकार करैं जग तारी ।
परम धर्म दर्शावन हारे । विकथ वितथ व्याहार न धारे । ५।।

दोहा

सकल साधु प्रणमों सदा, बनवासी तप सूर ।
पंच महाव्रत पालते, सहैं परीषह भूर ।।६।।
पंच समिति त्रय गुप्तिको, पालें मन वच काय ।
मूल अठाइस गुण धरैं, शत्रु मित्र सम भाय ।।७।।
इह विध मंगल चरण कर, मंगल हो निरबाध ।
करों यशोधर चरितका, हर्ष पूर्व अनुवाद ।।८।।

श्री ग्रन्थकर्ता पुष्पदंतकविकृत मंगल

प्राकृत

तिहुवणसिरिकंतहो अइसयवंतहो अरहंतहो हयवम्महहो ।
पणविवि परमेट्ठिहि पविमलदिट्ठिहि चरणजुयल णयसयमहहो ।।

संस्कृत छाया

त्रिभुवनश्रीकांतस्य अतिशयवन्तः अर्हतः हतकामस्य ।
प्रणम्य परमेष्ठिनः चरणयुगलम् प्रविमलदृष्टेः नतशतमखस्य

भावार्थ—जो तीनलोककी लक्ष्मीका कंत, चौंतीस अतिशय युक्त, काम विमुक्त, उज्वल क्षायिकदर्शन सहित और शत इंद्रोंकर नमस्कार करनेयोग्य उस श्री अरिहंत परमेष्ठीके चरण-युगलको नमस्कारकर मैं पुष्पदंत कवि यशोधरमहाराजके चरित्रका प्रतिपादन करूंगा । इसप्रकार विघ्न निवारणार्थ मंगलपूर्वक अरिहन्त भगवानका उपकार स्मरण कर पुष्पदन्त कविने नमस्कारात्मक मंगलका प्रतिपादन किया ।

ग्रन्थ बनानेका सम्बन्ध

कौंडिन्य गौत्र रूप आकाशमें उद्योत करनेवाले दिवाकर तुल्य ऐसे वल्लभ नामक महाराजा जिनका द्वितीय नाम कृष्ण महाराज तिनके भरत नामक मन्त्रीके पुत्र नन्हके मन्दिरमें निवास करते अभिमान-मेरु पुष्पदन्त कवि ऐसा विचार करते हुए कि जो खोटे मार्गके प्रकाशक स्त्री आदि कुकथाओं सहित शास्त्रोंसे पूर्ण न हो, किन्तु धर्मवर्धिनी कोई ऐसी कथाका आरम्भ करूँ जिसके द्वारा श्रोता और वक्ता एवं दोनोंको शीघ्रतर मोक्ष प्राप्त हो।

पांच भरत, पांच ऐरावत और पांच विदेह एवं पंद्रह क्षेत्रों की धरा, दयाकी माता और कृपाकी सखी है; उनमें धर्म उत्पन्न होता है तथा उपर्युक्त पंचदश क्षेत्रोंमें पांच विदेह तो स्थिर धर्म हैं अर्थात् विदेह क्षेत्रोंमें शास्वती धर्म रीति प्रचलित रहती है, किन्तु पांच भरत और पांच ऐरावत एवं दश क्षेत्रोंमें धर्मकी न्यूनाधिकता रहती है अर्थात् कालचक्रके परिवर्तनसे धर्मका प्रकाश और व्युच्छेद होता रहता है।

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें प्रथम ही धर्मके प्रकाशक वृषभ की ध्वजाके धारक चार प्रकार देवेन्द्रोंको हर्षित करनेवाले श्रीवृषभदेव पुरुदेवस्वामी महाराजाधिराज हुए।

उन्होंने जैसा धर्मका स्वरूप प्रतिपादन किया, उसी प्रकार शेष तेवीस तीर्थकरोंने भी किया, उन्हींके कथनानुसार मैं भी जीवोंको हितकारिणी, संसारतरिणी, मिथ्याधर्म विनाशिनी और सत्यधर्म प्रकाशिनी कथाका आरम्भ करूँगा। इस कारण उपर्युक्त चतुर्विंशति तीर्थंकरोंकी गुणमाला निज हृदयमें धारण करता हूं जिससे समस्त विघ्नोंकी शांति और मनोभिलषित कार्यकी सिद्धि हो।

चतुर्विंशति तीर्थंकर जयमाला

वत्ताणुट्ठाणे जणघणदाणे पइं पोसिउ तुहुं खत्त धरु।
तुहु चरण विहाणें केवलणाणें तुहु परमप्पउ परम परु ॥१॥
अय रिसह रिसीसर णविय पाय, जय अजिय जियंगमरोसराय।
जय संभवसंभवकय विओय, जय अहिणंदणणंदियपओय ॥२॥
जय सुमइसुमइसम्मयपयास, जय पउमप्पह पउमाणिवास।
जय जयहि सुपास सुपासगत्त, जय चंदप्पह चंदाहवत्त ॥३॥
जय पुप्फयंत दंतंतरंग, जय सीयल सीयलवयणभंग।
जय सेयसेयकिरणोहसुज्ज, जय वासुपुज्ज पूज्जाणपुज्ज ॥४॥
जय विमल २ गुणसेढिठाण, जय जयहि अणंताणंतणाण।
जय धम्म धम्मतित्थयर संत, जय संतिसन्ति विहियायवत्त ॥५॥
जय कुंथुकुंथुपहु अंगिसदय, जय अर अर माहर विहियसमय।
जय मल्लिमल्लिआदाम गंध, जय मुणिसुव्वयसुव्वयणिबंध ॥६॥
शय णमिणमियामरणियरसामि, जय णेमि धम्मरहचक्कणेमि।
जय पासपासछिंदणकिवाण, जय वढ्ढमाणजसवढ्ढमाण ॥७॥

घत्ता

इह जाणियणामहि, दुरियविरामहि, परहिवि णवियसुरावलिहिं।
अणहणहि अणाइहि, समियकुवाइहि, पणविवि अरहन्तावलिहिं ॥

मूलार्थ

भोस्वामिन्! आपने छत्र धारण कर असि, मषि, कृषि, वाणिज्य और धनके दानसे प्रजा जनोंका पोषण किया। तथा तपश्चरणके विधानसे केवलज्ञान प्राप्तकर गणधरादिकों कर पूज्य उत्कृष्टपद धारण किया।

हे ऋषीश्वरोंकरनमस्कारयोग्यचरण श्रीऋषभदेव ! जयवंत होऊ ।

हे रागद्वेष और कामके विजेता श्रीअजितजिनेश्वर ! जयवंत होऊ ।

हे सांसारिक जन्म मरणादिक नष्ट कर्त्ता श्रीसंभव-तीर्थेश्वर ! जयवन्त होऊ ।

हे प्रजासमूहको आनंदित करनेवाले श्रीअभिनंदन स्वामिन् ! जयवंत होऊ ।

हे निजसुमतिसे उत्तम मतके प्रकाशक श्री सुमतिनाथ तीर्थेश्वर ! जयवंत होऊ ।

हे लक्ष्मीके निवास श्री पद्मप्रभ तीर्थेश्वर ! जयवंत होऊ ।

हे सुन्दर पसवारों सहित गात्रके धारक श्री सुपार्श्वनाथ स्वामिन् ! जयवंत होऊ ।

हे अन्तरंग शत्रुओं के दमन करनेवाले श्री अष्टम तीर्थेश्वर श्रीचन्द्रप्रभ जिन ! जयवंत होऊ ।

हे कुन्दके पुष्पसमान दांतोंके धारक श्री पुष्पदंत तीर्थेश्वर ! जयवंत होऊ ।

हे शीतलबचनभंगके प्रकाशक श्री शीतलनाथ तीर्थेश्वर ! जयवंत होऊ ।

हे कल्याणरूप किरणों कर युक्त सूर्यसमान श्री श्रेयांस-नाथ ! जयवंत होऊ ।

हे पूज्य पुरुषोंकर पूज्य श्रीवासुपूज्य तीर्थेश्वर ! जयवंत होऊ ।

हे निर्मल गुणोंकी पंक्ति के स्थानक श्री विमल जिनेश्वर ! जयवंत होऊ ।

हे अनंतानंत ज्ञानके धारक श्रीअंनतनाथ तीर्थंकर ! जयवंत होऊ ।

हे धर्म तीर्थके कर्त्ता और शांति चित्तके धारक श्री कुन्थु-जिनेश्वर ! जयवंत होऊ।

हे शांति विधायक आत पत्रके धारक श्री शांतिजिनेश्वर ! जयवंत होऊ।

हे कुन्थु आदि प्राणियोंमें दयाके धारक श्री कुन्थुजिनेश्वर ! जयवंत होऊ ।

हे दारिद्र्यनाशक, समयके रचयिता श्री अरनाथतीर्थंकर ! जयवंत होऊ।

हे मालतीके पुष्पसमान सुगन्धके धारक श्री मल्लि-जिनेश्वर ! जयवंत होऊ ।

हे सुन्दर व्रतके धारक श्री मुनिसुव्रत जिनेश्वर ! जयवंत होऊ।
हे देवेद्रों कर नमस्कार योग्य श्रीनमि जिनेश्वर! जयवंतहोऊ।
हे धर्मरूपरथके चक्की धुरा श्रीनेमिनाथ भगवान् ! जयवंत होऊ।
हे संसारपाशके छेदनेको कृपाणश्रीपार्श्वजिनेश्वर! जयवंत होऊ।
हे वृद्धिगतयशके धारक श्री वर्द्धमान जिनराज ! जयवंत होऊ।

इस प्रकार पापोंके नाशक, उत्तम देवोंकी पंक्तिकर नमस्कार योग्य, आदि अन्त रहित और कुवादियोंको दमन करनेवाले श्री अरिहन्तोंके समूहको नमस्कार कर श्री यशोधर महाराजके चरित्रका प्रारम्भ करता हूं :—

प्रथम परिच्छेद

यशोधर महाराज्य पट्टबंध वर्णन

जो अनेक द्वीप और समुद्रों कर वेष्टित और अनेक संपदाओंका स्थान ऐसे जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रमें यौधेय नामक देश है। वह देश धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष एवं चारों पुरुषार्थोंके उपकरण, जिन मन्दिर जिनबिंव आदिकी उत्पत्तिका स्थान है। वह देश प्रशस्त समस्त पृथ्वीवलयका आभरण सदृश और सम्पदाका मन्दिर है जिस देशमें जलोंके निमाण पक्षियोंके विलास युक्त अत्यन्त शोभनीय ऐसे दृष्टिगत होते हैं मानों भृकुटीके विभ्रमयुक्त कामिनियोंके समूह ही हैं।

जिस देशमें कुकवियोंकी भांति भ्रमरोंके समूह भ्रमण करते हैं क्योंकि कुकवियोंका हृदय भी श्याम है और भ्रमर भी श्याम हैं। जिस देशमें नेत्र सदृश सचिक्कण तृणोंके समूह और पुष्पफलों सहित मनोहर वनोपवन ऐसे शोभमान हो रहे हैं मानों पृथ्वीरूप कामिनीके नवीन यौवन ही हैं। जिन उपवनोंमें गोपालों कर आस्वादित, मिष्ट और स्वादिष्ट फल ऐसे दृष्टिगत होते हैं मानों पुण्यरूप वृक्षके मिष्टफल ही हैं। जिस यौधेय देशमें सुन्दर रोमावली, दुग्धपूर्ण स्तन, उन्नत गंडस्थल और गलित कपोलों युक्त गाय महिष और बैलोंके समूह विचरते हैं। जिस देशमें रस पूर्ण पौंडा साटेनि (इक्षु) के वृक्ष पवनसे कंपित होते कैसे दृष्टिगत होते हैं मानों नृत्य ही कर रहे हैं।

जिस देशमें सुपक्वशालिके खेतोंमें शुक आदि पक्षियोंके मनोहर शब्द और किसानोंकी पुत्रियोंके रमणीक गान सुनकर पथिकजन ऐसे मोहित हो जाते हैं कि आगे गमन नहीं कर सकते। इत्यादि, उस देशकी शोभाका कहाँ तक वर्णन करें।

विधाताने स्वर्गलोकसे ईर्ष्या कर मानो द्वितीय स्वर्गलोक निर्मित किया है, कि जिस देशमें धनधान्य, वन, वापिका, हर्म्य पंक्ति आदिसे सुशोभित मनोहर ग्राम नगरादि हो रहे हैं।

राजपुरनगर और राजा मारिदत्त का वर्णन

उपरोक्त यौधेय नामक देशमें श्रेष्ठ और रत्नों कर व्याप्त अति मनोहर राजपुर नामक नगरमें पवनसे हालती और नभ-स्तलसे मिलती ध्वजाओंकी पंक्ति कैसी सुन्दर भासती हैं मानों निज भुजाओंसे स्वर्ग को स्पर्शती हैं।

वह राजपुर नगर! सरस और मनोहर उपवनों कर आच्छादित ऐसा ज्ञात होता है मानों कामके सायकोंसे वीधित ही हो रहा हो। जिस नगरमें देवालयोंमें तिष्ठते कपोत युगल मनोहर शब्द करते ऐसे भासते हैं मानों भव्य जीवोंको बुलाते ही हों। जहाँ मदलिप्त कपोल गजोंके मद झरनेसे राजमार्गमें पंक हो रही हैं।

जिस नगरमें सरोवरोंके तीर वास करते हँस समूह, जलके अर्थ गमन करती प्रोषिता नायिकाओंके नूपुरोंका शब्द श्रवण कर उनके पीछे पंक्तिवद्ध गमन करते कैसे दृष्टिगत होते हैं मानों कामिनियोंके पूर्ण घटोंसे पड़ती शुभ्र जलकी धारा ही है अथवा उन स्त्रियोंका यश ही उनके पश्चात् भागमें गमन करता हो। वह राजपुर भूमिपालकी भुजाका खड्ग और खातिकाके जलसे अन्य शत्रुओंको दुर्गम है।

वह नगर शुभ्र कोटसे वेष्टित कैसा शोभता है मानो नृपतिके यशसे व्याप्त ही है अथवा जगतके सौभाग्यका पुंज

एकत्रित होकर नगर वाह्य तिष्ठा हुआ है। जिस कोटके चार द्वार मरकत मणिकी वन्दनमालाओं कर शोभित कैसे दृष्टिगत होते हैं मानो चार मुख ही हैं। जिस राजपुर नगरमें सर्व स्थान प्रति धवल मंगलीक शब्दों की गुंजार होरही है जहां दो, तीन, चार, पांच सात खनके मंदिर नवीन कुमकुमके रसकी छटासे अरुण हो रहे हैं, जिस पुरके राजमार्गमें विखरे हुए मोतियोंके कणोंपर गमन करते जाते हैं। जहां लक्ष्मीवान रूपवान धर्मनिष्ठ शांतचित्त उत्तम पुरुषोंका वास और नित्य ही विजय दुंदुभि नाद होरहा है। उस राजपुर नगर में 'मारिदत्त' नामक नृपति राज करता था।

वह मारिदत्त नृप! कोपाग्निमें दग्ध होते परमंडलके राजाओंकी मानशिखाको खण्डन करता था। जिस नृपतिके निधि तो घटधारिणी (पनहारी) समान और लक्ष्मी आज्ञाकारिणी (गृहदासी) सदृश विचरती थी।

वह मारिदत्त नृपति दान देनेमें कर्ण सदृश, विभवकर इन्द्र तुल्य, रूपकर कामदेव, क्रांतिकर चन्द्रमा, प्रचंड दंड देनेमें यमराज और अन्य राजाओंके बल रूप वृक्षोंके उखाड़नेको प्रबल पवन समान था। जिसकी हाथी की सूंढ़ समान लंबमान भुजा विमुख राजाओं को दाह उत्पन्न करनेवाला सूर्यकांति सदृश मुखमंडल, भ्रमरोंके समूह तुल्य श्याम केशावली, कपाट तुल्य विपुल वक्षस्थल, तीन शक्तियोंके पालनमें समर्थ दीर्घ नेत्र, लक्षण और व्यंजनों कर चिह्नित उत्तम गात्र और मेघ समान गंभीर शब्द था।

वह भूमिपाल धन और धान्य रक्षणमें दक्ष चातुर्यका भण्डार, तेजपुंजदिवाकर और प्रसन्न वदन था परन्तु धर्म शरण से अनभिज्ञ था। जिस मारिदत्तके परिकरमें वृद्ध मनुष्यों का यश मात्र अवशेष था अर्थात् वृद्ध पुरुष परलोकवासी हो

जानेसे उनका यश मात्र शेष था, और तरुणपुरुष गर्वयुक्त थे किन्तु समान वयस्क भट्ट योद्धा अमात्य आदि मंडल सहित क्रीड़ा करता था तथा जिसके यौवनमद और लक्ष्मीके मदकी प्रबलता थी परन्तु वहाँ एक धर्म विना प्रचुर अन्धकारका प्रसार रहता था, सो सत्य ही है कि ज्ञानके उदय विना सार-भूत शुभ मार्गका अवलोकन किसप्रकार हो सकता है ?

वह मारिदत्त, किसी समय तीव्र खुर और प्रचंड वेगयुक्त अश्वपर आरूढ़ होकर धरातल को प्रकंपित और विषम व्रण युक्त करता वायु सेवनार्थ गमन करता था। कभी २ मदलिप्त कपोल हस्तियोंपर आरूढ़ होकर उच्छलित चित्तसे अनेक भंग युक्त वनोंमें विहार करता था। किसी समय कमनीय काम-नियों के पयोधरों में दत्तचित्त होकर वनोपवनोंमें नवपल्लव युक्त वल्लरीके मंडपोंमें रमण करता था। कभी-कभी वधिकों (शिकारियों) सहित अरण्य प्रति जाकर मृगादि पशुओंके मार्ग की प्रतीक्षा करता था। कभी-कभी एकांत स्थान में स्वयं ताल बजाता और गान करता हुआ वनिताओं का नृत्य देखता था, परन्तु राज्य कार्य में अनभिज्ञ और धर्म से परान्मुख था सो सत्य ही है कि उत्तम ज्ञाताओंके संसर्ग विना धर्मकी प्राप्ति किसप्रकार होसकती है।

भैरवाचार्य का वर्णन

मन्त्री और महत्तरोंकर पूर्ण राज्य करते और प्रजाजनों का प्रतिपालन करते, महाराज मारिदत्तके धन और धान्यसे पूर्ण राजपुर नामक नगर में कापालिकाचार्य (भैरवाचार्य) प्राप्त हुए।

वह भैरव नामका आचार्य जगतको भयानक, झूठकी राशि,

समस्त अभक्ष्यका भक्षक, राजपुर नगर में भ्रमण करता अनुकूल पुरुषों को निज मार्ग (मत) की शिक्षा देता था। वह कपटवेषी रमणीक वर्णका टोपा दिये ग्रहस्थों के गृहों में हुंकार शब्द करता भिक्षाटन करता था। वह भैरवाचार्य कानों में मुद्रा धारण किये बत्तीस अंगुल प्रमाण दंड हाथसे उछालता, गले में योग वृत्ति, पगों में पावड़ी धारण करता, नृसिंगाका तड़तड़ शब्द करता, सिंहपुच्छका गुच्छा लगाये मुंहचंग बजाता, और आपको महात्मा प्रकट करता, लोकों को बिना पूछे ही अपनी स्तुति करता इस प्रकार कहता था कि—

मेरे आगे चार युग व्यतीत हो जाने पर भी मैं वृद्ध नहीं हुआ; किन्तु नल, नहुष, वेणु आदि महा प्रतापी और पृथ्वीके भोक्ता महाराजा मेरे साम्हने हुए, राम और रावणके घोर संग्राममें राक्षसोंका पतन मैंने देखा, बंधुवर्ग सहित युधिष्ठिरको देखा, और कृष्णकी आज्ञासे विमुख मानी दुर्योधनका भी अवलोकन किया। मैं चार युगोंसे जीवित हूं इसमें तुम लोग किंचित् भी भ्रम मत करो। मैं समस्त लोगोंको शांति करूंगा मुझमें इतनी सामर्थ्य है कि अति प्रचंड वेगयुक्त दिवाकरके विमानका अवरोध कर सकता हूं, चंद्रमाकी छाया को रोकता हूं, मुझे समस्त विद्या स्फुरायमान हैं किन्तु यंत्र मंत्र और तंत्र तो मेरे आगे २ गमन करते हैं इत्यादि वार्ता करता लोगोंको रंजित करता नगरमें भ्रमण करता था।

पश्चात् उसकी वार्ता समस्त नगरमें फैल जानेसे महाराज मारिदत्तके भी कर्णगोचर हुई। उस समय अति कौतुक युक्त होते हुए महाराजने अमात्य [मन्त्री] से कहा कि आप एकांत में उस गुण गरिष्ठ भैरवाचार्यके निकट जाकर नम्रतापूर्वक उसे यहां लेआओ।

मन्त्री—महाराजकी आज्ञानुसार जाकर मैं अभी उसे लेकर

आता हूं। इस प्रकार मन्त्रीने विनय पूर्वक राजाका आदेश सुनाकर भैरवाचार्यसे कहा कि अहो महात्मन्! आपके दर्शनसे महाराजके शीघ्रतर शांति हो।

भैरवाचार्य—यदि नृपतिकी ऐसी ही इच्छा है तो मैं शीघ्र गमन कर राजवंशमें शांति स्थापन करूंगा। ऐसा कह कर मन्त्रीके साथ राजदरवारमें उपस्थित हुआ। वहां तेजपुंज नारायण तुल्य महाराजको सिंहासनासीन देखा। पश्चात् भूपालने भी अनेक आडंवर युक्त भैरवानंदको देख सिंहासनसे उठकर सन्मुख जाकर भूमिसे मस्तक लगाँकर दंडवत् किया।

भैरवाचार्य—महाराजका कल्याण हो, इत्यादि आशीर्वाद देकर पुनः भैरवाचार्यने कहा—राजन्! मैं साक्षात् भैरव हूं, तेरी जो अभिलाषा हो उसे प्रगट कर, मैं पूर्ण करूँगा। इस-प्रकार श्रवण कर महाराजने प्रसन्न-चित्त होकर भैरवानंदको उच्चासनपर स्थापन कर आप उनके चरणोंमें पड़कर विज्ञप्ति करने लगे।

महाराज—स्वामिन्! मुझ मारिदत्तकी शल्य हरो, नाथ! आप सृष्टि-संहारक योगीश्वर हो, किन्तु कुल मार्गके पथिक सतत चिरंजीव हैं। महाराज, आपके चरणोंके प्रसादसे मेरे मनोभिलषित कार्यकी सिद्धि होयगी, आप मुझपर प्रसन्नचित्त हो, मैं आपका सेवक हूं, आप जो आज्ञा प्रदान करेंगे उसे शिरोधारण कर पूर्ण करूँगा।

(भैरवाचार्य मन ही मन विचारने लगा)

यह दुष्ट योगी मनमें संतुष्ट होता हुआ विचारने लगा कि मैं जो-जो उपदेश करूँगा वही मेरे इंद्रिय सुख पूर्ण होंगे और मैं जो आदेश करूँगा वही अवश्य करूँगा।

भैरवाचार्य—नृपवर! मुझे समस्त ऋद्धियां लक्ष्य मात्रामें स्फुरायमान होती हैं। मुझे सकल विद्या सिद्ध है, मैं संहार कर-

राजा यशोधर रानी अमृतादेवी के महल में क्रीड़ा करते हुये।
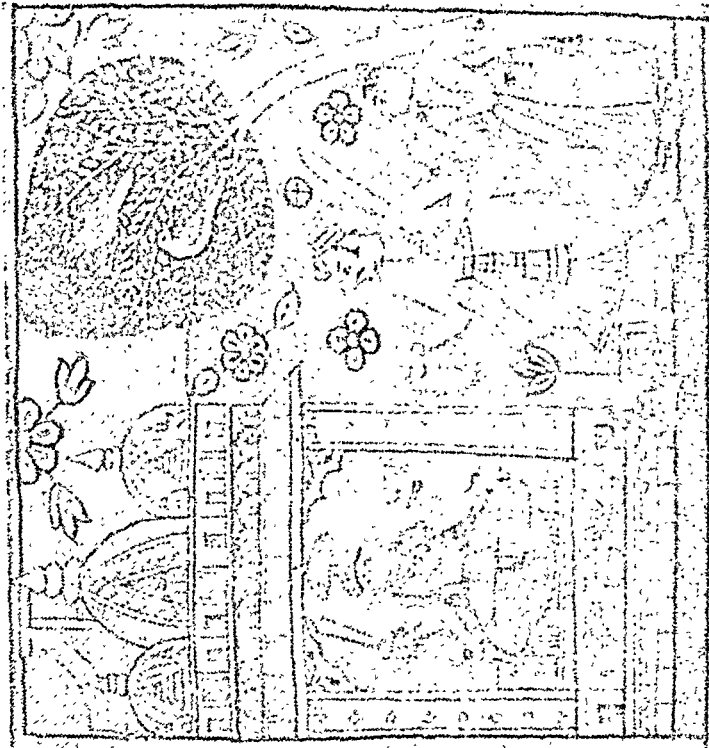
राजा यशोधर रानी अमृतादेवी चंडिका देवी के मंदिर में ।

नेमें पूर्ण समर्थ हूं, जो कोई मुझसे महान पदार्थकी याचना करता है उसे तत्काल देता हूं, मेरे निकट कोई पदार्थ अलभ्य नहीं। इस प्रकार योगीकी वार्ता सुनकर मारिदत्त महाराज कहने लगे—

मारीदत्त राजाकी आकाशगमन की अभिलाषा

राजा—देवदेव! गगनपथसे गमन करनेकी मेरी अभिलाषा है।

भैरवाचार्य—नृपवर! तू राज कुलरूप कमोदनीके प्रकाशनेको चन्द्रमा है। तू दुर्निवार शत्रुओंमें अकारण व्याख्यान दाता है। यदि निर्विकल्प चित्तसे मेरा उपदेश ग्रहण करेगा तो अवश्य तुझे आकाश मार्गमें गमन कराऊँगा।

यह सत्य ही है कि जो गृहीत्त मिथ्वात्वसे लिप्त होता है वह ज्ञानीजनोंके उपदेशको ग्रहण नहीं करता। जैसे अन्ध पुरुष सुमार्ग कुमार्गका अवलोकन नहीं करता, जैसे अंकुशकी प्रेरणासे हाथीकी सूंड सब ओर गमन करती है, उसी प्रकार भैरवाचार्यकी प्रेरणासे मारिदत्तका चित्त जीवोंकी हिंसामें तत्पर हो, सर्व ओर भ्रमण करने लगा। यद्यपि मारिदत्त भव्य है परन्तु अशुभोदयसे कुसंगति के योगसे कुमार्ग प्रति गमन करने लगा।

चंडमारीदेवी का वर्णन

अब कविकुलतिलक और सरस्वतीके आलय श्री पुष्पदंत कवि देवीके स्वरूपका वर्णन करते हैं—

वह मारिदत्त नृपके प्रचंड शत्रुओंकी विध्वंसकारिणी चंडमारी नामकी कुल देवता वेताल काल (संध्या समय) मांसका

अवलोकन करती राजपुर नामक नगरकी दक्षिण दिशा स्थित आवासमें निवास करती थी। जिस चंडमारी देवीका लंवमान नरमुंडमाला उरस्थल, वालचंदसदृश मुख, विकराल डाढ़, सर्पिणीके वंधन युक्त दीर्घ और लंवमान स्तन युगल, निःसरती अग्निकी ज्वाला सहित तृतीय नेत्र, लंवमान, रक्तसे आरक्त ललित जिह्वा, वसा (चर्बी) की कर्दमसे चर्चित कपोल भुजंगनी विनिर्मित कटिसूत्रसे व्यास कटिभाग, सर्पाच्छादित चरण युगल, श्मशानकी धूलिसे धूसरित काय, मांस रहित भयंकर अस्थि चर्म, मयूर शिखा समान कठोर और उन्नत केशावली, मृतकोंकी अंत्रावली कर विभूषित भुजा, इत्यादि महाबीभत्स रूपकी धारनेवाली चंडिमारीदेवी जीवोंको त्रासित करती हुई जिनेन्द्र मार्गका तिरस्कार करती थी।

वह देवी हिंसा मार्गको प्रगट करती, दया धर्म दूर भगाती, नग्न शरीरा, मांसके ग्रासके निगलनेको मुख उघाड़ती, कपाल कवन्ध और त्रिशूलको धारण करती विराजमान थी और उसी देवीका महाभक्त मारिदत्त राजा था।

जलचर थलचर नभचर जीवोंके जोड़के बलिदानकी आज्ञा!

भैरवाचार्य—राजन्! यदि गगनपथका पथिक वनाना हो और विद्याधर शत्रुओंको विजय कर दिग्विजय करना हो तो जलचर, नभचर और स्थलचर जीवोंके युगलका चंडमारीदेवी अर्थ हवन कर। ऐसा करनेसे तेरे समस्त कार्य सिद्ध होंगे।

नृपति—आचार्यवर्य! आपकी आज्ञानुसार कोटपालको भेजकर सर्व जातिके जीवोंके जोड़े वुलाता हूं।

इस प्रकार कहकर महाराजने कोटपालके वुलानेको अमात्य

से कहा कि कोटपालको बुलाकरसमस्त जीवोंके युगल कुलदेवता (चंडमारी) के मन्दिरमें एकत्रित करें।

अमात्य—जो आज्ञा महाराजकी। मैं अभी कोटपालको बुलाकर महाराजका आदेश सुनाता हूं।

ऐसा कहकर मन्त्रीने कोटपालके बुलानेको किंकर भेजा सो किंकर जाकर कोटपालको बुला लाया।

कोटपाल—[मन्त्रीसे] मैं आपकी आज्ञानुसार उपस्थित हुआ हूं। क्या आदेश होता है?

मन्त्री—महाराजने यह आदेश किया है कि जलचर, स्थलचर और नभचर एवं समस्त जीवोंके युगल चंडमारीदेवीके आवासमें एकत्रित करने की किंकरोंको आज्ञा दो।

कोटपाल—जो आज्ञा, अभी किंकरोंको बुलाकर जीवोंके बुलानेका आदेश सुनाता हूं।

इस प्रकार कहकर कोटपालने तत्काल वधिकोंको बुलाकर समस्त जीवों के युगल लाने की आज्ञा दी पश्चात् उन हिंसक किंकरोंने सर्वत्र घूम फिरकर समस्त जीवोंके युगल चंडमारीदेवीके मन्दिरमें एकत्रित कर कोटपालको सूचना दी पश्चात् कोटपालने आकर महाराजसे निवेदन किया।

कोटपाल—श्रीमहाराज! आपकी आज्ञानुसार समस्त युगल उपस्थित हैं अब क्या आज्ञा होती है?

इस प्रकार कोटपालका सन्देशा सुन महाराजने भैरवाचार्यसे कहा—

महाराज—स्वामिन्! आपकी आज्ञानुसार सर्व युगल उपस्थित हो गए हैं।

भैरवाचार्य—तो अब मातुश्री [देवी] के मन्दिर प्रति चलना चाहिये।

महाराज—जो आज्ञा।

ऐसा कहकर मन्त्री आदि समस्त परिकर सहित राजा चंडमारीदेवीके मंदिर प्रति जाता भया और वहां पहुँचकर देवीसे प्रार्थना करने लगा—

रुधिरसे व्याप्त और चक्र त्रिशूल और खड्ग धारण किये चंडमारीदेवीको देखकर राजा जय जय ध्वनिपूर्वक प्रार्थना करने लगा—हे परमेश्वरि ! अपने निर्मल स्वभावसे मेरे पापोंको हर।

पश्चात् मन्दिरमें स्थित अजा, सूकर, रीछ, रोझ, हिरण, कुंजर, वृषभ, गर्दभ, मेढ़ा, भैंसा, घोड़ा, ऊँट, सिंह, अष्टापद, गैंडा, व्याघ्र, शशा, चीता आदि समस्त चतुष्पद युगल; काक, कुरच, सारस, मयूर, हँस, बगुला, सूवा, मैना, चकोर, चील, बाज, लवा, बटेर और घुघू आदि नभचर युगल और मकर, मच्छ, मंडूक, गोह, सर्प आदि जलचर जीवोंके युगलोंका अवलोकन कर महाराज मारिदत्तने भैरवाचार्यसे निवेदन किया।

महाराज—स्वामिन् ! आपकी आज्ञानुसार समस्त युगल उपस्थित हैं, अब कार्यका आरंभ कीजिये।

भैरवाचार्य—राजन् ! समस्त युगल देवीके सन्मुख उपस्थित किये जावें, मैं कार्यारम्भ करता हूँ।

तदनन्तर समस्त युगल देवीके सन्मुख उपस्थित कर हवनका प्रारम्भ होने लगा।

ग्रन्थकर्त्ताकृत उपदेश

मारिदत्त नृप उस चंडमारी चंडिकाके अग्र भागमें अनेक प्रकार मृगादि समस्त जीवोंके युगलको मारता है सो वह मूढ़-मति परको मार निज जीवितव्यकी वांछा और शांतिकी कामना करता है।

विष भक्षणसे जीवितव्यकी आशा, वृषभके शृंगोंसे दुग्धकी

प्राप्ति, शिलातलमें धान्यकी उत्पत्ति, नीरस भोजनसे कांतिकी वृद्धि, उपशम भाव विना क्षमा और पर जीवोंको मारकर शांति-वृद्धि क्या हो सकती है ? नहीं ! नहीं !! कदापि नहीं !!!

(कथा प्रसंग)

वह आरक्तनेत्र अविवेकी मारिदत्त नृप जिस समय तृण-भोजी मेषादि पशुओंके घातमें तत्पर हुआ उस समय भैरवानन्द समस्त युगलोंका अवलोकन कर पुनः राजासे कहनें लगा—

भैरवाचार्य—नृपवर ! आपनें समस्त युगल तो एकत्रित किये परन्तु मनुष्य युगल तो बुलाया ही नहीं।

मनुष्य युगलकी मांग

महाराज—आपकी आज्ञानुसार मनुष्य युगलको भी मंगाता हूं।

ऐसा कहकर चंडकर्म कोटपालको बुलाकर राजाने आदेश दिया कि प्रशंसायोग्य मनुष्यका युगल शीघ्र लेकर आओ।

कोटपाल—(हाथ जोड़कर) जो आज्ञा पृथ्वीनाथकी, मैं अभी चंडकर्मा किंकरोंको आदेश देकर उत्तम मनुष्य युगल बुलाता हूं।

ऐसा कहकर कोटपालने चंडकर्मा किंकरोंको बुलाकर कहा—अति मनोज्ञ मनुष्य युगलको लाकर शीघ्र उपस्थित करो।

किंकर—(मस्तक नवाकर) आपके आदेश पूर्वक शीघ्रतर यत्र तत्रसे मनुष्य मिथुनको लाकर आपके निकट उपस्थित करते हैं।

श्रीसुदत्ताचार्य और क्षुल्लक युगलकी प्राप्ती

तदनन्तर अनेक चण्डकर्मा किंकर नरयुगलको खोजमें नदीतट सघन, अरण्य, नगर, उद्यान, वन, उपवन, पर्वत, और गुफा आदिमें गमन करने लगे।

वहां उस हिंसाके अवसरमें वृक्षोंकी शाखाओंसे सघन और शुक, मयूर, कुरचोंके समूहसे पूर्ण पार्थिवानन्द नामक वनमें संघ सहित सुदत्त नामक आचार्य प्राप्त हुए।

उस पार्थिवानन्द वनमें आरक्त-शुक-चंचुके चर्वणसे जर्जरित आम्रमंजरी कैसी दृष्टिगत होती थी मानों कामीजन कर मर्दित व्यभिचारिणी नायिका ही हो। जिस मनोहर बनमें कोमल वल्लरी के रसका रसिक भ्रमर वेलको स्पर्श करता कैसा ज्ञात होता था मानो नगर-नायिकामें लुब्ध मदन की पीड़ामें पीड़ित नीच पुरुष ही है।

उस रमणीक उद्यानमें सरस, सुकोमल और विकसित पुष्प-कलिका युक्त मालती लता कैसी शोभा युक्त दृष्टिगत होती थी मानो कामरस युक्त कोमल और पुष्प विगुंफित केयूर युक्त नव वधू के वाहु युगल ही हैं।

जिस वनमें पवन प्रकंपित सार वृक्षकी शाखापर पुंजीभूत पुच्छके गुच्छा सहित मयूर कैसी शोभायुक्त प्रतिभासित होता था मानो वनलक्ष्मीके चमरका विलास ही हो। जहां स्वच्छ जलपूर्ण सरोवरके तटों पर विचरते पुष्ट गात्र चकवा युगल, रस पूरित और नवीन कमल खण्ड निज चंचुसे हंसिनीके मुखमें देते हंस-समूह, अत्यन्त शोभायुक्त दीखते थे।

जहां केतकीके पुष्पकी सुगन्धमें मग्न और केतकी के कंटकोंसे भग्न शरीरभुजंग विरक्ता स्त्रीके नखों से विदीर्ण कामी पुरुषकी

क्षुल्लक अभयरुचि और क्षुल्लिका अभयमति ।
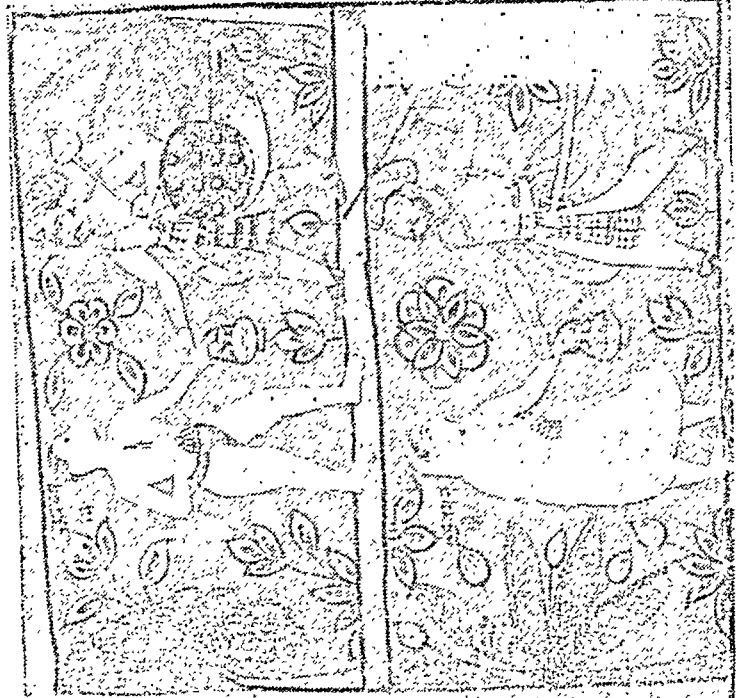
मारिदत्त के नौकर क्षुल्लक युगल को बलि देने ले जा रहे हैं।

भांति प्रतिभासित होता था। जहां स्त्रीकी बीणाके शब्दमें लुब्ध निकट तिष्ठे मृग-समूह हरित तृणोंका भक्षण नहीं करते थे किन्तु बधिकके बाणोंको खाकर जिह्वालंपटी दुष्ट जीवोंके भक्ष्य बन जाते थे।

जिस वनमें यक्षिणी देवियोंके शरीरकी सुगन्धतासे मदोन्मत्त हस्ति-समूह हथिनियोंकी खोजमें इतस्ततः भ्रमण करते कैसे दृष्टिगत होते थे जैसे संकेतके अनुसार गमन करती नायिकाकी बाट प्रतीक्षा करते व्यभिचारी पुरुष भ्रमण करते हैं। उसी मनोहर वनमें संघ सहित श्री सुदत्ताचार्य प्राप्त हुए।

मदनके अन्त करनेवाले श्री सुदत्ताचार्यने उस वन का अवलोकन कर इस प्रकार कहा कि यहां पत्र और फलोंका विध्वंश होता है इस कारण इस बन में सम दम और यमी सत्य पुरुषोंको निवास करना योग्य नहीं है।

तत्पश्चात् उग्र तपसे दीप्यमान आचार्यवर्य्य यमस्थान तुल्य श्मशान स्थल प्रति पहुंचे। वह श्मशान स्यालिनी कर बिदारित उदर-मृतकोंके समूह और अति भयंकर शब्द करते काक और गृद्ध पक्षियोंसे व्याप्त हो रहा था। वह स्मशान निष्फल पलाश वृक्षोंके शुष्क पत्रों, तथा राक्षसोंके मुख से निकलते उष्ण श्वास और शूली दिये मृतकों के कलेवर से अत्यंत भयंकर था॥

वह स्थान चोरोंके समूहसे व्याप्त और मांसभक्षी पक्षियों तथा निशाचरोंके किलकिलाट शव्दसे प्रतिध्वनित हो रहा था। वह स्थल चिताकी अग्निमें निक्षेपण किये श्याम केश-समूहके संयोगसे निःसरती धूमकी गन्धसे पलायमान श्वानोंसे आच्छादित था।

उस स्मशानके किसी स्थलमें उत्कट पवनकर प्रेरित चिताकी भस्म उड़ रही थी। किसी स्थलमें भग्न-भाजन और मृतमनुष्योंके कपाल पड़े हुए थे। उस भयवान् स्थान प्रति इन्द्र, चन्द्र और

नागेन्द्रों के समूह कर स्तुति योग्य मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका एवं चतुर्विधि संघ सहित श्री सुदत्त नामक आचार्य प्रासुक और पवित्र-शिलाओं पर तिष्ठे। वह मुनि-संघ जीवोंकी दया में तत्पर महा तपश्चरण करते, शरीरका शोषण करता था।

वहां स्मशान स्थलमें जिनदीक्षाका प्रतिपालन करते हुए, क्षुल्लक युगल कामदेव नाशक परम ईश्वर गुरुको देख नमस्कार कर उनसे पूछकर भिक्षाके अर्थ गमन करते भये।

वह क्षुल्लक युगल! विविध लक्षण युक्त गात्र, प्रहर्षित बदन कमलदलनेत्र, जिन चरणोंका भक्त, विषयोंसे विरक्त, पाप मल और मदकर त्यक्त, जैन धर्ममें पूर्ण आसक्त, निज गुणोंसे महान्, निज शरीरकी कांतिसे दिवाकरको आच्छादित करता, करमें पात्र धारण करता, मदचक्रका विजेता, नगर प्रति गमन करने लगे। उस समय निर्मल और तीक्ष्ण खड्ग हाथ में लिये पाप कर्ममें तत्पर चंडकर्मा किंकरोंने इस बालवय क्षुल्लक युगल को देख मस्तक धुनते इस प्रकार कहा—

किंकर—अहो हो हे बालयुगल! खड़े रहो, तुम्हारा मिलना अति कष्टसाध्यथा सो सहजमें मिल गए। ऐसा कहकर क्षुल्लकके निकट पहुंच गए। वहां दुःख नाशक, पापविघातक, सुन्दर गात्र और लावण्यपूरित शरीर क्षुल्लकको देख चंडकर्मा परस्पर वार्त्तालाप करने लगे।

एक—भ्रात! सत्य कहना, यदि लोकमें खोज करते तो भी कहीं ऐसा रूपवान् युगल मिल सकता था? कदापि नहीं।

दूसरा—मित्रवर! इसके ले चलनेसे महाराज पारितोषिक तो अवश्य ही देंगे। भाई, इसके हस्तपाद कैसे सुकोमल हैं? इनका सौम्य वदन कैसा हृदयग्राही है? अब शीघ्र इसे लेकर चलो, विलम्ब का समय नहीं।

तीसरा—भई देखो तो सही, हम तुमने इनको घेर भी लिया

है परन्तु मुखमंडलपर किंचित् भी म्लानता नहीं दीखती।

अन्य—भाई ! तुम भी निरे मूर्ख ही हो, कहीं धैर्यवानोंका विपत्ति में कभी म्लान मुख होता है ? कदापि नहीं।

अन्य—अरे भाई ! तुम सबके सब उत्तम श्रेणी के मूर्ख हो क्योंकि जैसे तैसे तो ईप्सित वस्तु का लाभ हुआ तिसपर भी अपनी २ गप्प हांक रहे हो और व्यर्थ विलम्ब करते हो। अब इसे शीघ्रतर चण्डिकाके मन्दिर प्रति ले चलो।

इस प्रकार समस्त किंकर क्षुल्लक युगलको घेरकर पशु कुल-कलित और स्त्रियोंके नृत्यसे पूर्ण पृथ्वीके तिलक सदृश चंडिकाके मन्दिर प्रति ले गए।

इस प्रकार रौद्रभाव युक्त किंकरोंने भृकुटीके विक्षेपसे वचन कहकर अपने शरीरकी किरण मालाकर स्फुरायमान त्रिभुवनके चन्द्रमा बाल युगल (क्षुल्लक युगल) को निज करपल्लवमें धारण किया।

जिस समय चण्डकर्मा किंकरोंने क्षुल्लक और क्षुल्लकी को हाथसे पकड़कर मनुष्योंको भयकारक मस्तक छेदनेका शब्दोच्चार किया, उसे श्रवणकर मदन विजेता अभयकुमार नामक क्षुल्लक महाराजने पुण्यफल की लता निजभगिनीको इस प्रकार सम्बोधन किया।

क्षुल्लकका क्षुल्लकी को संबोधन

क्षुल्लक—भगिनी ! इस अवसर में मरणकी शंकाकर किंचित् भी भय न करना किन्तु भगवान वीतराग अरिहंत देवको निज हृदय-पंकजमें स्थापन कर इसप्रकार विचार कर कि पूर्वभवोंमें जो अशुभ कर्मोंका संचय किया है उसके उदयसे शारीरिक कष्ट अवश्य होता है, इस कारण कोई भी मेरे शरीर का छेदन, मर्मका

भेदन करो, मेरे गात्र से रस, मज्जा, वसा, और रुधिर का पान करो, मांसका भक्षण करो, ग्रीवा भग्न करो परंतु चिरकालसे जो शांति भावका अभ्यास किया है उसी के अनुसार चित्तको शांति करो ऐसा करनेवाले मुनिजन अष्ट गुण वशिष्टदेव पर्यायको प्राप्त हो जाता है ।

कन्ये ! कोई रुद्र नृप तथा क्षुद्र किंकर यदि हमारे पौद्गलिक शरीरका घात करें तो करो किन्तु वे ज्ञानपूर्वक हमारे आत्मा का घात नहीं कर सकते। इस अवसर में जैनधर्मके ही शरणका अनुसरण करना योग्य है ।

इस प्रकार निज भ्राता क्षुल्लकके उपदेश पूर्ण वचन सुनकर वह चन्द्रमुखी क्षुल्लकी इस प्रकार कहने लगी—

क्षुल्लकी—भ्रातृवर ! आपने जो जिन सूत्रानुसार निर्मल और पवित्र उपदेश किया वह सर्वथा योग्य है । मैंने आपके कथनके पूर्व ही यह विचार कर रक्खा है कि मेरे इस नाशवान् शरीरका कोई भी घात करो किन्तु मैं निज जीवितको जीर्ण तृण समान गिनती हूं । मैंने चिरकालसे जो उपशमका अभ्यास किया है उसी को जिन हृदयमें धारण कर कर्मोदयके फल का भोग करूंगी ।

इस उपर्युक्त प्रकार भगिनी भ्रात (क्षुल्लकी-क्षुल्लक) परस्पर वार्तालाप करते जिनेन्द्रका स्मरण करते दोनों, यमराज समान रुद्र पदातियों द्वारा भैरवानंदके कुटुम्बको आनन्दकारक कात्यायिनी देवीके मंदिर प्रति ले जाये गये ।

भैरवाचार्य और देवीका राक्षसी स्वरूप

जिस मंदिरमें वह भैरवाचार्य महाध्वनि करता, धनुष उठाता लोह दंडको घुमाता, लंबमान मयूर पुच्छके गुच्छोंकर सुशोभित

वस्त्रोंको और लोह पीतलके आभरणोंको धारण करता, कटिमें वस्त्र लपेटे हाथमें तीक्ष्ण छुरिको लिये निज गुरुके भावको प्रगट करता, अपना महत्व दिखाता, समस्त अंगमें मृग चर्म लपेटे पगों और कटि भागमें बंधे हुए घुंघुरुओंसे झनकार और थप-थप शब्द करता और निज केशोंको खोले हुए पिशाच समान अष्टांग विवृत भ्रमणसे पूर्ण मांस भक्षी सदृश, चंडिकाके चरित्रका गान करता, नृत्य करता, अपूर्व दृश्य बना रहा था।

उसी समय चंडिका निवासमें आरक्तनेत्रा, भयानक गात्रा, योगिनी शाकिनी और डाकिनियोंके समूह मुखमें मस्तक खंड धारण किये नृत्य करती थी। वह देवीगृह पशुओंके रुधिरसे सींचा पशुओंकी अस्थियोंकी वंदन माला लटकती, पशुकी जिह्वामय पात्रसे पूजन विशेष होता, पशुओंकी वसा (चर्बी) करपूर्ण दीपक का प्रकाश होता, और पशुचर्मके चन्दोवासे व्याप्त था इत्यादि अपूर्व दृश्ययुक्त देवीगृहमें योगिनी अनेक क्रीड़ा करती महाभयानक दृश्य दिखा रही थीं।

सिंहकी भांति आसन लगाए, डाढ़से भयानक, मेघमें विद्युत सदृश सुशोभित, गजराज सदृश दंतोंके अग्रभाग कर उग्र खड्ग सहित और मांस लोलुप नरनाथ (राजा) उस देवीगृहमें विराजमान था।

देवी-गृहमें स्थित महाराजा मारिदत्तने समागत शांतिमुद्रा-युक्त अभयरुचिकुमार क्षुल्लक और चन्द्रमुखी क्षुल्लकीका अवलोकन कर खड़े होकर हाथ जोड़ इस प्रकार शब्दोच्चार किया —

——

महाराज का क्षुल्लक युगलको आशीर्वाद

नृपति—श्रीमान् क्षुल्लक महाराज और क्षुल्लकीजीको सविनय नमस्कार हो।

क्षुल्लक युगल—भो शुद्धवंशकी लक्ष्मीरूप कमलिनीके हंस ! भो राज गणेश ! भो गुण श्रेणियुक्त योगिराट् ! भो स्नेहपूर्ण दाता ! भो फलयुक्त वृक्षवत् नम्र, भो कलाकुल कलित कला-धर ! भो जल पूरित समुद्र तुल्य गंभीर ! भो राजन् ! आपको धर्मवृद्धि हो ।

इस प्रकार पूर्ण निशाकरतुल्य वाल युगलका शांति पूर्ण आशीर्वाद श्रवणकर महाराज मारिदत्तके हृदयका समस्त रोष विसर्जन हो गया । उस समय महाराज निज हृदयमें विचारने लगा—

अहा हा ! क्या ही अनुपम रूप विधाताने निर्मापित किया !

धन्य है यह सरल सुकोमल अंगुली और दीप्यमान आरक्त नखों से पूर्ण हस्त पाद युगल गुंफमान और सुगोल जानु, कदलीवत् जंघा सिंहकटिको लज्जित करता कटिभाग, गम्भीर और दक्षिणा वर्तिनाभि युक्त कृश उदर, उन्नत और विस्तीर्ण वक्षस्थल, रेखात्रय युक्त शंखवत् पुष्ट ग्रीवा, पूर्ण निशाकर तुल्य वदन, आरक्त कमल तुल्य नेत्र युगल, लम्बमान दीर्घ कर्ण विंवाफल सदृश रक्त अधर, शुकनाशावत् नाशिका, कुटिल भृकूटी, उन्नत कपोल, अर्द्ध चन्द्र सदृश राजपट्ट योग्य उन्नत ललाट, और भ्रमरवत् श्याम केशावली युक्त गात्र, क्या ही अपूर्व शोभा सहित शोभमान हो रहा है । इत्यादि और भी महाराज मारिदत्त विचार करने लगे—

महाराज मारिदत्त आश्चर्य-सागरमें

हा ! दुष्ट विधाता, ये दोनों सुकुमार वालक कहां आ गए ? क्या सामुद्रिकके अनुसार इन्होंने स्वजनोंके सुखका जो त्याग किया सो समुद्र पर्यंत पृथ्वीका भोग क्यों न किया ?

ये दोनों बालक आनंद युक्त, प्रशंसा योग्य. विद्याधरोंके इन्द्र अथवा नागेंद्र पाताल भेदकर आए हैं ! या इस मध्यलोककी लक्ष्मीको देखनेके अर्थ स्वर्गपुरसे सुरेंद्र या प्रभाघन चंद्रमा आया है ! अथवा बालकका वेष धारण कर मुरारि महादेव और काम-देव इनमेंसे कोई आए हैं। या परिग्रह भंग और लिंग रहित कोई अन्य देव हैं। या अव्यक्त रूप धारणकर धृति, धैर्य, क्रांति, कीर्ति, लक्ष्मी, शांति, शक्ति, और सिद्धिकी पृथ्वी है ! वा यशका स्थान, गुणोंकी श्रेणि, दुःखनाशक कवियोंकी वाणी, और पुण्यकी भूमि है ! यह उपशांत वदन शांति मूर्ति चंडमारी देवी ही क्या मनुष्य का रूप धारण कर मेरी भक्ति की परीक्षा करनेको यहां आई है अथवा मेरे कोई सम्बन्धी दीक्षा ग्रहण कर संसारके अंत करनेको यहाँ उपस्थित हुए हैं ? इत्यादि चितवन करते महाराज मारिदत्तने पुनः प्रगट रूप से क्षुल्लकसे प्रश्न किया।

महाराज—अहो महानुभाव ! आप कौन हैं ? क्या राज्य-भ्रष्ट होकर शत्रुओंके भयसे नगर तज भागते हुए यहां आए हो या कहींके राजपुत्र हो जो रुष्ट होकर गुप्त रीतिसे वेष पलट यहां उपस्थित हुए हो और यह शांति मूर्ति महारूपवती कुला-नंददायिनी कन्या किसकी पुत्री है ? अहो ! इस बाल्यावस्थामें व्रत पूर्वक दीक्षा, घर पर घर भिक्षा और महान् गुणोंकी परीक्षा एवं एकसेएक अद्‌भुत दृष्टिगत होता है इत्यादि कहते हुए और भी कहने लगे—

भो कुमार ! भो मुने ! ! इस हमारे शुद्ध और कीर्ति गृह-स्वरूप श्रेष्ठ नगरमें इस कुमारी सहित आप किस प्रकार पधारे, यहअपना पापनाशक औरसुखदायक कथांतरप्रतिपादन कीजिये।

महाराज मारिदत्त के इस प्रकार वचन सुनकर नृपतिके हर्षोत्पादक क्षुल्लक महाराज इस प्रकार कहने लगे—

——

क्षुल्लक द्वारा महाराजको सम्बोधन

क्षुल्लक—राजन् ! जैसे अंधेके आगे नृत्य, बधिरके सन्मुख उत्तम गान, ऊषर खेतमें बीजका बोना, नपुंसक पुरुष प्रति तरुण बालाके कटाक्षोंका निक्षेपण, लवण रहित विविध प्रकार व्यंजन, अज्ञानियोंमें तीव्र तपका आचरण, निर्बलकी शरण, शुभ ध्यान रहित किन्तु अति रौद्र सहित पुरुषके समाधिमरण, निर्धनका नवयौवन, कृपणका धन संचय करना, निःस्नेहीमें कामनीय कामिनीका रमण, अपात्रको दान, मोहरूप धूलसे धूसरित मनुष्यको धर्मका व्याख्यान, दुष्टस्वभावी पुरुषसे गुणोंका कथन, और अरण्यमें रोदन जैसे वृथा है उसी प्रकार आपके सन्मुख आपका चरित्र कहना व्यर्थ है। क्योंकि—

जो गुरु मस्तकमें शूल समान जिनेन्द्रके प्रतिकूल पुरुषके निकट शुद्ध वचनों द्वारा परमागमका कथन करता है वह शुद्ध घृत और दुग्धको सर्प के मुखमें देकर उसका विनाश करता है।

क्षुल्लक महाराज और भी कहने लगे—राजन् ! जैसे मूर्छित पुरुषको शीतल जल और पवनसे सचेत किया जाता है उसी प्रकार उपशांत पुरुषको धर्मोपदेश दिया जाता है परन्तु जैसे शुष्क वृक्षका सींचना व्यर्थ है उसी प्रकार अविनयीको सम्बोधना भी व्यर्थ है।

नृपवर ! मेरा जो कथांतर है वह धर्म विद्याका उपदेश है वही उत्तम पुरुषोंके श्रवण और पूजन योग्य है इस कारण यदि मेरे चरित्रका श्रवण करना चाहो तो शांतचित्त होकर श्रवण करो।

इस प्रकार अभयरुचि कुमार क्षुल्लकके वचन सुनकर उपशांत हृदय होकर महाराज मारिदत्तने भंभा, भेरी, दुन्दुभि और प्रचंड डमरुके शब्दोंका निवारणकर मनुष्योंके किलकिल

कलकल शब्दको भी बन्द कर दिया। पश्चात् हिंसाके विनोदका निराकरण कर विनय पूर्वक क्षुल्लक महाराजसे पुनः प्रार्थना करने लगे—

मारिदत्त—हे दयापालक ! हे स्वामिन् ! आपकी आज्ञानुसार इस समय समस्त सभा स्तब्ध हो रही है। श्रमणेश ! देखिये, सर्व मनुष्य विनय युक्त आपकी वाणीकी अभिलाषासे कैसे बैठे हुए हैं। मानों प्रवीण चित्रकारके रचे हुए चित्र ही हैं। अब आप अपने चरित्रका प्रतिपादन कीजिये।

क्षुल्लक—नृपवर ! यदि आपकी पूर्ण अभिलाषा है तो मैं अपना चरित्र कहता हूँ, उसे एकाग्र चित्तसे श्रवण करो।

(इस प्रकार कहकर क्षुल्लक महाराज अपने चरित्रका वर्णन करने लगे)

क्षुल्लक युगलका चरित्र

क्षुल्लक—पृथ्वीपाल महाराज मारिदत्त ! दुष्ट श्रुतानुभूत रहस्य आपके सन्मुख वर्णन करता हूं अर्थात् इसी जम्बूद्वीपके भरत-क्षेत्रमें पृथ्वीका तिलक अवन्ती नामक देश है।

उस अवन्ती देशकी धरा, ऋद्धि सम्पदाका वर्द्धमान ग्रामोंसे विपुल आरामोंसे लक्ष्मीके सखा ऐसे सरोवर गत कमलोंसे और कंठमें है कलरव जिनके ऐसे हंस मयूरों कर शोभमान है।

हे अवनीश ! वह अवन्ती देश धन कण पूर्ण कृषिकारोंके सुन्दर गृहोंसे शोभमान है। जिस देशके किसानोंकी स्त्रियोंके सुन्दर कर्णप्रिय गीतोंको श्रवण कर पथिक जन ऐसे विमोहित हो जाते हैं कि एक पग भी गमन नहीं कर सकते। उस देशवासी कृषकजनोंकी स्त्रियां जलपूर्ण घटोंको मस्तक पर धारण कर पंक्तिबद्ध गमन करती कैसी दृष्टिगत होती है, मानों जिनराजके जन्माभिषेकके अर्थ क्षीराब्धिसे जल ग्रहण कर श्रेणीबद्ध गमन

करती देवांगनाओंकी पंक्ति ही है।

महीपते ! श्रेष्ठ तन्दुलोंके कणोंका सुगन्धित पवनयुक्त देशमें खेतोंकी क्यारियों में कीर [सूवा] चुम चुम शब्द करते हैं; जिस देशमें गौओंके समूह पशु भाषा बोलते इक्षु दंडके खण्डोंको चरते हैं।

धरानाथ ! उस अवन्ती देशमें गौओंके पृष्ट भागको निज जिह्वाकर चाटते, हुंकार शब्द करते वृषभोंके समूह अत्यन्त मनोहर दीखते हैं। जहां मन्थर गमन करतीं और निज पुच्छसे सारस पक्षियोंको उड़ातीं महिषी विचरती हैं। जिस देशमें काहल जाति के वादित्रोंके शब्दमें आसक्त-चित्त व्यभिचारिणा नायिका गृह कार्यको छोड़ संकेतके अर्थ वृक्षोंके झुरमुटमें पहुंचती है।

जिस देशकी पतिभक्ता विरहिणी नायिका निज गृहोंके द्वारों पर बैठी अपने प्राणनाथोंकी प्रतीक्षा करती अत्यन्त शोभती हैं।

जिस देशके पथिक जनमार्गमें दधि, दुग्ध, घृत और तंदुल आदि उत्तम पदार्थोंका आस्वादन करते सुखपूर्वक गमन करते हैं। जिस देशकी स्त्रीजन निज आवासोंके झरोखाओंमेंसे निज चन्द्रवदनको दिखाकर पथिक जनोंको मोहित करती हैं। जिस मनोहर देशके चतुष्पद पशुगण प्रसन्न-वदन होते तृणोंको छोड़-कर धान्यके खेतोंमें चरते हैं।

उज्जैन नगरी का वर्णन

उसी रमणीक अन्वती देशमें स्वर्गपुरी समान उज्जयिनी नामकी नगरी है। उस नगरीमें—

मरकत मणिकी किरणोंसे व्याप्त स्फुरायमान हरित पृथ्वी-तलसे मूढ़ बुद्धि गजराज दूव (हरिततृण) की आशासे रसकी

इच्छा चिंतवन करता महावतकी प्रेरणासे मंदगतिसे गमनकरता है अर्थात् उस नगरीके राजमार्गमें हरित मरकतमणियां लगी हुई हैं। उनमें हरित घासकी आशंका उत्पन्न होनेसे गजराज आगे पग नहीं देते किंतु दूबके रसकी लोलुपतासे उसके भक्षण की इच्छा करता खड़ा हो जाता है तब महावतकी प्रेरकतासे गमन करता है सो भी मंदगतिसे ।

श्री क्षुल्लक महाराज और भी कहने लगे—राजन् ! जिस उज्जयिनी नगरीके गृहोंमें लगी हुई चन्द्रकांत मणियोंकी कांति आकाशमें कैसी शोभा विस्तारती है मानो उच्छलती धवल-कीर्ति ही है। जिस नगरीमें पीत मणिओंके रागसे लिप्त मृग-लोचना केशरका तिरस्कार करती हैं क्योंकि पीतमणिके पीत-व्यसे वे स्त्रियां स्वयं पीतवर्ण दृष्टिगत होती हैं फिर केशरको क्यों अंगीकार करें ?

जिस नगरीके मन्दिरोंमें लगी हुई इन्द्र नीलमणिकी प्रभासे व्याप्त स्त्रीजन हास्य द्वारा ज्ञात होती हैं क्योंकि इन्द्र नीलमणि की प्रभासे ऐसी श्याम दीखती है जो पहिचानी नहीं जाती किन्तु जिस समय हास्य रसमें मग्न होती हैं उस समय दन्त पंक्तिसे जानी जाती हैं। जिस नगरीमें चिरकालसे परदेश प्रति गए हैं पति जिनके ऐसी प्रोषिता नायिका प्रातःसमय अमल मण्डल मुखको मणियोंकी भीत्तिसे देखती म्लान मुख हो जाती हैं क्योंकि भर्त्तार विना हमारे मुख-मण्डलको कौन देखेगा, इससे यह हमारा शृङ्गार ही व्यर्थ है ।

जहां वालकोंको अंकमें लेकर मणियोंकी भीतिमें दिखाते हैं सो वे वालक अपने प्रतिबिंबको देख अन्य वालककी शंकाकर हाथकी सैनसे बुलाते कैसे अच्छे मालूम होते हैं !

नृपवर ! जहांके गृहोंमें रत्न और मुक्ताफलोंकी रंगावलीके चहूं ओर सुगंधित पुष्पोंकी क्यारी कैसी अनूठी शोभा विस्तार

रही हैं। उस नगरीके निवासीजन अन्य जनोंको सुखाश्रित करते-करते आप वृद्धि रूप हो रहे हैं। उस नगरके समस्त जीव चोरमारी आदिके उपद्रवसे रहित निःशंक शयन करते हैं। जिस नगरीके राजमार्गमें गमन करते मदोन्मत्त गजों के मदसे कर्दम हो रही है। जहां अनेक प्रकारके शतशः बाजार हैं तिनकी सहस्र दुकानें अपनी शोभा विस्तारती कैसी अच्छी पंक्ति रूप दृष्टिगत होती हैं ? जहाँका राजमार्ग पथिकोंके मुखसे पड़े हुए तांबूलके रससे कहीं रक्त वर्ण दृष्टिगत होता है, कोई स्थान गमन करती गजगामिनी कामिनियोंके पड़े हुए रत्नाभरणों कर चित्र विचित्र हो रहा है।

कोई स्थल कपूरकी धूलिसे शुभ्रवर्ण सुगन्ध युक्त हो रहा है, कोई स्थल मृग नाभिकी सुगन्धमें लुब्ध भ्रमरोंके समूहसे श्याम हो रहा है। राजन् ! उस महानगरीका वर्णन कहांतक किया जाय, जहांका यशोर्ध नामका महा प्रतापी राजा हुआ।

महाराजा यशोर्ध का परिचय !

जहांका यशोर्ध नामक नृपति न्यायकर राजा, प्रयत्नसे मंत्री और सत्यसे व्यवहार धारता भया। जहां कुलवधूके समूहसे कुल धनसे पुरुषार्थ और दानसे द्रव्य शोभता था।

वह क्षत्री धर्मका पुंज यशोर्ध नामका महापति यौवना-स्थामें आरुढ़ कैसा शोभता था मानो गुणोंका मिलाप वा तपका प्रभाव वा पुन्यका पुंज वा कलाका समूह वा कुलका भूषण वा यशका निधान, न्यायका मार्ग और जगतका सूर्य ही हो। वह प्रजापालक पापग्रह रहित, पुरुषोंके शुद्ध करनेमें मणि, दीन अनाथोंको चिंतामणि शत्रुरूप पर्वतके चूर्ण करनेको वज्रपात और मण्डलीके राजाओंके मुकुटोंमें चूड़ामणि समान शोभता

भया। उस यशोर्घ नामक पृथ्वीपालके कामकी युक्त, कामकी विद्या, कामकी शक्ति, कामकी दीप्ति, कामकी कीर्ति, कामके बाणोंकी पंक्ति और कामके हाथकी वीणा समान चन्द्रमति नामकी महारानी होती भई। उस महारानीके उदरसे सुकविकी बुद्धिसे काव्यार्थकी भांति 'यशोधर' नामका [मैं] पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ।

बालक यशोधरका परिचय !

स्वजनों कर बहुमानित और रत्नों कर भूषित मुझे जननीने उत्पन्न किया सो मानो नवीन मदनके रसका उत्पन्न हुए पुष्पका और यौवन रूप वृक्षके फलका गुच्छा ही है क्या ?

राजन् ! जब मैं बाल्यावस्थामें आया तब प्रथम तो निज वय प्रमाण बालकोंके साथ गृह ही में बालक्रीड़ा करने लगा। पश्चात् जब पठन योग्य हुआ तब हमारे माता पिताओंनें मुझे योग्य अध्यापकके निकट इस प्रकार स्थापन किया मानो स्ववंश आत्माको अभीष्ट विनयमें ही स्थापन किया। वहां प्रथम तो वर्णमात्रादि क्रमका शिक्षण प्राप्तकर पश्चात् क्रम पूर्वक व्याकरण, कोष, न्याय, काव्य, छन्द, अलंकारमें निपुण हुआ। पश्चात् मैंने ज्योतिष, सामुद्रिक, वैद्यकका अभ्यास किया, तदन्नतर गान विद्या तथा नवरस युक्त नृत्यकला और बादित्र बजावनेकी विद्यामें भी जब प्रवीण होगया तब रत्न परीक्षा, गजराज, घोटक, वृषभ आदि पशुओंकी परीक्षाके शास्त्रोंका मनन किया।

पश्चात् फल, पुष्प पत्रादि छेदनका अन्तर शील वढ़कर्म, चित्र लेखन और काष्ठकर्ममें भी अभ्यस्त हो गया। तदनन्तर गज घोटक आदिक आरोहण, धनुष विद्या, युद्ध कला, मल्ल

विद्या, जल तरण आदि अनेक कलाओंमें प्रवीण हुआ। धरानाथ ! जिस समय मैंने लावण्य रूप जलसे सींची हुई तरुणतामें पदार्पण किया उस समय यद्यपि अंग सहित था तथापि अ नंग (कामदेव) सदृश दृष्टिगत होता था। जब मेरे पिताने मुझे पुष्टिगात्र देखा तब रूप लावण्यकी सरिता समान पांच राज्-पुत्रियोंके साथ मेरा पाणिग्रहण कराया। मैं भी सुखसागरमें ऐसा मग्न हुआ कि व्यतीत हुए समयको किंचित् भी न जाना। तदनन्तर मेरे पिता वैराग्य अवस्थाको प्राप्त हुए।

महाराजा यशोर्ध का वैराग्य

यशोर्ध महाराज ! चन्द्रमाकी किरण समान उज्वल केशको देख चिंतवन करने लगे—हा कष्ट ! रति रूप सपत्नीको मथनेवाली और दुर्भाग्यकी राशि इस जरा दासीने क्या मेरे केशका ग्रहण कर लिया ?

अथवा यह शुभ्र केश उत्कट और दुष्ट कालाग्नि द्वारा भस्म हुए तारुण्य रूप वनकी भस्मकी कणिका है ? यही पलित केश मेरी वृद्धावस्थाका सूचक है। इस वृद्धावस्थामें जो मुखसे लार वहती है वह ऐसी जान पड़ती है मानो पुरुषके शरीरसे शक्ति ही लारका रूप धारण कर निकल रही है तथा वृद्धके मुखसे जो दंत पंक्ति पड़ती हैं सो मानो पापोदयसे पुण्यकी सृष्टि ही पड़ रही है।

इस वृद्धावस्थामें कामिनीकी गति समान मंद दृष्टि हो जाती है। उस समय हाथमें यष्टिका [लाठी] स्थिर नहीं रहती सो सत्य ही है कि नवीन आई हुई जरारूप वनिताके संसर्गसे यष्टिका रूप स्त्री किस प्रकार ठहर सकती है ? इस जरावस्था में कुकविकी काव्यकी भांति पग भी नहीं चलते अर्थात् जैसे
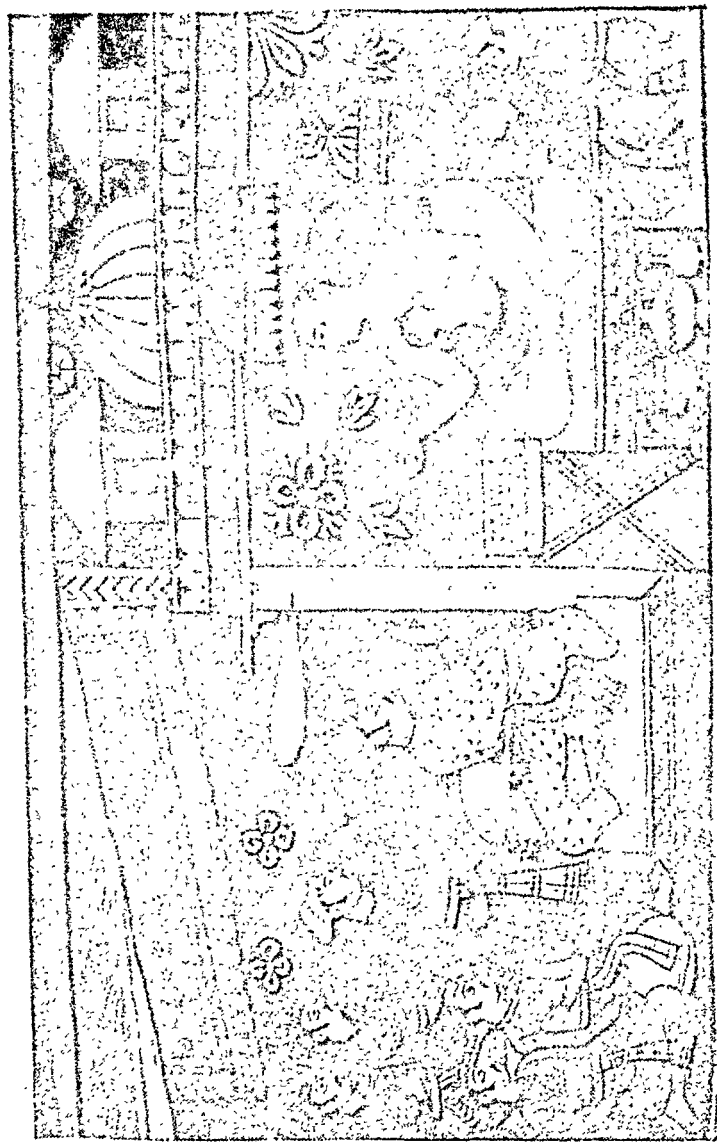
महाराजा यशोर्ध ने मुनिराज के पास दीक्षा के लिये निवेदन किया ।
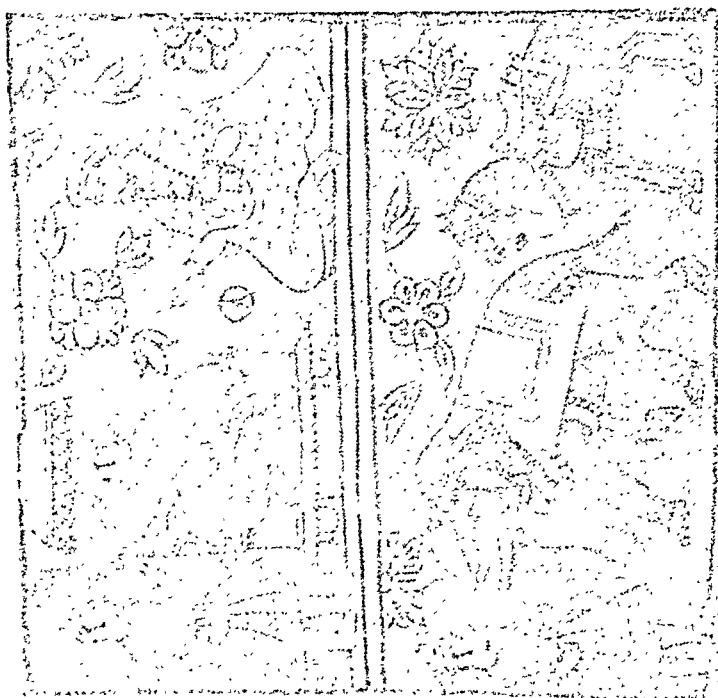
राजा मारिदत्त ने मंत्री के द्वारा भैरवाचार्य को बुलाया।

कुकविके काव्यके पद नहीं चलते उसी प्रकार वृद्ध पुरुषके पाद भी नहीं चल सकते।

वृद्ध पुरुषके शरीरसे जो लावण्यता विसर्जन हो जाती है सो ऐसी ज्ञात होती है मानों जरारूप सरिताकी अभंग तरंगोंसे धोई हुई है। इत्यादि चिंतवन कर यशोर्धमहाराज और क्या विचारने लगे—

देश कोष, शास्त्र, सेना, अमात्य, गढ़ और मित्र एवं सप्त अंग राज्यके तथा दो हस्त, दो पग, नितंब, कूला, पृष्टि और मस्तक एवं अष्टअंग शरीरके किसीके भी भुवनमें शास्वते स्थिर नहीं रहते। इस कारण उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन और ब्रह्मचर्य एवं दशों धर्मका पालन करता हूं तथा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और परिग्रह त्याग एवं पंच महाव्रतों का मैं आचरण करता हूं।

महाराज यशोर्ध और भी चिंतवन करने लगे—मैंने अपनी अज्ञानतासे विषय भोगोंमें मग्न होकर निज कुटुंबियोंके स्नेहमें तल्लीन होकर इतना समय व्यर्थ किया। मैंने इस बातका किंचित् भी विचार न किया कि ये पंचेन्द्रियों के विषय विषमिश्रित मिष्टान्नकी भांति प्राणघातक और कुगतियोंमें लेजाकर अनेक दुःखोंका पात्र बनाते हैं।

इसके सिवाय मैंने इसका भी विचार न किया कि ये पुत्र मित्र कलत्र आदि समस्त कुटुंब समूह स्वार्थपरायण हैं, परन्तु इनके स्नेहमें आकर उचितका विचार न करता पाप कार्योंमें तत्पर होरहा था पर अब सर्व कार्योंका त्याग कर जिन दीक्षा ग्रहण कर महा तपश्चरण कर संसार भ्रमणसे निवृत्त हो जाऊँगा। इत्यादि विचार कर महाराज यशोर्धने समस्त राज कर्मचारियोंको निज आंतरिक रहस्य सुनाया

कर्मचारीगण यद्यपि निज हृदयमें अतीव दुःखित हुए परन्तु महाराजको दृढ़प्रतिज्ञ देखकर किंचित् भी कहनेका साहस न कर सके और महाराजकी आज्ञानुसार समस्त सामग्री एकत्रित कर यशोधर नामक पुत्र (मेरे पूर्वभवका जीव) को बुलाकर राज्यतिलकका प्रयत्न करने लगे।

यशोर्ध महाराजने इस प्रकार कहकर मेरे राज्यपट्ट बांधा सो मानो बंधुओं सहित स्नेह बंध ही किया तथा अन्य नरेशोंका बाहुबंध किया सो मानों दीनजनोंको चामीकरका निबन्ध ही किया।

क्षुल्लक[1] महाराज कहने लगे—राजन्! मेरे पिता अर्थात् यशोर्ध महाराजने जिस समय मेरे करमें राज्यपट्ट बांधा उसी समय समस्त अन्य राजाओंके भी बाहुबंध कर उनके हाथसे मेरा कर ग्रहण कराकर कहा कि इस विस्तृत राज्यकी लज्जा आप लोगोंको है। इत्यादि कहकर आप जैन पथके पथिक बनकर वन-प्रति गमन कर जैनाचार्य के निकट जैनेश्वरी दीक्षा धारते भए।

राजन्! मेरे पिता तो कामरूपके मदके विघातक होते महा तपश्चरण करते शिव राज्यके अर्थ प्रयत्न करने लगे और मैंने वृद्ध मंत्रियोंकी सहायतासे आन्वीक्षिकी राजविद्या द्वारा इंद्रिय-विजयी आत्माका ज्ञान प्राप्त किया। त्रयी नामकी विद्यासे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्र एवं चारों वर्णोंके आचार विचार जाने, दंडनीति नामकी विद्यासे खोटे मद युक्त दुष्टोंके योग्य दंडका स्वरूप ज्ञात किया और वार्ता नामकी विद्यासे धनादि संचयकी रीति नीतिका शिक्षण प्राप्त किया।

तदनन्तर—लोक नीतिज्ञ और धर्मज्ञ वृद्ध पुरुषोंके संसर्गसे

१-क्षुल्लक पूर्व भवमें यशोधर राजा था इस कारण यशोधरके नाम पर अपना नाम कहनेमें आता है।

द्यूत, मांस, सुरा, वेश्या, खेट, चौर्य और परांगना एवं सप्त व्यसनका परित्याग कर क्रोध, मोह, मान, आदि कर्मों को विसर्जित किया।

नृपवर ! उस समय मैं यद्यपि काम विनोदका नाममात्र सेवन करता था तथापि हर्षोत्पादक अंगों से निश्चित दूर रहता था। किंतु मंत्रियों द्वारा विग्रह, यान, आसन, आश्रय आदि राज्य के अंगोंका ज्ञान जिस काल मेरे हृदय में स्फुरायमान होने लगा उसी समय से भृत्य समूह कंपित गात्र होते निज कार्योंमें तत्पर होने लगे। जो मुझसे भयभीत थे वे नगर ग्रामोंका निवास छोड़ अरण्यों में बास करने लगे। जो दुष्ट मंत्रियों के बहकाए हुए नृपगण रणांगण में युद्ध के सन्मुख हुए वे चंचला विद्युत् सदृश विलुप्त होगए और जो नम्र धराधीश थे वे सुख पूर्वक निज जीवितव्य व्यतीत करने लगे।

नृपवर ! रणांगणमें दुर्निवार तलवारकी धार से परमंडलके राजाओं का मैंने तर्जन किया और दिशाओंमें फैलते हुए अपने तेजसे सूर्य और चन्द्रमा का विजय किया।

पृथ्वीनाथ ! यह तो आप भी जानते हैं कि जो नृप प्रतापवान् और राज कार्यका नेता होता है वही नरेश स्वराज्यका रक्षक और प्रजाका पालक होता है। मैं भी उस समय न्याय पूर्वक राज्य करता स्वजन और परजनोंमें प्रतिष्ठापात्र बना हुआ सुखपूर्वक काल व्यतीत करता था इत्यादि।

इति श्री महामात्य नन्हकरणाभरण महाकवि-पुष्पदंतविरचित
महाकाव्य-यशोधरचरित्रमें यशोधर्म-महाराज्य पट्टबंधवर्णन
नामक प्रथम परिच्छेद समाप्त हुआ॥ १॥

द्वितीय परिच्छेद

यशोधर, चन्द्रमति पूर्वभव वर्णन।

राजन्! वे राजा यशोधर निज स्त्रीके प्रेममें आसक्त-चित्त होते निज हृदय में क्या विचारने लगे कि स्वच्छमति, हंसगति, मेरी प्रिय भार्या अमृतमयी मेरे हृदयमें वास करती नेत्रके टिमकार मात्र विरहसे विकल हो जाती है तो मैं भी उस प्रिया सहित भोग भोगूंगा, अब चाहे नृपपूज्य राज्य नष्ट हो जावे चाहे लक्ष्मी पर वज्रपात हो और चाहे लज्जा भी नष्ट हो जावे परन्तु उस हृदयवासिनीसे एक क्षणमात्र भी पृथक न होऊंगा? नहीं! नहीं!! ऐसा नहीं करूंगा? किन्तु गुणोंके समूह से युक्त और यश तथा जयके धाम यशोमति नामक निज पुत्रको राज्य सिंहासन पर स्थापन कर राज्यभार उसी को समर्पण कर पश्चात् इष्ट प्राप्तिके हेतु अमृतरतीके गृहप्रति जाकर उस प्रियतमा सहित विलास करूंगा और उसीके साथ ईप्सित भोजन भी करूंगा।

उस सुकोमल क्षीणगात्रा मनोहरमुखी प्रिया सहित निर्जन बनका भी वास उत्तम, समस्त सुखोंका कारण और लक्ष्मीका विलास है, किन्तु प्रियतमा बिना स्वर्गका वास भी अच्छा नहीं इत्यादि और भी अनेक विचार करने लगे।

तदुपरांत प्रसारित किरण दिवानाथ अस्ताचलके उपस्थित हुआ रक्तवर्ण दीखने लगा सो मानों वह शिक्षा ही देता है कि अर्थ रहित पुरुष रक्तवर्ण दृष्टिगत हो जाता है।

क्षुल्लक महाराज पुनः कहने लगे—महाराज मारिदत्त! जिस समय यशोधर महाराज उपरोक्त विचार करते थे इतनेमें सन्ध्या समय होने लगा उस समय दिवानाथ के अस्त होनेसे दिशारूप स्त्री रक्तरूप वस्त्र धारती हुई।

जैसे महायोद्धा रणांगणमें शस्त्रों के प्रहारसे तृप्त होकर पुनः पतनअवस्था को प्राप्त हो जाता है उसी प्रकार सूर्य भी अष्ट प्रहर तापित होकर अस्त दिशाको प्राप्त होता भया। पश्चात् जगत् मण्डपमें तारारूप पुष्पों और चन्द्रमारूप फैलकर नम्रीभूत होती सन्ध्यारूप बल्लरी दिशाओं प्रति प्रसरित होने लगी। सूर्यास्त समय जो अंधकारका फैलाव हुआ था वह चन्द्र किरणोंके विस्तार से नष्ट होने लगा। आकाश मण्डलमें उदय होती शीत-रश्मि लोकोंकी दृष्टिमें कैसी भासने लगी। मानों अन्धकारके समूहका खण्डन करनेवाला चक्र अथवा इन्द्रकी लक्ष्मी के मुखका मण्डन ही है। वह प्रकाश-मूर्ति निशापति गगनांगण में प्रकाश करता कैसा ज्ञात होता था मानों कीर्तिरूप वनिताका मुखमण्डल अथवा जननी को सुख देने वाला अमृतका भवन या परमात्माके यश का पुंज तथा सुरेश्वरके मस्तक का श्वभ्र छत्र और रात्रि रूपी नायिकाके ललाटका तिलक ही है।

वह चन्द्रोदय यद्यपि समस्त लोकको आह्लादकारक और शांतिकर्त्ता होता है परन्तु पतिविहीना विरहिणी और जाररक्ता व्यभिचारिणी स्त्रियोंको सन्तापकारी होने लगा। वह आकाश-रूप क्षेत्र (खेत) में उदय होता निशाकर, कुटुम्बी (किसान) की भांति अत्यन्त शोभता भया, क्योंकि आकाश नक्षत्रों कर व्याप्त है। और खेत धान्यके कणोंसे पूर्ण है। आकाश में मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुंभ और मीन एवं द्वादश राशियाँ सुशोभित होती हैं और खेत में चना, गेहूं, जव, उर्द, और मूंग आदि अष्टादश प्रकारके धान्योंकी राशियें उन्नत दीखती हैं।

राजन्! चन्द्रमाकी जोत्स्ना चांदनीसे व्याप्त समस्त जगत् कैसा दृष्टिगत होता था, मानों रात्रिरूपी स्त्रीने चन्द्रमारूप घटसे निकसी अविच्छिन्ना अमृतमय दुग्धकी धारासे जगत्को शुभवर्ण

ही किया है। उसी समय महाराज यशोधर के हृदयमें निज प्रियाके मिलापकी लालसाका उत्कट उमद्ग होनेसे द्वारपाल को आदेशित कियाकि तुम अमृतमती महारानीके महलमें जाकर सूचित करो कि महाराज पधारते हैं।

द्वारपाल—(मस्तक नवाकर) जो आज्ञा श्रीमहाराजकी, मैं अभी जाकर सूचित करता हूं और वहांका समस्त प्रवन्ध ठीक करा देता हूं।

इस प्रकार कहकर द्वारपालने अमृतमतीके महलमें जाकर महाराजका आदेश सुना दिया। पश्चात् महारानीके महलस्थ द्वारपाल समस्त परिवार को सीख देकर महाराज यशोधरके (मेरे) निकट आकर विज्ञप्ति करने लगा।

द्वारपाल—(नमस्कारकर) श्रीमन्महाराजाधिराजकी जय हो। श्री पृथ्वीनाथ ! स्वर्गतुल्य महारानीके मन्दिर प्रति पधारिये।

इस प्रकार द्वारपालके निवेदन करनेसे महाराज 'मैं' तत्काल जानेको उद्यत हुए उस समय तिमिर नाशक (प्रदीप) हाथमें लिये एक सेवक आगे जाता था, अनेक भृत्यगण चमर ढारते थे, अनेक पुरुष मङ्गलीक शब्दोंसे यशगान करते जाते थे और अनेक जन खड्ग धारण किये मेरे आगे पीछे चले जाते थे। इस प्रकार गमन करता मणिमय शिखरयुक्त अमृता देवीके महलमें पहुंचा। वह रमणीक महल कहीं२ रत्न खचित भीतोंसे मनोहर दीखता था। कहीं अनेक प्रकार वादित्रोंकी हृदयग्राही ध्वनिसे प्रतिध्वनित हो रहा था। कहीं कमनीय कामिनियोंके हाथकी वीणाके शब्दसे झंकार हो रही थी। कहीं पुष्पोंकी मालाओंकी सुगंधिसे लुब्ध भ्रमरोंकी झंकार ध्वनिसे पूरित हो रहा था, कहीं लटकती मोतियों की मालायें और रत्न खचित चित्रामोंकर अपूर्व छटा दृष्टिगत हो रही थी।

उस महल प्रति गमन कर मैंने शुद्ध स्फटिकसे जड़ित रत्नो-

ज्वला नामकी प्रथम भूमि ऐसी देखी मानों विशुद्ध आकाश ही है।

राजन्! वहांसे गमन कर पुष्पमणिकी पेड़ियों पर पद न्याय करता मालतीके सुमन समूहसे व्याप्त धराकी भांति मुक्ताफलोंसे जड़ित दूसरा खण्ड देखा। वहाँसे गमनकर पद्मरागमणि विनिर्मित तृतीय खण्ड देखा। तदनन्तर मरकतमणि और नील रत्नोंकी कांतिके समूह से व्याप्त चतुर्थ खण्ड का अवलोकन किया। तत्पश्चात् विद्रुमकी बनी हुई पञ्चम भूमि ऐसी देखी मानों विधाताने मूंगाके वृक्षका जाल ही पूर दिया है। फिर सुवर्ण निर्मित अतीव शोभायुक्त छठे खण्ड प्रति पहुंच कर तत्रस्थ शुक, हंस, मयूर और मैना आदि पक्षियोंके मनोहर शब्द श्रवण कर चित्त प्रसन्न किया। वहाँ से पद्मराग मणि और पीत रत्नों कर खचित सप्तमी धराका अवलोकन कर विधाताकी शिल्प विद्याकी प्रशंसा की। तत्पश्चात् वहां से भी प्रयाण कर चन्द्रकांत मणिकी शिलाओं के तेज से व्याप्त गृहचक्रा नाम की अष्टम धरा प्रति पहुंच कर हृदय शांत करता भया।

राजन्! जिस समय मैंने उस अतिसुन्दर मन्दिरमें सातों ही भूमियोंको देखा उस समय मेरी बुद्धि ऐसी कम्पमान होने लगी मानो नरकोंमें ही प्रवेश किया है।

नृपवर! जिस समय नरक तुल्य सप्तम भूमिके अवलोकन मात्रसे जैसी मेरी बुद्धि नरकों के दुःखोंसे डरकर कम्पमान हुई थी उसी प्रकार जब रत्नकांता गृहचक्रा नामकी अष्टम पृथ्वी प्रति पहुंचा तब अष्टम धरा (मोक्ष) प्राप्ति सदृश आनन्द हुआ।

यद्यपि अष्ट कर्म विनिमुक्त होकर ही मोक्ष प्राप्त होता हैं परंतु मैं कर्मोंसे लिप्त और पापकर्मसे वंचित होता हुआ भी सर्वांग ग्राहिणी निज प्रियाके प्रेमालिंगनकी लालसासे रोमांकुरित हृदय और स्वेदपूर्ण गात्र होकर आनन्द में मग्न हो गया।

पृथ्वीनाथ! उस समय कामके उद्वेगसे सविष सर्पकी भांति

प्रज्वलित होता मेरे सर्वांगमें ऐसा कम्प उत्पन्न हुआ कि प्रियाके मंदिरमें पहुंचना दुष्कर हो गया।

पश्चात् यथा-तथा प्रथम द्वारमें प्रवेश किया ही था कि मृदुभाषिणी विनय नम्रा द्वारपालीने मुझे देख जयकार शब्द किया। तदनन्तर शुभ्र झागसे आच्छादित नवीन कमल सदृश नवीन और श्वेत वस्त्रों से आच्छादित कोमल-गात्रा द्वारपालीके हाथ का अवलम्बन कर मैंने महलमें प्रवेश किया।

प्रजापालक ! उस महल में प्रवेश करते समय ही दैवने मेरी बुद्धि का हरण कर लिया। उस समय निज प्रियाके मुखके सुगंधित स्वादयुक्त वचनालापका श्रवण कर नासिका और कर्णोंको आनंदित किया। उस मंजुभाषिणीके अत्युत्तम रूपके अवलोकनसे नेत्र तृप्त किये।

उस चन्द्रवदनाके अधरामृतके आस्वादनसे जिह्वाको सन्तोषित किया और उस सुकोमल गात्राके शरीरके स्पर्शसे सर्व अंग सुखपूर्ण किया एवं पूर्ण चन्द्राननाके संयोगसे पांचों इंद्रियां संतृप्त हुईं। उस समयका आनंद और हर्ष अकथनीय था।

राजन् ! उस समयका अवलोकन, संभाषण, दान, अलिंगन, विश्वास, प्रिया का मिलाप और रतिक्रीड़न जो अमृतादेवीके संसर्ग में मुझे प्राप्त हुआ वह किसीको भी प्राप्त न हुआ होगा।

नृप-श्रेष्ठ ! उस समयका हास्यरस मिश्रित कामोत्पादक मंजुभाषण, हृदयग्राही मुखका विकार, चित्ताकर्षक भाव, भृकुटी और नेत्रोंके निक्षेपणरूप विभ्रम, और रतिक्रीड़ाके समयका रसास्वाद अपूर्व दृष्ट था।

न्यायमूर्ति ! समस्त क्रीड़ासे निश्चित होकर जब शयनस्थ हुआ तब उस सिंहकटी, कमलदलनेत्रा, पीनोन्नतकुचा, भ्रमर विनिंदित केशा, चन्द्रवदनी, गजगामिनी, प्रियाके रूपका स्मरण करता नेत्र बन्द किये लेटा हुआ था इतनेमें वह पर पुरुषरता

राजा यशोधर और रानी अमृता देवी।
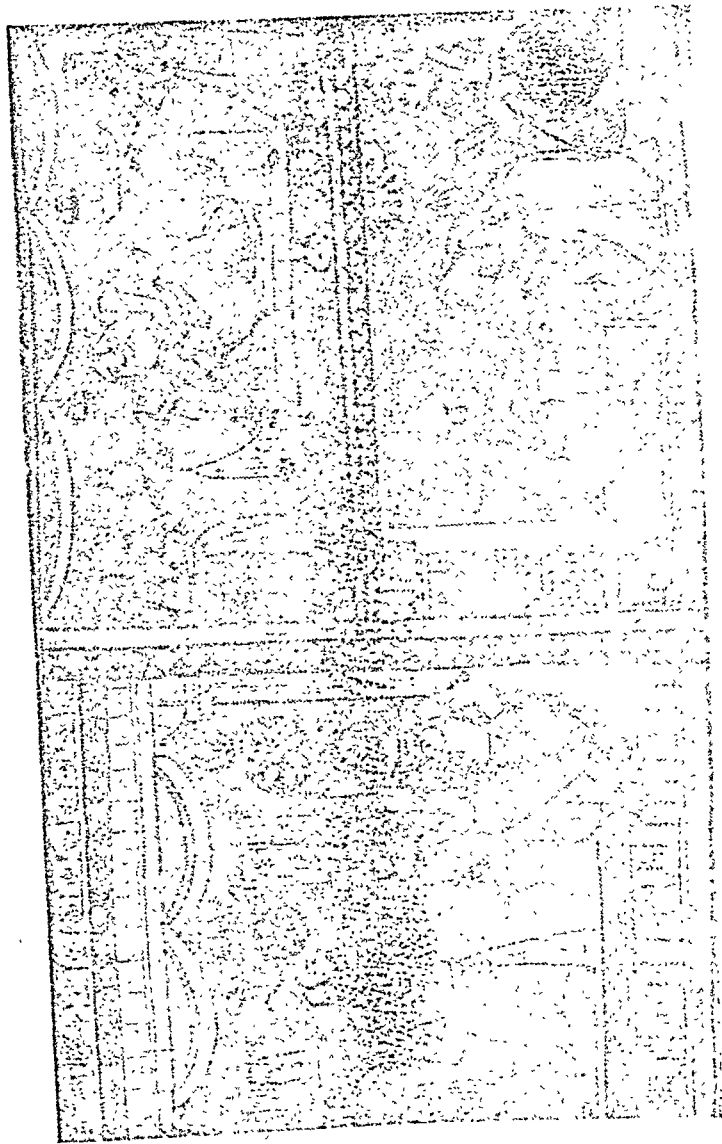
अमृता देवी कुबड़े के साथ।
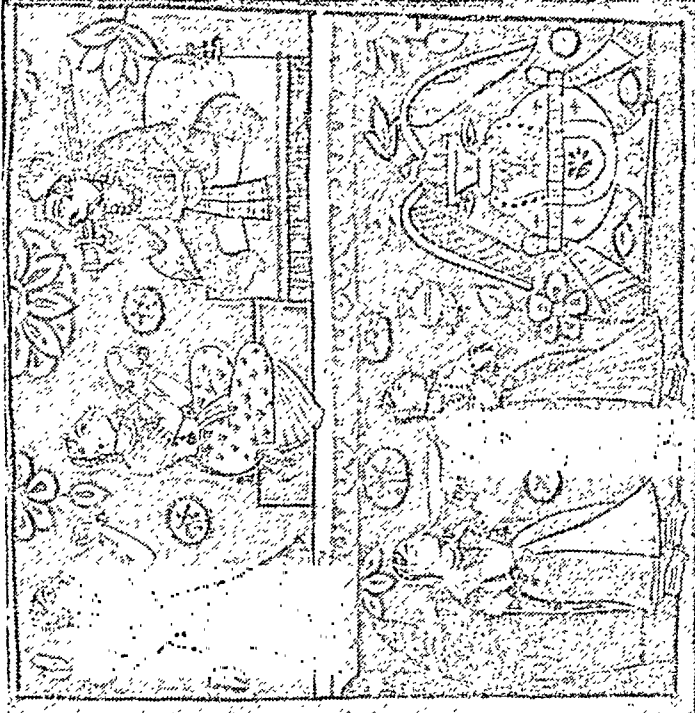
राजा यशोधर की माता ने उससे वैराग्य न धारण करने की प्रार्थना की ।

मेरे भुजपंजरसे निकल शनैः२ पादविन्यास करती गमन करने लगी। तत्काल मैं भी उठकर देखने लगा कि इस अर्द्धरात्रिके समय वह कहां जाती है ऐसा विचार कर खड्ग हाथमें धारण कर गुप्त रीतिसे उसके पीछे गमन करता क्या देखता हूं कि कूवड़ाके सन्मुख हाथ जोड़े खड़ी हुई है।

पृथ्वीनाथ ! वह कूवड़ा पुरुषार्थमें अनुद्यमी, सर्वजन निंद्य, दावानलसे दग्धकाष्ठसदृश गात्र, दीर्घदांतोंसे दंतालुमुख, कर्दमके वुदवुदा समान नेत्र, अति नीचे और विषम ओष्ठ. फटे, रुक्ष और कठोर हस्तपाद खप्पर समान, मांस रहित कटि, तुंबा समान उदर, सूक्ष्म और कठोर हृदय रुक्ष केशोंसे भयानक अन्य पुरुषोंके पादत्राण (जूतों) का रक्षक, हस्ति घोटकोंके बचे हुए अन्नकणों कर आजीविका जिसकी ऐसा था। ऐसे महाकुरूप कूवड़ाने जिस समय अमृतादेवीको देखा तत्काल वक्रदृष्टिसे हुंकार शव्द करता कहने लगा—

रहेलोरीखले ! सद्भाव रहित दासि ! तूने इतना विलंब क्यों किया ? नित्यकी भांति शीघ्र क्यों नहीं आई ? इत्यादि वक वक करता चाबुक हाथ में लेकर उस सालंकाराको मारने लगा। तत्पश्चात् चोटी पकड़ पृथ्वी पर पछाड़ पाद प्रहार करता भया। उस समय कूवड़ाके चरणोंको नमस्कार करती अमृतादेवी नम्रभाव से कहने लगी—

अमृतादेवी—स्वामिन् ! आज गृहकाजसे अवकाश न मिलनेसे नाशको प्राप्त हुई, नाथ ! आप कामदेव सदृश मेरे हृदयमें वास करते हो इस कारण आपके रुष्ट होनेसे मेरे छत्र, चमर, आसन, सतखना महल, हाथी, घोड़ा, रथ, प्यादे, वस्त्र, आभूषण और समुद्रांत पृथ्वीका राज्य समस्त व्यर्थ है।

प्राणवल्लभ ! आपके बिना कुंकुमका विलेपन, रत्नसुवर्ण जड़ित आभूषण, उत्तम बहुमूल्य वस्त्र और मुक्ताहार यह समस्त

ही अग्निज्वाला सदृश सर्वांग को दग्ध करते हैं। हे विधाता! तूने इसे बड़े कुलमें उत्पन्न कर मेरा भर्त्तार क्यों न बनाया और यदि ऐसा न भी किया था तो मुझे ही जीवित क्यों रक्खा।

प्रियवर! आपके अलाभमें जो दिन व्यतीत होता है उसे मैं ऐसा मानती हूँ कि पूर्व संचित पापकर्म के उदयका फल आज भोग रही हूँ।

इस प्रकार कूबड़ासे प्रार्थना करती अमृतादेवी पुनः कूबड़ाके चित्त प्रसन्नार्थ इस प्रकार कहने लगी—

यदि कदाचित् यशोधर राजा यमपुर गृह (मृत्युगृह) प्रति प्राप्त होय तो मैं नृत्य करूंगी और चैत्र मासमें नैवेद्यके ग्राससे कात्यायिनी देवीकी पूजा करूँगी।

मारिदत्त महाराजसे क्षुल्लक महाराज कहने लगे—राजन्! वह अमृतादेवी उपरोक्त प्रकार नम्र वचनों द्वारा निज जार कूबड़ाको सन्तोषित कर गाढ़ालिंगन करने लगी। उस समय दोनों प्रेमी प्रेमसागरमें निमग्न होकर भय और लज्जाको एक-दम भूल गए।

नृपवर! उस समय उन दोनोंकी अवस्था देखनेसे मेरे क्रोधकी सीमा न रही। तत्काल संग्रामके रुधिरका प्यासा मत्तगजेंद्रोंके मस्तकोंका विदारक और विद्युत् सदृश दीप्तिमान् खड्ग जैसे ही म्यान से निकालकर दोनों मारने को उद्यत हुआ ही था कि उसी समय चित में यह विचार आकर उपस्थित होगया कि जिस तीक्ष्ण खड्ग से प्रबल वीरोंकी सेनाका निपात किया, जिस खड्गसे उन्नत मुख नृपगणोंका विनाश किया, जिस खड्गसे महा भयंकर सिंहोंका विध्वंश किया, उस खड्गसे इन दीनोंको कैसे मारूं? जो खड्ग तुमुल संग्राममें शत्रुओं के मस्तक पर पड़ा वह रंकों के मस्तक पर कैसे पड़े? इत्यादि चिंतवन कर मैंने क्षमा रूप जलसे क्रोधाग्निको शाँत किया। पश्चात् खड्ग

म्यानमें कर वहां से चलता बना अर्थात् चित्रामोंसे विचित्र महल में जाकर जिस प्रकार आया था उसी प्रकार गुप्त रीति से शय्या-पर शयनस्थ होकर हृदयवासिनी चारुहासिनी दुष्टाके चरित्रों-का स्मरण करने लगा—

हा ! धिक्कार तेरी बुद्धिपर, तूने निज हृदयमें किंचित् भी विचार न किया कि कहां तो मेरा क्षत्रिय कुल और कहां यह रंक वंश ? कहां तो समुद्रांत पृथ्वीके पतिकी प्राण-वल्लभा मैं, और हाथी घोड़ाओं के उच्छिष्ट अन्नकणों से आजीविका करनेवाला दरिद्री कूबड़ा ?

हा ! दुष्टे, तूने यह भी विचार न किया कि मेरा पति राजा-धिराज है और नवयौवन पुत्र विद्यमान होते ऐसे नीच, रंक, दरिद्री, उच्छिष्टभोजी, मलिनगात्र, कूबड़ा के साथ कैसे रमण करती हूं ? हा ! अमृते ! तेरी बुद्धि एक साथ ही नष्ट हो गई ! तुझे यह नीच कृत्य करते किंचितभी लज्जा न आई, परन्तु सत्य भी है कि जो बल्लरी (लता) आम्रवृक्षकी शाखा पर प्रसरती आम्रफलका स्पर्श करती है। वही लता कंटकयुक्त वृक्ष की शाखापर लंबमान होती उसका चुम्बन करती है।

जिस वृक्ष की शाखापर हंस तिष्ठता है उसीपर बगुला भी बैठ जाता है; जो कमलिनी दिवाकरकी किरणों के स्पर्शसे प्रफु-ल्लित होती है उसीको गमन करता मैंढ़क पादप्रहार करता है।

जो स्त्री गुण (फिचड़) सहित धनुषकी कुटिलता सदृश है। जो रागको छोड़नेवाली संध्या तुल्य है, जो मारक स्वभावी विष की शक्ति समान है, जो गृहमें कलुषता करनेवाली धूम्र पंक्ति वत् है, और जो कामिनी सरिताकी भाँति होती है वह दुश्चा-रिणी, दुष्टा, परपुरुषगामिनी जो कुछ नीच कर्म न करे वही थोड़ा है।

श्री क्षुल्लक महाराज मारिदत्त नृपसे और भी कहने लगे—

राजन्! उपरोक्त विचार करते यशोधर महाराज गोपवती, वीरवती, और रक्ता इन दुश्चारिणी स्त्रियोंके चरित्रका स्मरण करने लगे।

गोपवती का चरित्र

किसी ग्राममें महाव्यभिचारिणी कुलटा गोपवती नामकी स्त्री निजभर्त्तार सहित वास करती थी। किसी समय भर्त्तारने उसके चारित्रसे व्याकुल होकर अन्य स्त्रीके साथ पाणिग्रहण कर लिया इस रहस्यको जान वह दुष्टा अत्यन्त क्रोधयुक्त हुई। एक दिन नवविवाहिता भार्या सहित उसका भर्त्तार शयन कर रहा था, उसे देख उसने विषधारिणी सर्पिणीकी भांति फुंकार करती, तीक्ष्ण तलवार से निज सपत्नीक 'शोक' का मस्तक काटकर किसी गुप्तस्थान में रख दिया।

जब भर्त्तार उस स्त्री की दग्धक्रियासे निश्चिंत होकर भोजन के अर्थ गोपवती के गृहमें गया और वहां मृता स्त्रीके शोकसे उदासमुख बैठा भोजनमें अरुचि करने लगा, उस समय भर्त्तारकी यह दशा देख गोपवती निज सपत्नीका मस्तक भर्त्तारके भोजन की थाली में रखकर कहने लगीकि इसका भक्षण कर। इस कृतिको देख भयवान् होता भर्त्तार वहांसे भागा, परन्तु उस दुष्टा राक्षसी ने भागने न दिया किन्तु तीक्ष्णक्षुरिकासे भर्त्तारका मस्तक काट लिया पश्चात् निश्चिंत होकर मनमाना व्यभिचार करने लगी इत्यादि।

वीरवती का चरित्र

एक सुदत्त नामके पुरुष ने वीरवती नामकी स्त्री से पाणी-ग्रहण कर कुछ दिनों वाद उसे लेनेको सुसरालमें गया। वीरवती

एक अंगारक नामक चौरसे आशक्त थी परन्तु सुदत्तके पहुंच जानेसे उसे अंगारकके निकट जानेका अवसर नहीं मिलता था। इस कारण रात्रि दिवस छटपटाती रहती थी। एक दिन किसी अपराधवश श्मशान में अंगारकको शूली दी गई। इसकी सूचना यद्यपि वीरवतीको हो गई थी परन्तु दिनमें अवकाश न मिलनेसे जब रात्रि समय उसका भर्त्तार निद्रा में घुर्राटे लेने लगा तब अर्द्धरात्रिको गुप्तरीतिसे निज प्रेमीके निकट पहुंचकर सूलीके नीचे मृत पुरुषों की पेंड़ी लगाकर उसपर खड़ी होकर उसका आलिंगन किया पश्चात् जिस समय अंगारकने इसके अधरामृत का पान किया उसी समय उधर अंगारकके प्रणांत होनेसे उसकी दांती बंध गई।

इधर नीचे जो मृतकोंकी पेंड़ी बनाई थी वह खिसक गई इससे वीरवतीका अधर कटकर अंगारकके मुख में रह गया। पश्चात् वीरवती मुख छिपाकर जिस प्रकार गुप्त रीतिसे आई थी उसी भांति निज गृहमें जाकर निज भर्त्तार के निकट लेट गई।

तत्पश्चात् उस दुष्टा व्यभिचारिणीने युक्तिपूर्वक पुकार मचाई कि हाय हाय ! मेरे पतिने मेरा होंठ काट लिया। उसकी पुकार सुन समस्त परवारके लोग एकत्रित हो गए। जब प्रातःकाल हुआ तब राजदरबारमें जाकर राजाको सर्व वृत्तान्त सुनाया। राजाने तत्काल सुदत्त को दोषी समझ शूली चढ़ाने का आदेश दिया।

जब राज कर्मचारी सुदत्तको लेकर चलने लगे उस समय एक वीरभट नामका पथिक जो कि वीरवतीके दुश्चारित्रका पूर्ण मर्मी था उसने राजा से समस्त रहस्य निवेदन कर यह भी कहा श्री महाराज ! यदि मेरी वात असत्य समझें तो मृतक अंगारकका मुख देखा जाय उसमें वीरमती के भग्न ओष्ठका खण्ड

अवश्य होगा। ऐसा सुनकर महाराज की आज्ञानुसार जब मृतक अंगारकका मुख देखा गया तो उसमें होष्ठ खण्ड निकला पश्चात् नृपतिने वीरवतीका दुश्चरित्र ज्ञात कर सुदत्तकोमुक्त कर उसके स्थान में वीरवती को शूली देने का आदेश दिया।

उस समय समस्त लोगोंने कुलटा वीरवती का साहस देख अत्यन्त आश्चर्य किया कि देखो, इस दृष्टिनिने अपने दुष्कर्म छिपानेके अर्थ निरपराध वेचारे सुदत्तको अपराधी ठहराया। परन्तु यहवात भी है कि निरन्तर सत्यकी ही जय होती है और दुष्कर्मी असत्यवादीको योग्य दण्ड मिलता है। यदि ऐसा न होता तो असत्यवादियोंकी इतनी संख्या वृद्धिगत हो जाय कि जिसका पारावार न रहे दुष्कर्मियोंको अपराधके योग्य दण्ड मिल ही जाता है इस कारण अन्यायसे भयभीत होकर अनेक लोग अन्याय से दूर रहते हैं।

रक्ता रानीकी कथा

अयोध्या नगरी का अधिपति देवरति नामक राजा था। वह रक्ता नामकी रानी प्रति ऐसा आशक्त था कि समस्त राज्य कार्य छोड़ अन्तःपुर में निवास करने लगा था। एक दिन राज-मन्त्रीने आकर राजा से कहा कि इस प्रकार आपके भोगासक्त होते हुए रनवास में रहनेसे समस्त प्रजा अन्याय में प्रवर्तने लगी है। सो या तो प्रजाजनों का न्याय कीजिये या गृह तज वनवास कीजिये।

वहीं आपके लिये समस्त भोग सामग्री एकत्रित कर दी जायगी क्योंकि यहाँ रहनेसे सकल लोगोंके हृदयोंमें अनेक प्रकार की वार्तायें उत्पन्न होती हैं और लोक अनेक प्रकारकी गप्प मारते हुए अन्याय कार्यके प्रति उद्यत हो रहे हैं।

इस प्रकार मंत्रीके वचन सुनकर रक्तामें आसक्त राजा वन में जानेको उद्यमी हो गया। नदीके तट पर जो कि महाराजका बड़ा बाग था वहां समस्त सामग्री एकत्रित कर वहीं निवास करने लगा।

उस राजाके वनमें एक पंगु माली रहता था वह मिष्ट स्वर से गान अच्छा करता था। एक दिन उस पंगु माली का गाना सुनकर रक्तारानी उसके प्रति आसक्त-चित्त होकर उसे एकांत में बुलाकर कहने लगी—'मैं तुझपर अत्यन्त प्रसन्न हूँ। तू मेरे साथ भोग विलास कर और उत्तम प्रकारके नित्य भोजन किया कर।'

ऐसा सुन पंगु ने कहा कि-स्वामिनी! आपकी आज्ञा शिरोधारण करता हूं परन्तु महाराज के रहते यह काम मुझसे न हो सकेगा क्योंकि इसमें प्राणोंका संशय है यदि कदाचित् राजाने यह दुष्कर्म देख लिया तो हम और आप दोनों मारे जावेंगे।

इस प्रकार सुन रानी ने कहा—तू इस बातसे किंचित् भी भय मत कर। क्योंकि मैंने नृपतिके मारने का उपाय प्रथम ही सोच रक्खा है, अब तू एक काम कर कि पुष्पोंकी माला तांतमें पोहकर बना और अपने पास रख, जब हम मंगावें तब तू लाकर देना। ऐसा कहकर पंगुको तो विदा किया और आप उदास मुख बनाकर राजाके निकट जाकर रुदन करने लगी, तब राजाने मधुर वाक्योंसे पूछा—

प्रिये प्राणवल्लभे! तू आज रुदन क्यों करती है, इसका क्या कारण है? ऐसा सुन रानीने गद्‌गद स्वरसे कहा—प्राणेश! आज आपकी जन्मगांठका दिवस है, जब नगरीमें रहते थे तब वहां कैसा महान् उत्सव होता था, यदि आज नगरीमें होते तो क्या वही उत्सव न होता परन्तु उत्सव तो दूररहा आप तो यहां नगरीसे अति दूर सरिता तटपर निर्जन स्थानमें वास करते हो।

ऐसा स्नेहपूर्ण रानीका वचन सुन राजाने कहा—प्राणेश्वरी ! यदि तेरी ऐसी ही इच्छा है तो यहां भी सब कुछ हो सकता है, क्योंकि प्रिय वस्तुका समागम होते निर्जन वन भी स्वर्गतुल्य है, जो करनेकी इच्छा हो वह करो।

ऐसा सुन रानीने उत्तम प्रकारका आहार तैयार कर राजा सहित भक्षण किया पश्चात् विनोदपूर्वक सरिता तट पर बैठ विनोदपूर्वक तांतके सूत्रसे बना हुआ फूलोंका हार पंगुला माली से मंगाकर हास्यपूर्वक राजाके गलेमें डाल तत्काल फांसीके फंदासे झटका देकर राजाको नदीमें धकेल दिया।

नृपवर ! उस दुष्टिनीने तो मृतक जानकर डाल ही दिया था परन्तु मैं आयुकर्मके योगसे जीवित बच गया। किन्तु नदीके प्रवाहमें वहता हुआ चम्पापुरी के बाह्य उद्यानमें किसी प्रकार पार लगा, जैसा ही वहांसे निकला कि वहाँपर बैठे हुए पयादे राजाको लेकर चलने लगे।

प्रथम तो उसने जाना कि एक आपत्तिसे निकला तो दूसरी विपत्तिमें फँस गया, परन्तु उन किंकरोंके कहनेसे मालूम हुआ कि वहांका राजा निःसन्तान मरणको प्राप्त हो गया। पश्चात् मंत्रियों और अन्य राज कर्मचारियोंने निमित्तज्ञानीसे पूछा कि यहांका राजा कौन होगा ? तब निमित्तज्ञानीने कहा कि एक अयोध्या नगरीका देवरत नामका राजा सरिता प्रवाहमें वहता हुआ आवेगा वही इस राज्यासन प्रति आरूढ़ होकर प्रजाका पालन करेगा।

इस प्रकार निमित्तज्ञानीके कथनानुसार हम लोग यहां बैठे थे सो आपको ले चलकर राज्यगद्दी पर बैठावेंगे, ऐसा सुन चित्तमें सन्तोषित हुआ, पश्चात् अभिषेक पूर्वक वहांका राजा बन, न्यायपूर्वक राज्य करने लगा; परन्तु स्त्रीके नामसे ऐसा विरक्त हो गया कि उसका नाम भी नहीं रुचता था।

राजा यशोमति रानी के साथ
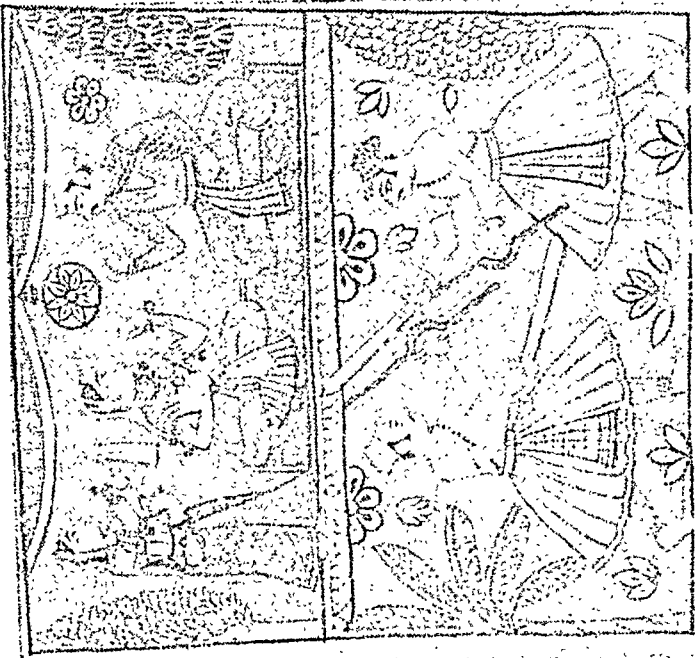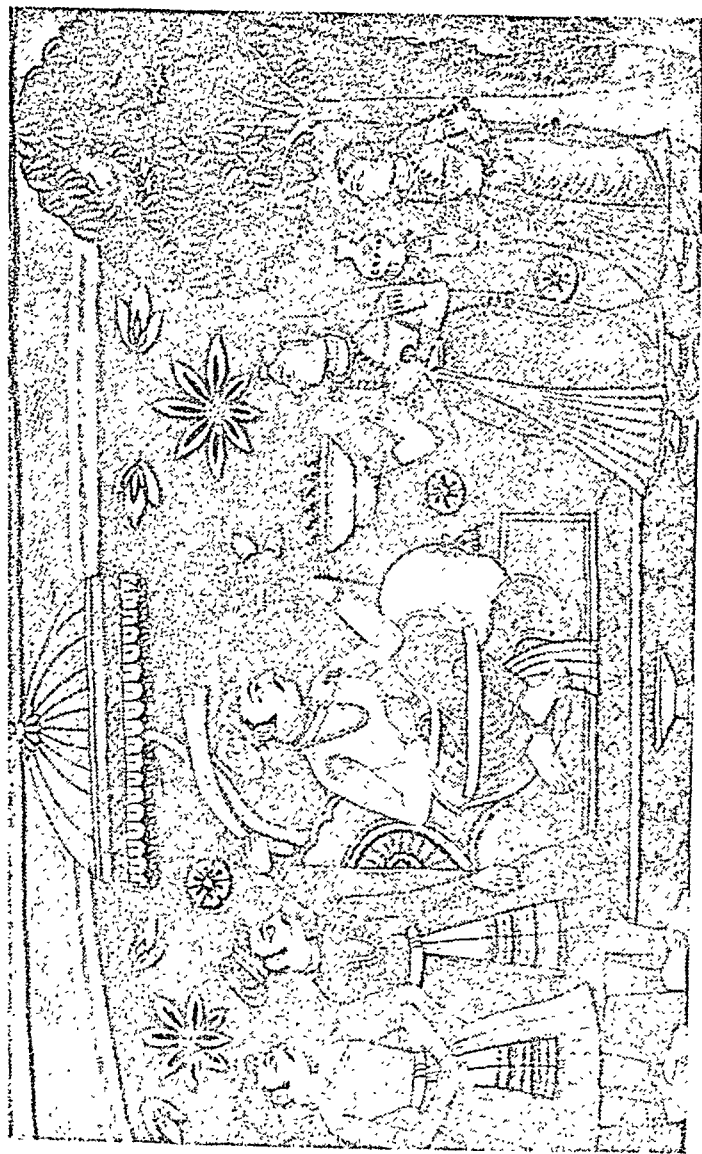
विरक्त चित्त राजा यशोधर को रानी ने वार्तालाप करते हुये पानी में फेंक दिया।

नरेश ! वह रक्ता नृपको नदीमें पटक आप निर्भय होती उस पांगुलके साथ स्वेच्छापूर्वक रमण करने लगी । पश्चात् निज प्राण-वल्लभ पांगुलको कंधोंपर धारण कर घूमने लगी। पांगुल निज गान विद्यासे लोगोंको रंजायमान कर पैसा वसूल करता था।

उस समय दुष्टाकी कृतिसे उसका सतीत्व प्रगट हुआ अर्थात् जो देखता था वही अपने मुखसे उसकी इस प्रकार प्रशंसा करता था कि देखो अपने स्वामीको कंधों पर चढ़ाये फिरती है।

इसी प्रकार घूमती फिरती चम्पापुरीमें पहुंची । वहां पंगुके गानेकी और रक्ताके सतीत्वकी प्रशंसा समस्त नगरमें फैल गई तब एक समय राजमंत्रियोंने राजासे उसकी प्रशंसा की तो उसे सुन राजाने कहा—

यद्यपि मैं स्त्रीके नामसे अत्यन्त विरक्त हूं तथापि तुम लोगोंके कहनेसे पर्दाके अन्दरसे उसका गाना सुन लूंगा ऐसा कहकर जैसे ही उसका गाना सुना कि तत्काल मालूम होगया कि यह वही दुष्टिनी रक्ता रानी निज प्रेमीको कन्धों पर धारण करती निज सतीत्वको प्रगट करती है ।

तत्पश्चात् राजाको इस दुष्टाके चरित्रसे हृदयमें वैराग्य उत्पन्न हो जानेसे जिन दीक्षासे दीक्षित होकर महातपमें तत्पर होगया । स्त्रियोंका चरित्र अगाध है इत्यादि ।

मारिदत्त महाराजसे क्षुल्लक महाराज पुनः कहने लगे— राजन् ! इस प्रकार व्यभिचारिणी स्त्रियोंके दुश्चारित्रका चिंतवन करते यावत् शयनस्थ हो रहे थे, तावत् वह पसेवसे आर्द्रित शरीरा जारिणी अमृतादेवी निज प्रेमी कूबड़ासे रमण कर म्लान मुखी होकर मेरे भुजपंजरमें प्रवेश करती मुझे ऐसी ज्ञात हुई मानो विषपूर्ण सर्पिणी ही है । अथवा मृतक भक्षिणी डाकिनी ही मेरे निकट आई है ।

नृपवर ! उस समय यद्यपि वह मेरे निकट शयनस्थ हो रही थी। तथापि मैं निज हृदयमें यह चितवन करने लगा कि जैसे खाज खुजानेमें सुख होकर पश्चात् दुखित करता है उसी प्रकार विषय सेवनमें सुख होता है। जो आभरणोंका भार है वह सर्व गात्रको दमन करता और नृत्य आहारको दमन करता है। जो शरीरकी लावण्यता है वह अशुचि रसको उत्पन्न करनेवाली है।

जो स्नेहका बंधन है वह दुःखका कारण है। गान विद्याका प्रकाश है वह गानेके छलसे बिरही होता हुआ रुदन करता हैं। जो प्रिय संभाषण है वह मर्मका तोड़नेवाला है। जो स्त्रीके रूपादिकका अवलोकन है वह काम ज्वरका वढ़ानेवाला है। प्रियाका आलिंगन है वह शरीरको पीड़ा करनेवाला है।

जो स्त्रीके निरन्तर अनुवन्धमें राग है वह दुःखपूरित करागार है और जो प्रेम है वह ईर्ष्याकी अग्नि है, उसमें दग्ध होता हुआ पुरुष आकुलित होता है और स्त्री सेवनादि क्रियासे उत्पन्न हुआ काम है वह स्त्रियोंके हाथका तीक्ष्ण कृपाण है। उसीके द्वारा दुष्टा व्यभिचारिणी परपुरुषरता वनिता निज पतिका घातकर पश्चात् आप भी मरणको प्राप्त होकर संसार वनमें परिभ्रमण करती है। इत्यादि और भी विचारने लगे।

जो जीवको वाधाकारक विस्तीर्ण और उत्कृष्ट दुष्कृत्यका घर तथा गरिष्ट दुःख है उस इंद्रिय जनित सुखका पंडित जन कैसे सेवन करें ? कदापि नहीं करते।

पृथ्वीनाथ ! यशोधर महाराज शयनस्थ हुए और भी विचारने लगे—यह जो मनुष्यका शरीर है वह रोगोंका स्थान है क्योंकि यह शरीर धोया हुआ पवित्र नहीं होता, सुगन्धित किये सौरभित नहीं होता किन्तु शरीरके संसर्गसे उत्तम सुगंधित पदार्थ भी दुर्गंधमय हो जाता है।

यह क्षणभंगुर शरीर पुष्ट किया हुआ भी बलवान् नहीं

होता, प्रसन्न किया हुआ अपना नहीं होता । मंडन किया हुआ विवर्ण हो जाता है । भूषित किया हुआ भी अशोभन रहता है । अनेक प्रकार उवटने किया हुआ भी मरणसे भयभीत रहता है, दीक्षासे दीक्षित किया हुआ क्षुधाके अर्थ अनेक प्रयत्न करता है; अनेक उत्तम शिक्षा देते हुए भी अवगुणोंमें रमण करता है, शांतिरूप किया भी दुःखित होता है, निवारण किया हुआ भी पापमें पतन करता है, धर्म शिक्षा देते हुए भी धर्मसे विमुख रहता है ।

यह नाशवान् गात्र तैलादि मर्दन करते हुए भी रुक्ष रहता है, पथ्य सेवन करते हुये भी प्रचुर रोगसे ग्रसित हो जाता है, अल्पाहार करने पर भी अजीर्णसे व्याप्त हो जाता है, वातनाशक तैलादिक मर्दन किया हुआ भी बातव्याधिसे पीड़ित होता है, सीतल पदार्थोंका सेवन करते हुए भी पित्तसे व्याकुल होता है, रुक्ष और तीक्ष्ण पदार्थोंके सेवनसे भी कफ कर व्याकुल रहता अनेक प्रकार प्रक्षालन किया हुआ भी कुष्टसे गलित होता है ।

बहुत कहांतक विचार करना यह शरीर अनेक प्रकार रक्षित किया हुआ भी यमराजके मुखका ग्रास बन जाता है । यद्यपि यह शरीर उपरोक्त प्रकारसे विपरीत प्रवर्त्तमान होता है तथापि रागी पुरुष इस शरीरके अर्थ अनेक प्रकारके पाप-कर्मोंमें तत्पर होता है ।

इस प्रकार मुझ सरीखा मूर्ख मनुष्य निज स्त्रीके वश पाप कर्म करता और गृह व्यापारमें संलग्न होता मरकर नरकमें जाता है ।

इसप्रकारचिन्तवन करते यशोधर महाराज और भी विचा-रने लगे कि इस शरीरकी यह अवस्था है और जिसके अर्थ अनेक पाप कर्म करता हूं उस प्रियतमाकी यह दशा है तो अब मुझे भी समस्य कार्योंको त्यागना चाहिये इससे अब प्रभात होते

ही नगर परिवार और राजलक्ष्मीका त्याग कर गहन वन और सघन पर्वतोंकी गुफाओंका आश्रय करूँ तथा देवेन्द्र धरणेन्द्र और नरेन्द्रोंकर पूज्य मुनि-लिग धारण कर महातपका आचरण करूँगा।

धरानाथ ! इसी प्रकार चिंतवन करते-करते प्रभात हो गया। उस समय दिवाकर अपनी रक्त किरणोंके समूह युक्त उदय होता अशोक वृक्षके नवीन पत्रकी भांति सुशोभित होता था।

राजन् ! वह दिवानाथ उदय समय ऐसा दृष्टिगत होता था मानों आकाशदेवीने लोकजनोंके रंजित करनेको सिंदूरका तिलक ही धारण किया है। वह दिनपति तीनलोकको प्रकाशित करता कैसा ज्ञात होता था मानों आकाशदेवीने उदयाचलके रत्न विनिर्मित छत्र ही धारण किया है अथवा दिशारूप कान्तिनीके कुंकुमका समूह ही है।

पृथ्वीपति ! वह अर्ध उदय होता भास्कर मुझ विरक्त हृदय ने कैसा जाना मानों जगज्जन भक्षक यमराजका भमाया हुआ चक्र ही है। उस समय प्रभात सम्बन्धी वादित्रोंके माङ्गलिक शब्द श्रवण कर सेजसे उठा पश्चात् स्नानादि नित्य क्रियासे निश्चित होकर मैंने ऐसा चिंतवन किया जब कि मैंने इस शरीर से ही ममत्व छोड़ा तो इन रत्नजड़ित आभूषणों और बहुमूल्य वस्त्रोंसे क्या प्रयोजन है ?

इस शरीर संस्कारसे कामकी वृद्धि होती है जिस कामदेवका फल मुझे प्रत्यक्ष मिल चुका है। इस कारण इनका धारण करना सर्वथा अनुचित है। एवं चिंतवन कर जैसे ही समस्त आभूषण कुटुंबियोंको देनेके अर्थ उद्यम किया तैसे ही दूसरा विचार उपस्थित होने लगा।

श्रीमान् मैंने क्या विचार किया कि यदि इस समय सकल आभूषण दूर कर दूंगा तो समस्त अन्तःपुरमें यह वार्ता विस्तरित

हो जायगी कि महाराजने कुछ भी अमनोज्ञ देखा है, इस कारण उदास चित्त होकर आभूषणोंका त्याग किया है। तथा मेरी सभावर्ती पंडित मण्डली समस्त अभिप्रायोंकी ज्ञाता है, उससे यह भेद किसी प्रकार गुप्त नहीं रह सकता।

इसके सिवाय यही वार्त्ता अनेक रूप धारण कर समस्त नगरमें फैल जायगी। इससे प्रजाजनोंके चित्तोंमें अनेक प्रकारके विचार उत्पन्न होने लगेंगे तिस पर भी जो कहीं अमृतादेवी इस रहस्यकी ज्ञाता हो जायगी तो आप मरेगी और मेरे नाशका षड्यंत रचेगी इत्यादि पूर्वापर विचार कर मैंने पूर्ववत् सर्व वस्त्राभूषण धारण किये। वे मुझे ऐसे ज्ञात होते थे मानों समस्त दुःखोंके समूह ही मेरे सर्व गात्रमें लिप्त हो रहे हैं।

राजन्! सर्व शुभाशुभ, जीवन, मरण, लाभ, अलाभ, सुख दुख और शत्रुकृत घातके ज्ञाता जो विपुल बुद्धिके धारक तथा समस्त ऋद्धि समूह जिनके हस्तगत हुआ है, ऐसे योगीश्वर भी स्त्रियोंके चारित्रको नहीं जान सकते तो अन्य पुरुषोंकी कथा ही क्या है?

हाथी बाँधे जाते हैं, सिंह रोके जाते हैं और संग्राममें प्रवल शत्रु भी जीते जाते हैं परन्तु पर पुरुषासक्त स्त्रीके चित्तको कोई भी ग्रहण नहीं कर सकता।

नृपवर! इस प्रकार चिंतवन कर मैं (यशोधर नृप) निज हृदयमें उदास भाव धारण करता सभामें गया। वहाँ रत्नजड़ित सिंहासन पर उपस्थित हुआ।

उस ससय दोनों पार्श्वोंमें खड़े पुरुष चमर ढारते थे, सभा मण्डपमें नृत्यकारिणी नृत्य करतीं थीं, नर्त्तकगण अनेक कौतुक करते थे। वीणा, वांसुरी, मृदंग आदि वादित्रोंकी गुँजार हो रही थी, एक तरफ चारण भाटगण प्रभातकी स्तुति करते थे।

राजन्! उस समयका समस्त समाज यद्यपि सुखकर था

तथापि मुझ (यशोधर नृप) को दु.खकर ज्ञात होता था।

नृपेश ! उस समय विद्वान् पंडितोंने सरल कथाका प्रारम्भ किया जिससे मेरे चित्तमें हर्ष उत्पन्न होने लगा।

उसी अवसरमें रत्न सुवर्ण निर्मित दण्डसे मंडित करवाले चोपदारोंने पर मण्डलके नृपगण मन्त्री भट आदिका सभामें प्रवेश करवाया। उन सबोंने अपने मुकुटगत मणियोंकी प्रभासे धरातलको प्रकाशित कर मुझे नमस्कार किया।

पश्चात् चोपदारोंने सबको यथास्थान स्थापित किया। यद्यपि उस समयका अपूर्व दृश्य था, परन्तु मुझ विरागीको किंचित् भी रुचिकर न हुआ।

महाराज मारिदत्त ! उपर्युक्त समाज सहित सभामण्डपमें सुकविके काव्य सदृश मेरी माता चन्द्रमतीका शुभागमन हुआ। उस समय मैंने तपश्चरणका उपाय चित्तमें धारण कर मिथ्या स्वप्नका वृत्तांत मातासे निवेदन किया।

मैंने कहा—हे मात ! आज रात्रि समय शयनावस्थामें मैंने एक भयानक स्वप्न देखा अर्थात् विकराल, दुष्ट, रक्तनेत्र, श्यामगात्र, एक महा भयानक विकराल वदन पुरुष हाथमें दण्ड लिए मेरे सम्मुख खड़ा हुआ कहता है कि तू जिनराजकी दीक्षा शीघ्र ग्रहण कर नहीं तो तुझे तेरी तलवार सहित नष्ट कर यमनपुरको पहुँचाऊँगा, ऐसा कहकर वह तत्काल अदृश्य हो गया।

नृपवर ! मैंने और भी मातुश्रीसे कहा—माता, वह भीम-मूर्ति मेरे नेत्रोंके सम्मुख नृत्य कर रही है इससे कुछ भी मुझे अच्छा नहीं लगता। किसकी पृथ्वी और किसका राज्य, किसकी स्त्री, किसका पुत्र, मुझे किसीसे कुछ प्रयोजन नहीं है।

———

राजा यशोधरका वैराग्य

अब तो केवल आत्मकल्याण ही इष्ट है इससे समस्त परिग्रहका त्याग कर दुःसह इंद्रियोंके बलका विजय करूंगा और जिन दीक्षा धारण कर महा तप तपूंगा।

हे मात! रात्रि समय जो मैंने निकृष्ट स्वप्न देखा है इससे यही निश्चित किया है कि निश्चिल बुद्धि जो यशोमति नामका पुत्र है उसे स्थापन कर राज्येश करना योग्य है।

जननी! दुष्टस्वप्नकी शांतिके अर्थ जिन दीक्षा ग्रहण करने के सिवाय अन्य कोई उपाय नहीं। ऐसा सुन मुनि गुण घातिनी और मिथ्यात्व विष दूषित मेरी (यशोधरी) माता कहने लगी—

चंद्रमति—पुत्र! चिंतित मनोरथ और समस्त आशाओंको पूरनेवाली कुलदेवता (चंडमारी) के अर्थ समस्त जीवोंके युगल वलि देनेसे दुःख क्लेश कलह और दुःस्वप्न आदि समस्त कष्ट शाँत होते हैं तो तेरे भी शांति अवश्य होगी। इसकारण हे सुत! तू भी कुलदेवताकी सेवामें तल्लीन होकर शांति कर्म करनेका उपाय कर।

क्षुल्लक महाराज कहते हैं—अहो राजन्! मारिदत्त! जिस समय मेरी माताने दयारहित उपर्युक्त वचन कहे उस समय करुणाकर कम्पितहृदय यशोधर नृप (मैं) इस प्रकार कहने लगा—

यशोधरनृप—अहो जननि! हे भट्टारिके! महापापका कारण प्राणियोंका वध किस प्रकार करना उचित है! क्योंकि जीव हिंसा समान न कोई पाप हुआ न है और न होगा। जो पर जीवका विपरीत चिंतवन कर अपनी रक्षाकी इच्छा करता है वह अग्निसे शीतल होना चाहता है।

यह तो प्रत्यक्ष है कि जो दूसरेका उपकार करता है उसीका

भला होता है और जो अन्यका बुरा करता है उसका बुरा ही होता है। उसका भला तीन कालमें भी नहीं हो सकता ; क्योंकि जीव बधमें प्रत्यक्ष पाप है और पापका फल दु:ख है तो इससे शांति किस प्रकार होगी ? कदापि नहीं होगी !

मातुश्री ! जो जीवका घातक होता है वह उस जीव द्वारा अनेक प्रकार घाता जाता है इस कारण पापरूपी नौकामें बैठकर विघ्नरूपी सरिताके पार किस प्रकार हो सकता है ?

इसके सिवाय एक बात और भी है कि यदि जीव वधमें हीं धर्म होय और इसीसे विघ्नोंकी शांति हो जाय तो पाप किस कार्यमें होगा ?

इस बात को समस्त मतवाले मानते हैं और यही वाक्य नित्य उच्चारण करते हैं कि "अहिंसा परमो धर्मः" इस वाक्य के वहिर्भूत कोई नहीं फिर "जीव वधमें धर्म होता है" ऐसा कहनेवाला कौन होगा ?

इस लोकमें और परलोकमें जीवहिंसा भयकारी है अतः दु:खकर भी न देखा जाय। ऐसे आयुके क्षयमें निश्चय कर चंडमारीदेवी क्या कर सकती है ?

मात ! पूर्व समयमें असंख्य महापुरुष कालके ग्रास होकर परलोकवासी हो गये सो क्या उस समय चंडमारी देवी नहीं थी या नैवेद्य और पशुओंके समूह नहीं थे अथवा मद्यमांसका सरस भक्षण नहीं था या इस रीतिके ज्ञाता नहीं थे जो कि चंडमारीको पशु तथा मद्य आदिकी वलि देकर उसे संतुष्ट कर लेते और मरणसे बच जाते ?

इससे यही निश्चय होता है कि चंडमारीमें यह शक्ति नहीं कि किसी जीवको कालसे बचासके और उसको शांतिप्रदान कर सके।

संसारमें यावन्मात्र जीव समूह हैं वे अपने-अपने कर्मोंके
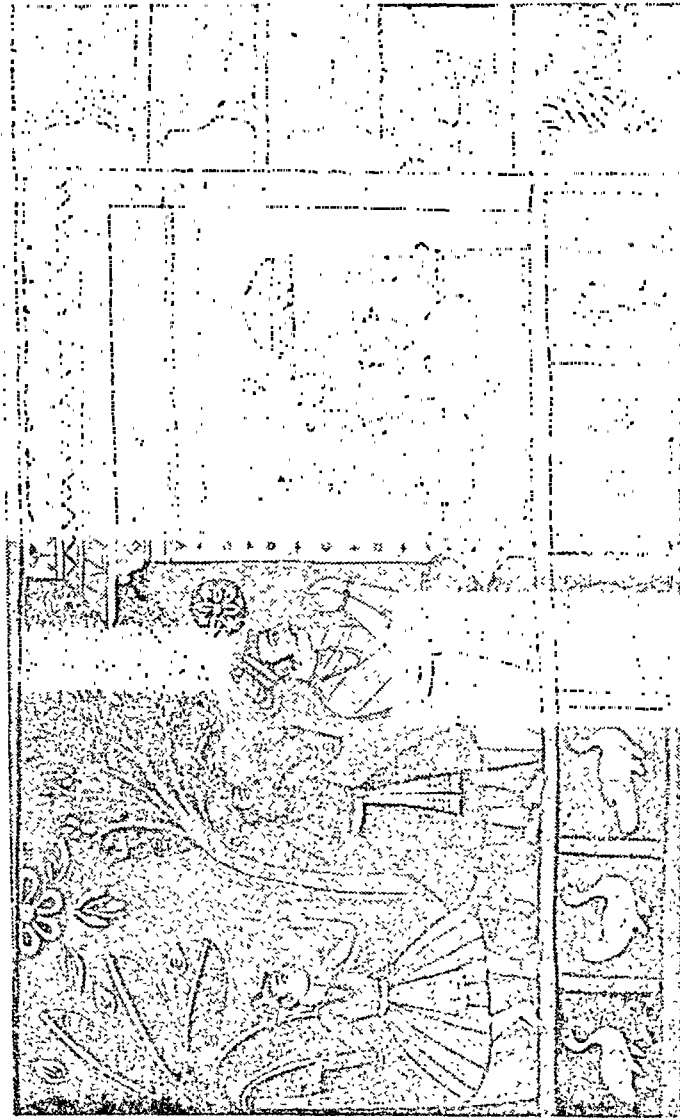
महाराजा यशोधर ने अपनी माता से वैराग्य की बात बताई।
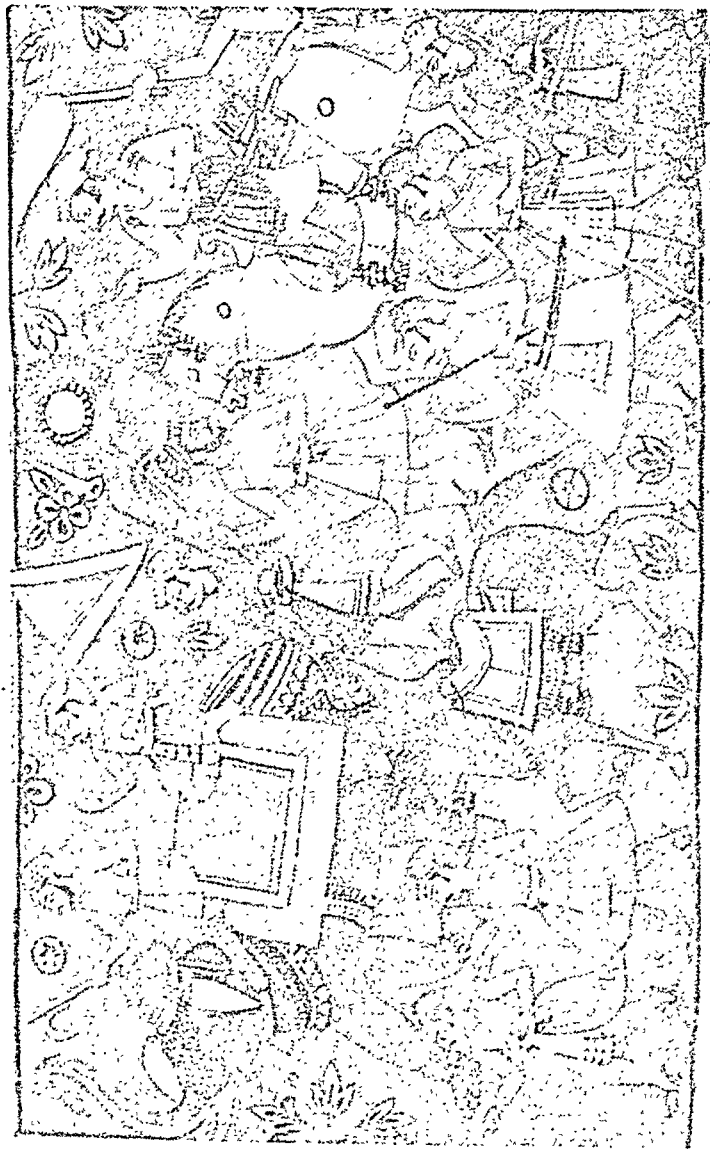
राजा अपनी रानी अभयमती के साथ प्रजा और सेना सहित मुनिराज के दर्शन को गया ।

आधीन सुख दुःखका भोग करते हैं, कोई भी किसीका न उपकार करता है किन्तु शुभाशुभ कर्म ही अपकार और उपकार का कर्त्ता होता है।

राजन्! इस प्रकार यशोधरनृपके (मेरे) वचन सुन माता चन्द्रमती पुनः कहने लगी—

चन्द्रमति—प्रिय पुत्र! समस्त जगतमें धर्मरूप वृक्षका मूल वेद है इस कारण वेद द्वारा संपादित जो मार्ग है राजाओंको उसीका पथिक बनना उचित है और वेदमें देवताके अर्थ पशुओंका घात करना प्रशंसनीय और पूज्य वर्णन किया है इसीसे जीव वध पुण्य माना है और इसके करनेवाले महापुरुष स्वर्गके अधिकारी माने गए हैं।

जो पशुका घात करता है और मांसका भक्षण करता है वह स्वर्ग और मोक्ष प्रति गमन करता है एवं जैसा ब्रह्माने वर्णन किया है, उसी प्रकार विपुलमतिके धारक सुरगुरु तथा भैरवाचार्य प्रतिपादन करते हैं।

राजन्! मेरी माताने इस प्रकार कहकर और भी कहा—प्रियपुत्र! उपर्युक्त कथनानुसार कुल देवता [चंडमारी] के अर्थ पशुओंका वलिप्रदान कर शांति स्थापन कर। इसीसे तेरे कांति तुष्टि पुष्टि होकर उज्वलनेत्रा विजयलक्ष्मी तेरे हृदयमें वास करेंगी।

पुत्रवर! उस महादेवीके सन्मुख जीवोंका हवन करनेसे तेरे समस्त शत्रुगण त्रासयुक्त होते हुए तेरे चरणोंको नमस्कार करेंगे और तेरा शुभ्रयश दिगंतरोंमें विस्तृत हो जायेगा।

क्षुल्लक महाराज कहने लगे—राजन्! मारिदत्त यशोधर की [मेरी] माता उपरोक्त उपदेश देकर जब मौनस्थ हो गई तब मैंने (यशोधर महाराजने) पुनः कहना आरम्भ किया—

यशोधर—प्रिय माता! तूने जो कुछ कहा वह सर्व अनुचित

और मिथ्या है क्योंकि जो हिंसा मार्गके प्ररूपक, हिंसाके प्रणेता और हिंसा उपदेशके श्रोता हैं वे महा घोरतर पापके करनेवाले महापापी हैं और जो पुरुष तीक्ष्ण खड्गकी धारासे पशुओंका घात करते हैं वे निकृष्ट और पापिष्ट हैं।

जो पुरुष दीन पशुओंको वन्धनमें डालकर त्रासित करते हैं, उनका वधकर उनके मांसका भक्षण करते हैं तथा मद्यपान कर देवता की भक्तिमें लीन होकर नृत्य करते हैं, गान करते हैं और वादित्र बजाते हैं वे महापापके योगसे रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूम्रप्रभा, तमप्रभा और महातमप्रभा, इन सातों नरकोंकी पृथ्वीमें उत्पन्न होकर ताड़न, मारण, शूली-रोहण आदि असंख्य कष्टों के पात्र बनते हैं और जब वहांसे निकलकर हिंसक तिर्यंच होकर अतिरौद्र दुख रूप कुयोनियोंमें भ्रमण कर किसी पुण्य योगसे यदि मनुष्य पर्याय धारण करते हैं तो क्षुधावन्त, मूक, खल्वाट, पंगु, वधिर, नेत्रविहीन, निर्बल, दीन, दरिद्री, दुःखसे पीड़ित, क्षीणगात्र, निष्काम (नपुंसक), शक्तिहीन, तेज रहित, अविवेकी, गौ आदि पशुओंके घातक, चाण्डाल, नीच कर्मसे आजीविका करनेवाले, धीवर, कलाल हिंसक, क्रूर परिणामी होते हैं।

पश्चात् मरण प्राप्त होकर सिंह, शार्दूल, मार्जार आदि पशु तथा सर्प, गृद्ध आदि पक्षियोंकी योनियोंमें भ्रमण कर महा घोर वेदना भोगते हैं।

पशुओंके वध करनेसे और परकी हिंसासे ही यदि धर्म उत्पन्न होता होय तो वहुगुणी और मुक्त मुनियोंको पापी जीव क्यों नमस्कार करते हैं?

यशोधर महाराज निज मातासे और भी कहने लगे—

यदि मन्त्र संस्कारपूर्वक तीक्ष्ण खड्गकी धारासे पशुओंका वध करो, दिशाओंमें वलि प्रदान कर अग्निमें हवन करो, देव-

गण और पितृजनोंका तर्पण करो, मुँड मुड़ाकर कषायले रक्त वस्त्र धारण करो, अनेक सरिताओं सरोवरोंमें स्नान कर राख-लिप्त गात्र करो, गर्भसे उत्कट जटा धारण करो, इन्द्रियोंका दमनकर पंचाग्नि तपो, धूम्रपान करो, नग्न मुद्रा धारण करो, वन पर्वत और कंदराओंमें बास करो, आतापन चान्द्रायण और शुद्धोदनादि व्रतोंका चिरकाल पर्यंत धारण करो, इत्यादि और अनेक दुर्द्धर तपोंका आचरण करो, परन्तु जीवदया विना समस्त निष्फल ही नहीं है, किन्तु उनके धारक घोर वेदनायुक्त नरकोंके कष्टोंको सहनकर अनन्त काल पर्यंत भ्रमण करते हैं।

राजन्! कोटि शास्त्रोंका सार यही है कि जो पाप है वह हिंसामें है और जो धर्म है वह जीवदया है।

इस प्रकार होते हुए अरिहंत भगवानने जो नयोंका प्रतिपादन किया उसे न करते मदगर्भित जीवोंकर जीवोंका संघात होता है।

जो पुरुष जीवका संहार करता है वह अनेक जन्मोंमें अनेक रोगोंसे ग्रसित होता बहुत भारका बहनेवाला होता है। जो पर जीवको ताड़न मारणादि कष्ट देता है वह अनेक भवोंमें अनेक दुःखोंका भोक्ता होता है।

इत्यादि कहते हुए मैंने कहा कि मात! मैं भी तो अमर नहीं फिर इस नाशवान् शरीरके निमित्त किसप्रकार पर जीवका घात किया जाय! ऐसा कहकर तीक्ष्ण खड्ग म्यानसे निकाल जैसे ही कुण्डल मुकुटयुक्त निज मस्तकके भग्न करने का आरम्भ किया था कि मेरी माताके हाहाकार शब्द करने पर निकट तिष्ठे हुए नर-रत्नोंने मेरा खड्ग पकड़ लिया!

तत्पश्चात् वृद्धा माता चंद्रमतीने मेरे चरणोंमें पड़कर कहा—हे पुत्ररत्न! मैंने यथार्थमें असत्य कहा, परन्तु जीव चेतनतत्व गुणविशिष्ट है और शरीर अचेतन है इस कारण शरीरका घात

करनेसे पौद्गलिक शरीरको इस वातका बोध नहीं होता कि मैं भग्न किया जाता हूँ अथवा मेरे शरीरमें किसी प्रकारकी पीड़ा होती है इसके सिवाय शरीरके नाश होनेमें नित्य आत्माका नाश नहीं होता।

इस कारण हे पुत्र ? अपने कुल कर्मसे चला आया जो मार्ग है उसे स्वीकार करना ही सर्वथा उचित है। इत्यादि चरणोंमें पड़ी माताने ऐसा कहा, तव मैंने कहा कि हे माता ! इस कार्यमें यद्यपि अधर्म है तथापि तेरी आज्ञाका प्रतिपालन करूँगा, पश्चात तपश्चरण धारण करूँगा ऐसा जव मैंने कहा तव माता चन्द्रमती मेरे चरणोंपर से मस्तक उठाकर सहर्ष तिष्ठी।

तत्पश्चात् लेपकारको वुलाकर पिष्ट निर्मित कुर्कटके लाने-का आदेश किया।

मेरी माताने जिस काल हास्य पूर्वक लेपकार [चितेरे] से कुकुंट लाने को कहा वह तत्काल [चितेरे] पिट्ठीसे वना हुआ उत्कट वर्णका धारक कुर्कुट [मुर्गा] ले आया।

क्षुल्लक महाराज मारिदत्त नृपसे और भी कहने लगे—

राजन् ! उस कुर्कुट का रूप रंग ऐसा मनोज्ञ दृष्टिगत होता था, मानो अपने उत्कटवर्ण युक्त पक्षोंसे अभी गगन मार्ग से उड़ा जाता है। वह कूकड़ा गर्दन उठाये चंचु खोले ऐसा ज्ञात होता था, मानो प्रातःकालीन शब्दोंका उच्चारण कर समस्त लोगोंको जागृत ही करता है।

नृपवर ? उस चित्रकारने ऐसा उत्तम यथास्थानीय रंग देकर मुर्गा वनाया था कि जिसके देखनेसे कोई नहीं कह सकता कि यह कृत्रिम कुर्कुट है किन्तु विधाताकी चित्रकारीकी उत्त-मता ज्ञात होती थी।

महाराजाधिराज ! जिस समय मेरी दृष्टिका और उस

कूकड़ेका सम्बन्ध हुआ, उसी समय मेरी माताके आदेशसे पटह, ढोल, मृदंग, शंख, मादम, काहल, वांसुरी, और झांझ आदि वादित्रोंके शब्दसे गगनांगण पूरित होने लगा तथा अनेक प्रकारके वृक्षोंके सुगन्धित पुष्पोंका समूह दधि दूर्वा [दूव] चन्दन आदि सामग्री एकत्रित होगई ।

राजन् ! उस समय मेरी माताने मुझसे कहा कि प्रिय पुत्र ? अब विलम्बका समय नहीं, शीघ्र ही कुछ देवताके अर्थ बलि प्रदान करना चाहिये ।

इस प्रकार माताकी आज्ञानुसार उठकर समस्त मण्डली तथा पूजन करनेवाले विप्रोंके समूह सहित महोत्सव पूर्वक कुल देवता के मंदिर प्रति पहुँचे ।

वहां हम दोनों माता पुत्रोंने देवी की प्रदक्षिणा देकर उपर्युक्त सामग्रीसे देवी का पूजन किया ।

पश्चात् देवीके ऊपर पिष्ट निर्मित कुर्कुटका उत्तारण कर कुलदेवीके अग्रभागमें तीक्ष्ण छुरिकासे उसका घात कर कुकड़ेके भीतरसे निकले हुए आरक्तवर्ण जलमें रुधिरका संकल्प कर देवीके गात्रका सिंचन किया और पिष्ट निर्मित शरीरमें मांस की कल्पना कर देवी सन्मुख चढ़ा दिया । तत्पश्चात् हम दोनों माता पुत्रोंने हाथ जोड़कर देवीसे प्रार्थना की कि—

हे माता ! यह अपूर्ण कार्य पूर्ण होवे, इस प्रकार तीन वार कहने उपरांत समस्त पुजारी विप्रोंने घृत, शहद आदि वस्तुओं मिश्रित कर सबको बांट दिया सो हम सबने तथा ब्राह्मणोंने मांस ज्ञातकर माता के प्रसादका भक्षण किया ।

वही संकल्पी हिंसा और कल्पना मात्र मांस भक्षणसे जो पापका बंध हुआ वह वचन अगोचर है ।

राजन ! तदुपरांत समीचीन भावसे योगिनी (देवी) को नमस्कार कर मैंने कहा—हे माता ? तुझे देखकर संतुष्टतासे

मनुष्य संताप से मुक्त हो जाता है।

पृथ्वीनाथ ! मैंने योगिनीसे और प्रार्थना की—हे देवी ! तेरी कृपासे मुझे जंघाबल, बाहुबल और मेरा अचल जीवितव्य होवे। हे सुरेश्वरी ! महान् अरण्य, अति कष्ट और प्रिय वियोगमें मेरी रक्षा करो।

इस प्रकार विज्ञप्ति करता देवीकी शरणमें प्राप्त हुआ परन्तु निकट आए हुए मरणसे किंचित् भी ज्ञात न हुआ।

तत्पश्चात् हर्षपूर्वक निज मन्दिर प्रति जाकर निज पुत्रका सुवर्णके कलशोंसे अभिषेक कराकर उसे राज्यासन पर स्थापित किया।

नृपेश ! जिस समय मैं समस्त कार्योंसे निश्चित् होकर तपोवनको उद्यत हुआ ही था कि इतनेमें अमृतमयी कांताने अपना संकल्प दृढ़ किया अर्थात् वह निज हृदयमें विचारने लगी कि रात्रि समय कूबड़ाके साथ जो क्रिया की वह स्वामीको ज्ञात हो गई इसीसे सामन्त, मंत्री आदि परिकर और समुदांत पृथ्वीका राज्य त्यागकर तपश्चरणकी इच्छा करता है क्योंकि मैंने महाराजके मनका भाव उनके शरीरकी आकृतिसे ज्ञात किया है।

जैसे सुन्दर पत्रों सहित वल्लरी पुष्पोंसे ज्ञात होती है कि इसमें फल होंयगे इसी प्रकार अखंड शरीरके लक्षणों से दूसरेका हृदय भी जाना जाता है।

इस प्रकार चिंतवन करती अमृतादेवी निज हृदयमें दृढ़ संकल्प कर मेरे निकट आकर कहने लगी—

अमृतादेवी—स्वामिन् ! आपने जो दीक्षा ग्रहण करनेका दृढ़ संकल्प किया है वह अति उत्तम है परन्तु मेरी एक प्रार्थना है उसे सहर्ष स्वीकार करें पश्चात् तपोवनको प्रयाण कीजिये।

प्राणेश्वर ! (चरणोंमें पड़कर) आपकी मंगल कामनाके निमित्त समस्त अन्तःपुर और नगरनिवासी जनोंको निमंत्रित

किया है सो आप भी देवताके प्रसादका भोजन ग्रहण कीजिये पुनः मैं और आप दोनों ही जिन दीक्षा ग्रहण करेंगे क्योंकि आपके विना मैं इस जीवीतव्यको कहां और किस प्रकार धारण करूंगी ?

प्राणनाथ ! आजदिन और गृहमें तिष्ठो, प्रातःकाल ही जैसे कामदेवके रति, इन्द्रके शची, नारायणके लक्ष्मी, रामचन्द्रके सीता और महामुनिके शुद्ध बुद्धि अनुगामिनी होती है उसी प्रकार आपके चरणोंकी दासी आपके पश्चात् तपोवनको गमन करेंगी।

नाथ ! आपके साथ ही मैं तपश्चरण धारण करूंगी, यम नियमका पालन करूंगी। प्रियपते ! आपके बिना समस्त जन मेरे यौवनको अंगुली उठाकर देखेंगे अर्थात् सर्व लोक ऐसा कहेंगे कि जिसका पति तो समस्त परिग्रहका त्यागकर वनवासी हो गया और यह गृह में निवास करती सुख भोग कर रही है !

मारिदत्त महाराजसे क्षुल्लक महाराज और कहने लगे— राजन् ! भवितव्य बड़ा बलवान् है क्योंकि मेरे चरणोंमें पड़ी अमृतादेवीके स्नेह पूर्ण वाक्योंको सुनकर यद्यपि मेरा विरक्त चित्त हो गया था तथापि भवितव्यानुसार पुनः उसके प्रेमकी पाशमें मैं बंध गया।

नृपवर ! उस समय मैं पुनः ज्ञाननेत्रविहीन होकर उस पर-पुरुषासक्त दुष्टिनीके रात्रिकृत कर्मको स्वप्न सदृश ज्ञात करने लगा।

तत्पश्चात् चरणोंमें पड़ी हुई अमृताके कोमल करकमलको ग्रहण करने लगा कि प्रिये उठ, मैं तेरी इच्छा पूर्ण करूँगा। ऐसा सुनकर वह कपटवेषा प्रफुल्ल वदना हास्य पूर्वक रसौईदारको उत्तमोत्तम भोजनकी आज्ञा देकर कहने लगी कि अब भोजनोंमें क्या विलंब है शीघ्रतर तैयारी करो। ऐसा सुन रसोईदारने कहा—

रसोईदार—(हाथ जोड़कर) स्वामिनि ! भोजन तैयार है किंतु श्री महाराजके पधारनेका ही केवल विलम्ब है।

इस प्रकार रसोईदारके वचन सुन हर्षित-चित्त होती मुझसे कहने लगी—

प्राणपति ! रसोई तयार है, जीमनेके अर्थ शीघ्र पधारिये क्योंकि जब आपके भोजन हो जावेंगे तब अन्य लोगों को जिमाऊंगी।

महाराज मारिदत्त ! इस प्रकार प्रेमपूर्ण अमृतादेवीके वचन सुन हर्षित चित्त होता, बंदीजनोंके विरद् सहित कर्मोंका प्रेरा अमृताके महल प्रति गमन करता भया। वहां पंचवर्णकी ध्वजाओंसे पूर्ण स्फटिक भूमिमें सुकोमल उज्वल आसन पर माता सहित तिष्ठा। उस समय मेरे सन्मुख रक्खे हुए लघुपात्रों सहित सुवर्णका थाल ऐसा दृष्टिगत होने लगा, मानों ताराओंके समूह युक्त आकाश मण्डल ही है।

उस कनकमय थालमें सरस व्यंजन समूह सुकविके काव्यकी भांति सरस अति मनोज्ञ दीखने लगे, तथा भोजन समयकी सभा भी काव्यकी भाँति रसवती भासती थी।

वह अति कोमल सरस निर्मल और धवल एवं उत्तम ईदन [भात] का भोजन गुणलोपी (कृतघ्नी) की भांति देखा।

उस समय नवीन कंचनवर्ण तुषरहित और दो खण्डकी दाल मेरे थालमें रक्खी ऐसे ज्ञात होने लगी, मानों खण्ड किये हुये यमराजके बाण ही हैं।

राजन् ! उस रसोईदारने तपा हुआ घृत, दुग्ध और उत्तम दधि मेरे थाल में क्षेपण किया, सो वह ऐसा दीखने लगा मानों दुष्ट ग्रहणिके संगममें यमपुरका मार्ग ही एकत्रित हुआ है।

तत्पश्चात् परमण्डलीक राजाओंकी भांति मेरे घातक सुगोल मोदक भी दिये गए, वे तीव्र विषयुक्त मोदक उसी अमृतादेवीने प्रेम पूर्वक मुझे दिये।

उसने कहा—स्वामिन् प्राणनाथ ! ये मोदक मेरी माताने

भेजे थे, सो मैंनें आपके भोजनार्थ रख छोड़े थे, आज आपको अर्पण करती हूँ, सो आप सबसे प्रथम इन अमृतमय अति स्वादिष्ट मोदकोंका स्वाद लीजिए। तदनंतर अनेक मशालों सहित तीक्ष्ण खड्गकी भांति शाक भी परोसे गए।

नृपवर ! मैं दुष्टा भार्याके चरित्रसे यद्यपि बिरक्त चित्त था परन्तु पुनः उसकी स्नेहपूरित मोहनी बातों में मोहित होकर ज्ञानशून्य हो गया।

उस समय मुझे किंचित् भी विचार न रहा अर्थात् समस्त उत्तम व्यंजनोंको छोड़ प्रथम मोदकोंका ही भक्षण हम दोनों माता पुत्रोंने किया।

तत्काल ही उस तीव्र विषकी वेदनासे दोनोंका शरीर घूमनें लगा। जब मैंनें जान लिया कि इसमें तीक्ष्ण हलाहल है तब मेरे मुखसे वैद्य वैद्य शीघ्र वैद्यको बुलाओ, इतना ही शब्द निकला था कि तत्काल मूर्छित हो धराशायी हो गया।

उसी समय वह दुष्टा कपटवेषा अमृता मेरी भार्या हा नाथ, हा नाथ ! शब्द करती पुकारने लगी और मायापूर्वक रुदन भी करने लगी। पश्चात्—

सर्व ओरसे चढ़कर ऊपर पड़कर केशभारको विलतारतीं (दुष्टा अमृता) ने अतिकोकल गलेमें दंतों द्वारा पीड़ासहित मुझे मारा।

पृथ्वीनाथ ! जब उसने जाना कि जो कहीं वैद्य आ गया तो मेरा कपट खुल जायगा इससे ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे वैद्यके आजानें पर भी मेरा मायाचार प्रगट न हो।

ऐसा विचारकर उस दुष्टा ने तीक्ष्ण दांतोंसे मेरे गलेमें घावकर मुझे मारा और लोगोंको दिखानेके लिये हा नाथ ! हा प्राणवल्लभ ! इत्यादि पुकारकर रुदन करनें लगी।

नृपवर ! उस दुष्टाके पुकार मचानेसे समस्त परिवार और

अंतःपुर एकत्रित हो गया। राजन् जो पुरुष व्यभिचारिणी कुलटा के वचनोंका विश्वास करता है वह मेरी भांति नष्ट हो जाता है।

उस समय सज्जनजनोंके मन और नेत्रोंको आनन्ददायक मेरे पुत्रको सूचना मिलने पर शरीर कंपित होकर पृथ्वी मंडल पर वह ऐसे पड़ा जैसे वज्रपातसे पर्वत पड़ता है।

पश्चात् सचेत होकर हा नाथ ! हाय तात ! आपके विना समस्त जगत् अंधकारमय भासने लगा।

हाय पिता ! आपके जानेसे मेरे मुखकी छाया भग्न होगई। हाय स्वामिन् ! आप विना यह धरापट्ट शून्य हो गया।

पृथ्वीनाथ! अब इस अवंतीके राज्यका स्वामी कौन होयगा? हाय पितृवर ! आपके विना यह राज्य मुझे रुचिकर नहीं हुआ किंतु उलटा दुःखदायक हो गया। हाय तात ! इस विस्तीर्ण राज्यपर वज्रपात हो, मुझे कुछ भी प्रयोजन नहीं इत्यादि पुकार करता रुदन करता भया और अपने करकमलोंसे निज मस्तक और उरस्थल कूटने लगा।

पृथ्वीनाथ ! उस समय मेरे पुत्र यशोमतिकी यह अवस्था देख वृद्ध मन्त्री, सेनापति आदि मुख्य कर्मचारीगण और वृद्ध कुटुम्बीजन सम्बोधते भये। हे पथ्वीनाथ! जैसे होय तैसे इन दुःख सहित अश्रुपातको रोककर समाधान चित्त होओ।

सर्वलोक कहने लगे—इस आसार संसारमें जितने महापुरुष हुए समस्त कालके कवल बन गए। इस धरातल पर महाराज नल, नहुष, सगर, मांधाता आदि बड़े २ प्रतापी प्रजाके पालक हुए परन्तु समस्त कालके वश होकर समाप्त होगए।

इस मंडलपर वेणुपाल आदि महावली राजा हुए उनको भी कालने भक्षण किया। युवराज ! पूर्व समयमें नारायण, प्रतिनारायण, हलधर, चक्रवर्ति और कामदेव आदि प्रतापी तीन

खण्ड और छह खण्ड पृथ्वीके नाथ अनेक महाराजा हुए, उन्होंने पृथ्वी तल पर अनेक अद्भुत कार्य किये परंतु वे भी यमराजके मुखके ग्रास हो गए ।

चिरंजीव ! जो जन्म धारण करता है वह मरणको साथ लाता है इस कारण संसारकी क्षणभंगुरअवस्था जानकर शोकका त्याग करो किंतु समाधान चित्तसे निज पिता और पितामहीको विधिपूर्वक दग्ध क्रिया करो ।

क्षुल्लक महाराज मारिदत्त नृपतिसे और कहने लगे—नृपश्रेष्ठ ! उस समय समस्त कर्मचारियोंके सम्बोधनेसे यशोमति बोध प्राप्त होकर शोकका त्यागकर पिता (यशोधर) और पितामही (दादी) की दग्ध क्रियाका प्रबन्ध करने लगा अर्थात् उत्तम चंदोवा, स्तम्भ, झल्लरी और क्षुद्र घटिका सहित विमान बनाकर उसमें दोनों शवोंको स्थापित किया ।

पश्चात् पटहा, ढोल, शंख आदि वादित्रोंके शब्द होने लगे । उस समय समस्त बांधवोंके मुख मण्डलकी कांति नष्ट हो गई । किन्तु उस दुष्टा अमृतमतीने यद्यपि बाह्य रीतिसे रुदन आदि बहुत विलाप किया । तथापि उसके मुखकी शोभा विशेष ज्ञात होने लगी ।

उदासचित्त यशोमति राजा दुर्मत होता हुआ वारबार मोहित होने लगा । पुनः मनमें तप्त होने लगा और यह कहने लगा कि तातके विना क्या जीवितव्य है ?

पृथ्वीनाथ ! मेरे शोकसे समस्त अन्तपुरकी स्त्रियां शोकसूचक रक्तवस्त्र धारणकर अनेक लोगोंके साथ मेरे शवके पीछे गमन करती ऐसी दीखती थीं जैसे सूर्यके पीछे संध्या गमन करती है ।

राजन! मेरे शवके संग जाते समस्त लोग कैसे दृष्टिगत होते थे जैसे चन्द्रमाके साथ अनेक नक्षत्र-समूह गमन करते हैं । इसी प्रकार गमन करते, रुदन करते, उरस्थल कूटते महाकाल नामक

यक्षके मन्दिरकी दक्षिण दिशाकी ओर स्मशानमें ले गये वहां समस्त परिजन पुरजन किन्तु अन्य ग्रामोंके राजालोकऔर अनेक सुभट समूह आए परन्तु मलिनभावकी धारनेवाली दुष्टा पापिनी कूवड़ामें आसक्त अमृता नहीं आई।

श्रीमान् ! उस स्मशान स्थलमें कितने ही सुभट ऊँचे हाथकर अति आतुर होते मरणका निश्चयकर स्वामीके शोकसे अपना मस्तक छेदने लगे, कोई सुभट निजदेहके खंड करने लगे, कोई सुभट पृथ्वीनाथके स्नेहसे चिताकी अग्निमें पड़ने लगे, कोई सुभट छुरिकासे निज उदरको भग्न कर चिताकी अग्निमें हवन करने लगे और अनेक वीरपुरुष उदरस्थल कूटते पृथ्वीतलपर लौटने लगे तथा अनेक पुरुष संसारसे विरक्त होकर जिनेश्वरी दीक्षा धारते भये।

नृपवर ! उपरोक्त समुदायके मध्य यशोमति नामक पुत्रने दोनों का अग्नि संस्कार किया पश्चात् अग्निसे वचे हुए अस्थियोंका दुग्धसे सिंचनकर गंगामें क्षेपण किया। तदनंतर मेरे नामसे अनेक विप्रोंको एकत्रित कर अनेक गायोंके समूह, रत्न, सुवर्णके हार आदि आभूषण, वहुमूल्यके उत्तम वस्त्र, चमर, छत्र, सिंहासन और अनेक ग्राम दिये। तथा अन्धे, लूले, लंगड़े, बुभुक्षित, दीनदरिद्री जीवोंको अन्न, वस्त्रादि दिये पश्चात् पुरजन और परिजनको उत्तम भोजन आदिसे संतुष्ट किये।

पृथ्वीनाथ ! मेरे निमित्त यशोमतिने अनेक प्रकार दान किये तो भी समस्त योनियोंमें उत्कृष्ट मनुष्य पर्यायको प्राप्त न हुआ।

धरानाथ ! देखो, संसारी जीव मिथ्यात्व कर्मके उदयसे कैसे मोहित हो रहे हैं कि जिनको इस वातका किंचित् भी वोध नहीं कि जीव अपने ही शुभाशुभ भावोंसे अनेक प्रकारके कर्म

बांधकर संसारमें भ्रमण करते हैं और उनके अर्थ अन्यजन कितना ही दान पुण्य करो परन्तु उन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं होता उल्टा मिथ्यात्वका बंध होता है।

वे अज्ञानी प्रत्यक्ष देखते हुए भी भूल रहे हैं क्योंकि पिताके खानेसे पुत्रका उदर नहीं भरता, इसी प्रकार पुत्रके भोजन करनेसे पिताकी तृप्ति नहीं होती। जबकि निकट तिष्ठे हुएका उदर पूर्ण नहीं होता तो अन्य योनि प्रति गये हुयेके अर्थ जो दिया जायगा वह उसके पास किस प्रकार पहुंच जाता है ?

विषयासक्त जीव तबतक अतिघोर संसारमें ही भ्रमण करते हैं जबतक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रको प्राप्त नहीं होते और उनका चिंतवन नहीं करते।

प्रजापते ! यह तो निश्चय है कि समस्तजीव अपने किये कर्मोंके अनुसार संसारमें भ्रमणकर अनेक योनियोंमें उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार मैं निज कर्मोंके आधीन मरण प्राप्त होकर हिमवन् पर्वतकी दक्षिणदिशाके क्षुद्रवनमें मयूरके उदरमें उत्पन्न हुआ। वह वन व्याघ्र, सिंह, गज, गैंडा, हिरण, और रीछोंके समूहसे भयानक है। जिस वनमें व्याघ्रसमूह हिरणोंका घात करते हैं, और सिंहगण मदोन्मत्त हस्तियोंके समूहसे युद्ध करते हैं।

उस निर्जन अरण्यमें किसी स्थल प्रति घुघू गृद्ध आदि पक्षि-योंके समूह निवास करते हैं। किसी प्रदेशमें सर्प और नकुल युद्धका आरंभ करते हैं। किसी स्थान प्रति भीलोंके समूह वृक्ष-की वेलियोंसे फलोंको चुनते पथिकजनोंके लूटने के अर्थ मार्ग प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कहीं २ बंदर और लंगूरोंके समूह वृक्षोंकी शाखाओंको कंपित करते घोर शब्द कर रहे हैं। कहीं २ अष्टापदोंके समूहको विचरता देख सिंह भाग जाते हैं। जिस अरण्यमें मगनाभि

(कस्तूरी) के अर्थ हिरणोंके घातमें लगे अनेक दुष्टजन विचर रहे हैं।

वृक्षोंके समूहसे सघन उस वनमें अशुभ परिणामों के योगसे दुःखोंसे व्याप्त मयूर कुलमें कुकर्मने लाकर मुझे क्षेपण किया।

नृपवर ! उस भयानक वनके मध्य मयूरके तीव्राग्नि युक्त उदरमें उत्पन्न हुआ। मैं वहां जैसे दुष्टजनोंके वचनोंसे सज्जन जन दग्ध होते हैं उसी प्रकार मयूरकी उदराग्निमें दग्ध होने लगा।

राजन् ! जैसे तप्त कढ़ाहमें नारकी दुःखी होते हैं उसी प्रकार मैं भी पीड़ित हुआ पश्चात् मेरी माता मयूरीने मुझे उदरसे निकाल विलाव आदि हिंसक जीवोंके भयसे कंकटमय वृक्षोंके खण्डोंसे क्षिप्तकर शर्करा (रेती) में पक्षों से ढांक-उदरकी ऊष्मासे संतप्त किया।

तदनंतर पूर्ण दिवस होने पर मुझे अंडासे निकाला सो जब तक मैं चलने और उड़ने योग्य न हुआ तब तक मेरी माता मुझे निज चंचू (चोंच) से अन्नकण चुगाती थी। उसीसे मेरी उदर पूर्णा होती थी।

इसी प्रकार कालक्षेप करते थे कि एक दिन अरण्यमें भ्रमण करती माताको दुष्ट भीलने मारा और मुझे जीवित ही पकड़ लिया पश्चात् मयूरीको एक वस्त्रमें बांध मुझे दूसरे वस्त्रमें लपेट निज घरको चलता बना।

नृपश्रेष्ठ ! उससमय मैं अनेक प्रकार रुदन भी करता था, परंतु उस दुष्ट शिकारीके हृदयमें किंचित् भी दयाका आवेश न हुआ।

राजन् ! उस ग्रीष्म सयममें देहकी उष्णता से मैं कैसा संतप्त हुआ कि जिसके वर्णन करनेको परमेश्वरी, वागेश्वरी (सरस्वती) भी समर्थ नहीं।

नृपवर ! उस भीलने ग्राममें जाकर मेरी मृत माता (मयूरी)
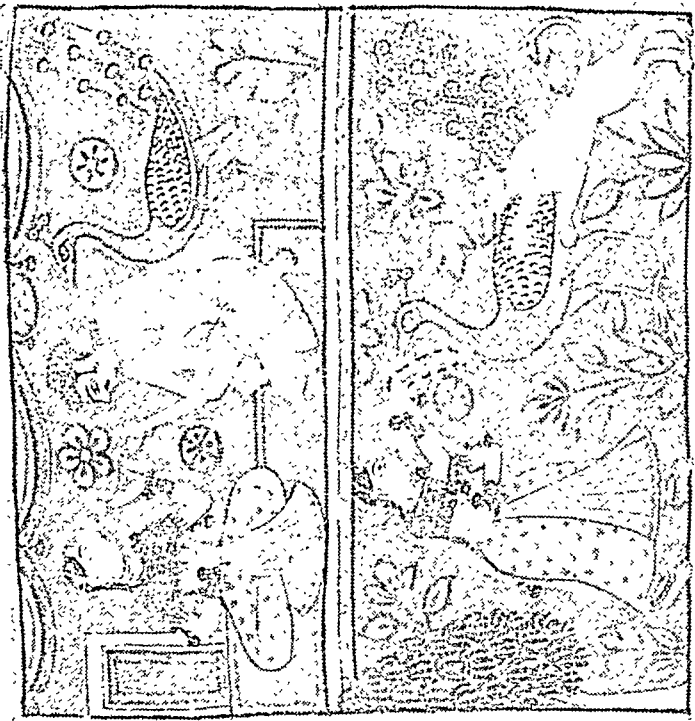
यशोधर का जीव मयूर और रानी चन्द्रमति का जीव श्वान योनि में ।

सुबेलगिरी पर यशोधर का जीव नकुल और माता चन्द्रमति का जीव सर्प ।

को तो कोटपालके हाथ बेच दी, और मुझे निज घरमें ले जाकर पींजरामें बंद कर दिया। पश्चात् दुःखकर कंपित हृदय मुझे देख भीलनीने अपने पति (भील) से कहा—

भीलनी—रे दुष्ट पापिष्ठ ! तू इस बालकको क्यों लाया, इसके मारनेसे क्या होगा ? इसका एक ग्रास भी तो नहीं होगा। क्या इससे उदर भर जायगा ? तू बड़ी मयूरी तो कोटपालको दे आया और छोटा बालक यहां लाया है। अब क्या तूझे भक्षण करूँ ? रे नीच ! अब तू मेरे सन्मुखसे चला जा, मुझे मुख मत दिखा।

इस प्रकार भीलनी निज भार्याके कटुक और रूक्ष बचन सुनकर भील भी कहने लगा—

भील—अरी दुष्टनी ! तू क्यों घबड़ाती है ? अभी जाकर इस बच्चाको भी बेंच आता हूं, उससे जो कुछ द्रव्य मिलेगा उसका अन्न लाकर तुझे देता हूँ तब अच्छी तरह उदर भर लेना।

ऐसा कहकर भीलने उस मयूर बालक (मुझे) को लेकर कोटपालके निकट जाकर, थोड़ा चून लेकर दे दिया। पश्चात् कोटपालने मुझे मारा नहीं किंतु मेरा पालन पोषण किया और मार्जार श्वान आदि जीवोंसे मेरी रक्षा की।

पृथ्वीनाथ ! उस कोटपालके घरमें मैं हंसकी भांति समीचीन कांतियुक्त शरीर होता हुआ। वहां मैं धान्यका भक्षण करता हुआ मनुष्योंको रंजितकर सुमधुर शब्द करता था।

नृपश्रेष्ठ ! पापी जीवोंका भी शरीर आहारके साथ बंधा हुआ है। मैंने कोटपालके घरमें पेटभर भोजन किया जिससे पंचवर्णके रत्नोंकी माला सदृश मेरे पुच्छका गुच्छ निकला तथा मेरा समस्तगात्र अतिशोभा युक्त हुआ, उसे देख हर्षित होकर कोटपालने कहा कि इस बालकको उज्जैनी नगरी जाकर

महाराज यशोमतिकी भेंट करूंगा।

मदमती चन्द्रमती नामकी मेरी माताका जीव उसी उज्जैनी नगरीमें विसरस मूर्छितकाय श्वानकी योनिमें प्राप्त हुआ।

राजन्! मेरी माता चन्द्रमती जो कि विष्णुके चरणोंकी भक्ता, ब्राह्मणोंके भोजन किये हुएमेंसे अवशेष रहे मांसकी भक्षण करनेवाली, मुक्ताहार विभूषित विप्रोंको तोषित करनेवाली, निरंतर चंडिकादेवीको पूजनेवाली, देवीके अर्थ अनेक दीन-पशुओंको मारनेवाली, गंगानदीके जलको पवित्र माननेवाली, बकरा हिरण मेष आदि दीन पशुओं द्वारा कुलदेवी और कुल पितरोंको तृप्ति करनेवाली, और जैन मतानुयायी जीवमात्रके रक्षक नग्न दिगम्बर मुनियों की निन्दा करनेवाली थी। वह अपने अशुभ कर्मोंकी प्रेरणासे श्वानकी योनिमें उत्पन्न हुई।

वह श्वान महाबलवान् पवन समान वेगका धारक चंचल और कुटिल कुलिश [वज्र] सदृश कर्कश नख जिस हाथका प्रहार हिरणोंके समूहका विदारक था।

वह चंचल और वक्र पुच्छका धारक श्वान रोमावलीके भारसे पूर्णकंठ बृहत् उदरपुष्टि और विस्तृत पिष्ठभाग पीत-वर्ण चंचल और भासुर नेत्र युगल वन सूकरोंको आपत्ति विधायक मुख यमराजके करोंत समान तीक्ष्ण दन्त इत्यादि महाविकराल और पाप क्रियामें रत वह श्वान महाराज यशो-मतिकी भेटमें आया और उसी दिन मुझ मयूर बालकको भी कोटपालने ले जाकर महाराजको दिया।

राजन्? उन दोनोंको देख महाराज यशोमति अति हर्षित-चित्त हुए। पश्चात् कुत्ताको श्वानपालकोंके हस्तगत किया गया और मुझे गृहका मण्डन बनाया, अर्थात् महलमें रहनेका आदेश दिया। उस समय मेरे पुत्र यशोमतिने प्रेमपूर्वक मेरे समस्त गात्रपर हाथ फेरा और अत्यन्त प्रशंसा करता हुआ निज हृदय-

में इस प्रकार चिंतवन करने लगा—

निपुण विधाताने यह ऐसा मनोरंजक मयूर निर्मित किया मानो कमलाक्षी नवलक्ष्मीका केश कलाप ही है।

राजन्! यशोमति नृप और भी विचारने लगे कि जैसा ही मनोज्ञ मयूर है वैसा मनोरंजक श्वान भी है। यह तो कात्यायनीके सिंह सदृश बलवान् अपने वेगसे हिरण समूहका घातक है तथा मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि इस श्वानके सन्मुख विष्णु महाराजका अवतार सूकर भी नहीं बच सकता।

राजन्! इस प्रकार अनेक प्रकार चिंतवन कर तत्काल कुत्ता तो श्वानपालकोंके हस्तगत किया सो उन्होंने उसे यम-राज तुल्य ज्ञातकर सुवर्णकी श्रृंखला (सांकल) से बाँधा, और मुझे महलोंके मध्य छोड़ दिया सो मैं गगनांगणमें उड़ता महलोंकी शिखरोंपर क्रीड़ा करने लगा। उस समय गगनांगण में गर्जना करता और ग्रीष्म रूप राजाके भगानेको इन्द्र धनुष-का धनुष धारण करता मेघमण्डल देखा।

राजन्! वह धनमाला, रूपीबाला, विद्युतरूप कंचुकीसे भूषित गात्रा, इन्द्र धनुष्यरूप विचित्र वस्त्र धारण करती देखी।

उस समय मैं [मयूर] वर्षाकालका आडंबर देख रोमां-कुरित गात्र होता नृत्य करता हुआ पश्चात् जन्मांतरका अशुभ चिंतवन कर अश्रुपात करता रुदन करने लगा, उसी समय धरातल पर तिष्ठा कूबड़ा और उस प्रति आसक्त अमृतारानी देखी। तत्काल पूर्व वैरसे ईर्षाके आवेश कर मैं उनके ऊपर पड़ा। तहाँ पुच्छ और पक्षोंसे छिपाकर तीक्ष्ण नख और चञ्चू द्वारा घात करने लगा।

उस समय रुधिरकी धारासे व्याप्य अति विह्वल होते दोनों हाथ ऊँचे कर हाहाकार करते पृथ्वी पर पड़े, पश्चात्

उस अमृता दुष्टाने शीघ्र उठकर मणिकी मालासे मेरा पग भग्न किया सो मैं जातिस्मरण होने से ऐसा चितवन करने लगा—

जिस समय मैं सामर्थ्यवान् अद्वितीय राजा था उस समय तो इनका घात न किया, किन्तु इस समय इस जार प्रति प्रहार किया सो संक्लेशका कारण हुआ ऐसा विचारकर मैं संक्लेशित होने लगा।

राजन् ! उपरोक्त विचार करता मैं यद्यपि भग्नपाद हो गया था तथापि निजबल पूर्वक जैसे तैसे वहांसे भागा, परन्तु अमृताके पुकारनेसे अनेक दासी मेरे पीछे दौड़ीं और जिसके जो हाथमें पड़ा उन्हें लेकर मुझे मारने लगी।

किसी दासीने कोपपूर्वक पांवडी फेंककर मारी, एकने चमरकी दंडी ही मारी, किसीने कपूरके पिटारेसे हना, किसीने चौकीके फलसे, किसीने हारावलीसे, किसीने हाथकी पुष्पांजलीसे और किसी दासीने वीणाके दंडहीसे घातकर धरो पकडो जाने न पावे इत्यादि कहती अनेक दासियां मेरे पीछे लगीं तो भी मैं भागता ही गया, परन्तु दैवने फिर प्राण बचने न दिये।

भले प्रकार रौद्र शब्दसे आए हुए माताके जीव श्वानने मेरा कण्ठ पकड़ लिया जिससे मैं प्राणोंसे मुक्त होगया।

जो माता मेरे किंचत् अशोभनमें विह्वल हो जाती थी उसी माताके जीव कुत्ताने दांतोंकी दृढ़ शृंखलासे कण्ठ ऐसा पकड़ा कि महाराज यशोमति (मेरे पुत्र) ने बहुत छुड़ाया, परन्तु उस दुष्ट कुत्ताने न छोड़ा तब यशोमतिने कोधित होकर उसके मस्तकमें ऐसा दंड प्रहार किया कि तत्काल मस्तकके दो खण्ड होकर श्वानके प्राण निकल गए।

नृपवर ! देखो, कर्मोंका विकार कैसा विचित्र है ? कि माताके जीव श्वानने पुत्रके जीव मयूरको मारा और नातीने

पितामहीके जीव कुत्ताको मारनेके पश्चात् विलाप किया।

पृथ्वीनाथ ! उस समय मेरे मृत शरीरको देख यशोमति इसप्रकार विलाप करने लगा कि हा मयूर ! हा ! गृहकी लक्ष्मीका आभूषण ? तेरे बिना महलके शिखर और ध्वजाओं की शोभा कहां ?

हा शिखिराज ! तेरे विना घरकी बावड़ीमें विचरते सर्प कैसे नष्ट होयंगे ? हा शिखन्ड ! तेरे विना विचित्र पुष्पोंकी पंक्तिमें कामिनियोंका शब्द श्रवणकर कौन नृत्य करेगा ? इत्यादि मयूरके शोकसे निवृत्त नहीं हुआ था कि इतनेमें कुत्ते का मृत्य शरीर देख पुनः विह्वल होता विलाप करने लगा।

यशोमति महाराज कहने लगे—अहो ! श्वान केशर पत्रका भक्षण और सूक्ष्म जलका पान क्यों नहीं करता ? हा ! श्वान अब यहां कैसा शयन कर रहे हो ! मेरे कुरुविन्दुजाल नामक वनमें निवासकर सरोवरकी कर्दमका अनुभव क्यों नहीं लेते ? क्या मेरे एक ही दंडसे रुष्ट होकर शयनस्थ होगये ? यह देख, सुवर्णके पात्रमें उत्तम भोजन दुग्ध मिश्रित रक्खा हुआ है उसे भक्षण क्यों नहीं करते ?

पश्चात् यशोमति महाराज और भी कहने लगे—शीघ्र गमन करनेवाले हिरण अरण्यमें स्वेच्छाचारी हो रहे हैं सो (हे श्वान !) इस समय तेरे बिना मृगोंको मारनेमें कौन समर्थ है।

नृपवर ! उपरोक्त प्रकार चिंतवन करनेके पश्चात् जैसा मेरा (यशोधर) और चन्द्रमतीका अग्निसंस्कार किया था उसी प्रकार मयूर और कुत्तेकी दग्ध क्रिया की। तदन्तर उसी प्रकार पिंडदान, विप्रभोजन आदि समस्त कृत्य किया।

नराधीश ! देखो, मोहवश होकर सुपुत्र इस कामनासे वस्त्र आभूषण भोजन आदि सामग्री विप्रोंको देता है कि मेरे मृत

पिताके निकट पहुंच जायगी, परन्तु वहाँ किंचित् भी नहीं पहुंचती। ब्राह्मणोंके वाक्जालमें फँसकर लोग ऐसा करते हैं सो इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं इत्यादि।

धराधीश ! जिस समय मैं प्राण मुक्त हुआ तत्काल सुवेलगिरिके पश्चिम भागमें महा शुभ अरण्यके मध्य कानी नकुली (नोली) के गर्भमें उत्पन्न हुआ।

राजन् ! यह कैसा भयानक बन था ? कि जिसमें शुष्क वृक्ष और पापोंकी प्रचुरतासे शाल्मली, वमूर, खदिर आदि कंटक वृक्षोंके सिवाय अन्य वृक्ष उत्पन्न नहीं होते थे। जिस वनमें जलका नाम निशान नहीं था किन्तु पवनके वेगसे धूलि के पटल और शुष्क पत्रोंके समूह उड़ते दृष्टिगत होते थे।

उसी निर्जन और भयंकर वनमें उस क्षुधा तृषासे पीड़ित शुष्कस्तना न्यौलीके उदरसे जैसे ही मेरा जन्म हुआ कि मैं भी उसके दुग्ध रहित स्तनोंको जीभसे चाटने लगा सो दूध विना मुझ वुभुक्षितकी तृप्ति किसप्रकार हो सकती थी, पश्चात् ग्रीष्मकी ज्वालासे संतप्त होता मैंने एक तुच्छ सर्प देखा तो उसे तत्काल निगल गया।

उस समय मुझे सर्पका स्वाद अच्छा मालूम होनेसे मैंने अनेक सर्पोंका भक्षण किया। अब मैं सर्पोंको भक्षण करता वृद्धिको प्राप्त होता कालक्षेप करने लगा।

धराधीश ! मेरी माताका जीव श्वानकी पर्य्यायसे उसी वनमें सूक्ष्म जन्तुओंका भक्षण तीक्ष्ण विपका धारक भयंकर सर्प हुआ।

वह विपधर ! वनमें क्रीड़ा करता यावत् विलमें प्रवेश करै तावत् मैंने उसकी पुच्छका अग्रभाग मुखसे धारण कर खानेका प्रारम्भ किया।

राजन् जैसे मैंने उसकी पूंछ काटी कि तत्काल उसने लौट-

कर विकराल फणकी घातसे मेरे मुखमें विषाग्नि छोड़ दी। पश्चात् सघन दांतोंको किड़किड़ाता मेरी पीठके चर्म औरअस्थि को विदीर्ण कर दिया जिससे चिड़ चिड़ शब्द होकर रुधिरकी धारा वहने लगी।

ऐसी अवस्था देख पुनः मैंने उछल कर उसके फण मण्डलको ऐसा चर्वित किया कि वह तत्काल मरणांत हो गया, और मैंने भी उसके विषकी अग्निमें मुग्ध होकर प्राण छोड़ दिये।

नृपश्रेष्ठ! इस संसारमें ऐसा कौनसा जीव है जो कर्मोंके विकारका उल्लंघन कर सके। इसी कर्मके अनुसार असंख्य जीव एक दूसरेके भक्षक वन रहे हैं।

जैसे स्थावर जंगम जीवोंको द्वि इन्द्रिय ते इन्द्रिय और चतुरिंद्रय एवं-विकलत्रय भक्षण करते हैं उसी प्रकार पंचेन्द्री विकलेन्द्रिय जीवोंका घात करते हैं इसी भांति पूर्व वैरानुबंधसे परस्पर घात कर मृत्यु प्राप्त होते हैं, वैसे ही मेरी माताका जीव सर्प और मुझे 'यशोधरके जीव नकुलने' परस्पर एक दूसरेको घात यमपुरका मार्ग लिया और कुयोनिमें उत्पन्न होकर दुःखों का अनुभव प्राप्त किया।

[क्षुल्लक महाराज मारिदत्त नृपतिसे कहते हैं] कि राजन्! इस प्रकार मेरे कथनको श्रवणकर यदि हिंसाका वर्जन करेगा तो मद रहित परमात्माको प्राप्त होयगा। तथा पुष्पदन्त कवि भी परमात्माको प्राप्त होगा।

इतिश्री महामात्य नन्हकर्णाभरण पुष्पदंत महाकवि विरचित यशोधर चरित्र महाकाव्यमें यशोधर चन्द्रमति भवांतर वर्णनोनामक द्वितीय परिच्छेद समाप्त हुआ ॥२॥

तृतीय परिच्छेद

यशोधर, चन्द्रमती मनुजजन्म-लाभ वर्णन

अथानंतर—जो कि औषधि और नक्षत्रोंके अधीश चन्द्रमा सदृश कांतिका धारक, पवित्र और उत्कट कीर्तिका स्थान, समस्त शास्त्रोंके अर्थका ज्ञाता, इन्द्रादिकों कर पूज्य तीर्थंकरोंका परम भक्त, भव्य पुरुषोत्तमोंका भ्रात, संसार, समुद्रसे सतत् भयभीत, नीतिका ज्ञाता, इन्द्रियोंका विजेता और विनयका पात्र है ऐसा नन्हदेव वृद्धिको प्राप्त हो।

पुन: अभयरुचिकुमार नामक क्षुल्लक मारिदत्त महाराजसे अपने भवभ्रमणके क्लेशोंकी कहानी कहने लगे—राजन्! उज्जैनी नगरीमें गंभीर द्रहों युक्त और स्वच्छ सिप्रा नामकी नदी है।

पृथ्वीनाथ! वह सिप्रा नदी कहीं तटके वृक्षोंसे पड़े पुष्पोंके समूहसे उज्वला, कहीं पवन प्रकंपित कल्लोलोंके समूहसे गम्भीर, कहीं क्रीड़ा करती तरुण स्त्रियोंके पीनौन्नत कुचोंसे छूटी, कुंकुमसे पीतवर्ण, कहीं स्नान करते मदोन्मत्त गजराजोंके परस्पर संघट्टसे चंचला और कहीं क्रीड़ा करते राजकुमारोंके आभूषणों की किरणोंसे व्याप्त अनेक वर्णयुक्त दृष्टिगत होती है।

वह सिप्रा सरिता किसी स्थलमें सारस जलकाक करण्ड और वक आदि पक्षियोंसे व्याप्त है। कहीं कच्छ और मत्सोंको पुच्छ के संघट्टसे विघटित सीपोंके संपुण्टसे मुक्ताफलोंके समूह फैल रहे हैं। कोई स्थान प्रति उछलती कल्लोलोंकी वाहुल्यता कर उछलते जलके कणोंसे तटस्थ भुजङ्गोंके समूह संचित हो रहे हैं। वह हंसोंकर मान्य सिप्रा उज्वल कमलोंकी सुगंधके आस्वादनमें लुब्ध भ्रमरोंके समूहसे श्यामवर्ण दृष्टिगत होती है, जिसके उज्वल तटोंपर तपस्वी योगीराज निज ध्यानमें मग्न हो रहे हैं।

जिस स्वच्छ वाहिनीके शीतल जलको स्पर्श करती पवन मृगोंके समूह और वनवासी भिल्लोंको शांति करती है, जिस नदीमें जल पीनेको आए युद्धमान्य मन्दोन्मत्त हस्तियोंकी सूँड़के उछालनेसे तटके निकट क्रीड़ा करते वन्दरोंके समूह त्रासित होते हैं।

वह सिप्रा हस्तियोंके मस्तकसे पड़ते रंगके जालकर पूर्ण मुख जिनके ऐसे पक्षियोंको अत्यंत सुखदायिनी है। वह सरिता खोदे हैं जमीनमें गम्भीर गर्त्त जिन्होंने ऐसे वन सूकरोंके समूह कर व्याप्त व्यभिचारिणी स्त्रियों कर नित्य सेवित और तमालके वृक्षोंसे व्याप्त हो रही है।

अभयरुचि कुमार क्षुल्लक कहते हैं कि महाराज! मैं उस निष्ठुर सर्पकी घातसे मरणको प्राप्त होकर पुनः सिप्रा नदीमें मीनके गर्भमें आकर स्थिर होने लगा।

तदनंतर मछलीके उदरसे जन्म ग्रहण कर कर्मपूर्वक वृद्धिगत होता बड़े बड़े मगरमच्छोंके शरीरके विदारनेमें समर्थ तथा आकाशमें उछलना, उलटा पड़ना, जलमें फिरना और उलंघन करना आदि जलके विभ्रममें अति प्रवीण हो गया।

इस प्रकार सिप्राके अति निर्मलस्वच्छ औरचंचल जलमें विचरता, तैरता और मत्सोंके समूहको निगलता काल व्यतीत करने लगा।

महारज! पृथ्वीनाथ! मेरी माताका जीव जोकि सर्प हुआ था वहमेरे घातसे मरकर घोर कर्मोंके अनुसार उसी नदीमें जल जंतुओंका अधिपति संशुमार हुआ। सो देवयोगसे मुझे देख पूर्व वैरके अनुबंधसे जैसे ही तीक्ष्ण नख और दांतोंसे मुझे पकड़ विदीर्ण करनेका प्रारम्भ किया था कि इतनेमें महाराज यशोमति के महलोंकी कोमलांगी चन्द्रवदना दासी निज-नूपुरोंके शब्दसे झनकार करती, जल केलिके उत्सव में उत्साहित होती, सुन्दर वस्त्राभरणोंसे शोभमाना, दिव्य सुगन्ध से पूरिता, कंठगत मुक्ता

हार की पंक्ति से दिव्यरूपाकार, विनोदपूर्वक सरिता के स्वच्छ जलमें केलि करने लगी ।

राजन् ! उस समयका दृश्य अपूर्व था अर्थात् वे मदमाती दासिकायें जलकेलि में मग्न होती भयीं । कोई दासिका डुबकी लेकर दूर प्रदेश में निकली, कोई परस्पर एक दूसरे पर निज कोमल करोंकी चपेटसे जल उछालने लगीं, तो कोई जलमें तैरने लगीं इत्यादि अनेक विनोद करती हुयीं ।

इस प्रकार जल में निश्चल तैरती-तैरती एक दासीने एक दासीको पीड़ित किया सो दैवकी विचित्रता देखो कि वह मेरे ऊपर आकर पड़ी ।

राजन् ! जिस समय एक दासीने कुब्जिका दासीको धक्का दिया सो वह मेरे (मत्सके) ऊपर आकर पड़ी । उस समय शंशुमारने जो मुझे पकड़ रक्खा था सो मुझे तो छोड़ दिया, किन्तु तत्काल उस दासीको पकड़कर नख और दांतोंसे विदारने लगा ।

नृपवर ! उस समय हाहाकार करतीं भंयकर कंपित होती समस्त दासियां जलसे भागीं । तत्पश्चात् यह रानी के किंकरोंने महाराज यशोमतिके निकट जाकर विज्ञप्ति की कि श्री महाराज आपकी मानिता कुब्जा दासीको जलकेलि करते सरय माँसलुब्ध शंशुमार नामक जल जन्तुने नख और दांतों से उसका चर्बण किया है ।

ऐसा सुन क्रोधकर कंपितगात्र होकर महाराज यशोमतिने कहा—ऐसा हिंसक जन्तु किसको प्रिय होगा ? जिसने सूकर, भांसर आदि बनवासी जीवोंको जलपान करते समय भक्षण किया, तथा स्नान क्रीड़ा करते समय अनेक नर नारियोंको ग्रसित किया, उस दोष की खानि शंशुमार नामक जल-जन्तु को शीघ्र ही नेत्रोंको असुन्दर और अग्निकी ज्वाला सदृश्य दीप्यमान यमराज

यशोधर का जीव भ्रमर सिंधु देश में भैंसा माता चंद्रमति का जीव भैंस उत्पन्न हुआ।
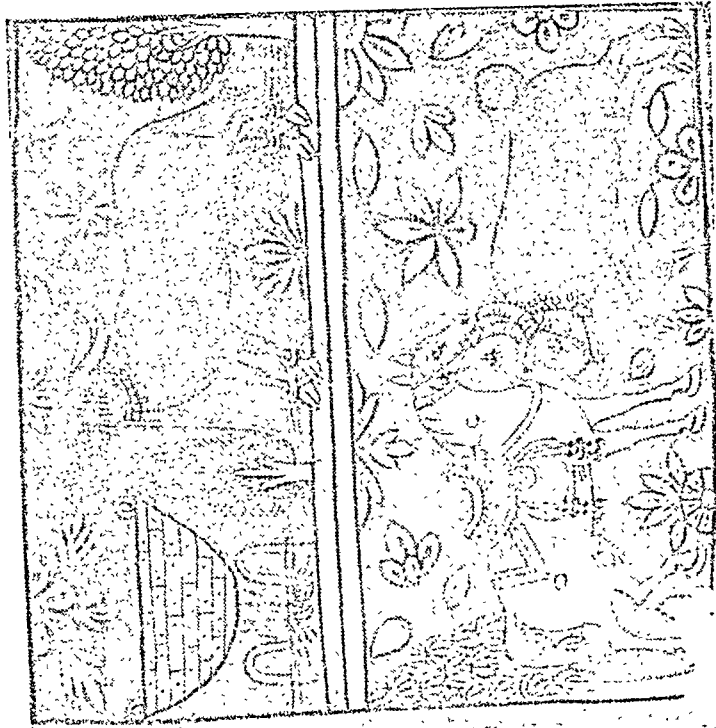
यशोधर के जीव भैंसा ने यशोमति के जीव घोड़ा को मार दिया।
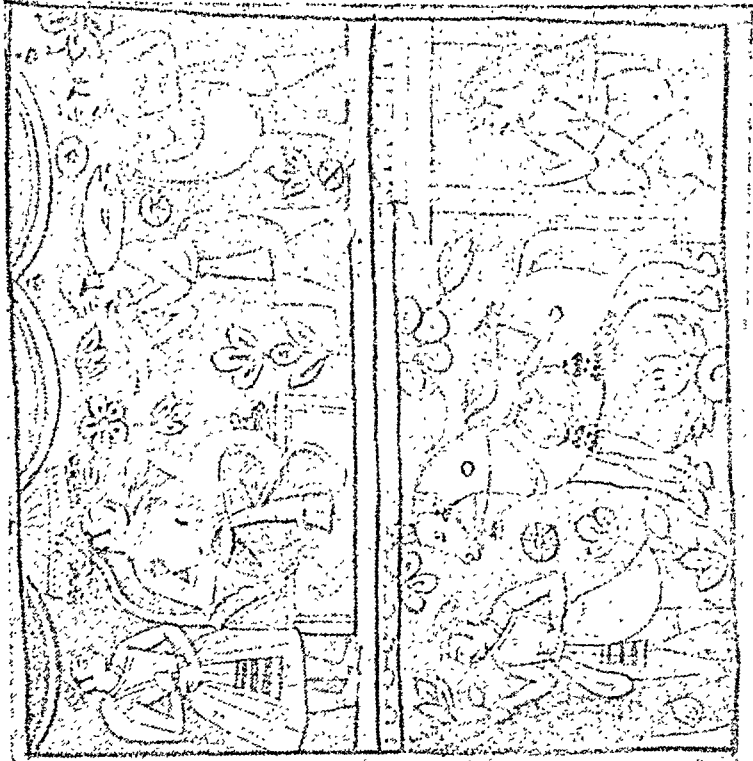
यशोधर का जीव सिप्रा नदी में मछली और रानी चंद्रमति का जीव संसुमार हुआ।

के नगर प्रति भेजो।

ऐसा कह अनेक योद्धाओं सहित महाराज यशोमतिने स्वयं सरिताके तटप्रतिजाकर धीवरोंको आदेशित किया कि शीघ्रतर इस नदीके गम्भीर द्रहोंमें से जैसे हो सके उस प्रकार खोजकर शंशुमार को पकड़ो।

नृपवर! महाराज यशोमतिके क्रोध पूर्ण शब्द से आकाश पूरित हो गया। उसे सुनकर अनेक धीवरगण तत्काल सिप्राके मध्य पड़े सो उनके प्रचंड भुजदण्डों के द्वारा अवगाहित जल से दोनों तट व्याप्त हो गये। पश्चात् घूमते फिरते धीवरोंने कोलाहल शब्दकर वक्र कीला युक्त वंशीसे यद्यपि उस शंशुमार का कंठ वेधित किया तथापि उछलता-कूदता शंशुमार धीवरों द्वारा नदीके बाहर निकाल स्थल में धारण किया गया।

नृपेश! उस समय शंशुमार को देख क्रोधित भाव में महाराजने आदेश दिया कि इस दुष्ट जन्तु को अग्निमें दग्ध करो ऐसा सुनकर किंकरों ने अग्नि प्रज्वलित कर शंशुमार को हवन कर दिया।

राजन्! जबतक मैं विवर से निकल नदी में क्रीड़ा करता तिष्ठा था कि इतने में, किया है मारनेका किलकिलाट शब्द जिन्होंने ऐसे धीवर समूह आगे आए।

नृपवर! उस समय धीवरों ने सूत्र निर्मित सघन जाल मेरे ऊपर डाला सो मैं संग्राम में निर्जित शत्रुकी भांति उस जाल में फंस गया। उस समय जैसे गृह सम्बन्धी खोटे व्यापारों से कोश कृमि लट और तन्तुओं के समूहसे दुःखी होता है तथा जैसे तीव्र मोह के उदयसे संसारी जीव पीड़ित होता है उसी प्रकार जाल में फंसकर धीवरों के पाद प्रहारसे मैं क्लेशित हुआ।

पृथ्वीनाथ! जिस समय धीवरोंने जालमें फंसाकर मुझे नदी के तट प्रति रक्खा उसी समय एक पुरुषने कहा कि इस मत्सको

मारना नहीं क्योंकि इसके मारनेसे अति दुर्गन्ध फैलेगी।

ऐसा कह पूर्व भवके पुत्र यशोमतिको दिखाया सो यशोमतिने मेरा शरीर देख आगमवेदी ब्राह्मणों से मेरे शारीरिक लक्षण वर्णन करनेको कहा तब विप्रजन मेरे गात्रको उलटपलट कर सामुद्रिक शास्त्र से लक्षण कहने लगे।

यह पांडुरोहित जाति का मत्स्य नदी के प्रवाहमें सन्मुख तैरता है तथा यह मच्छ देव और पितरजनोंकी वलिके योग्य है ऐसा कहकर वेद ब्राह्मण कहने लगे—

श्रीविष्णु भगवान्ने जगत् की रक्षाके अर्थ मत्सावतार धारण कर षट अंगयुक्त वेद को समुद्रमेंसे निकाला इसी से ब्राह्मणोंने मत्सको अति पवित्र माना है।

इत्यादि कहकर विप्रोंने महाराज को संमति दी कि यह मत्स महारानी अमृतदेवीके महल में भेजना चाहिये, फिर क्या था तत्काल ही महाराज ने भी महलों में भेजने का आदेश दे दिया सो दुष्टकर्मा किंकरोंने भी मुझे (मत्सको) अमृता के मंदिर में पहुंचा दिया।

नृपवर ! वहां पहुंच जानेसे ब्राह्मणोंका प्रयोजन सिद्ध होगया अर्थात् ब्राह्मणोंने अमृतासे कहा कि हे मात ! परमार्थतः यह रोहित मत्स समस्त मच्छों में उत्तम माना गया है, इसकी पूंछ का पितरोंके नामसे यदि विप्रोंको भोजन दिया जावे तो अवश्य ही पितरों की तृप्ति होती है।

पृथ्वीनाथ ! उस समय "ब्रह्मवाक्यं जनार्दनः" की कहावत को चरितार्थ करती अमृताने मेरी (मत्सकी) पूछ कटवा कर सोंठ मिरच आदि मसालों में पक्व करवाकर विप्रों के अर्थ दी, सो वे सकल ब्राह्मण उदरपूर्ण भोजनकर आशीर्वाद देकर निज घर को गए।

तदनन्तर—मेरे शेष शरीरको अनेक मसालोंसे मिलाकर

तप्त तैल के कढ़ाहमें डालकर जिस समय पचाया, हे राजन् ! उस समयकी जो कुछ वेदना मुझे हुई वह या तो मैं ही जानता हूं या केवली भगवान् ही ज्ञात कर सकते हैं।

श्रीमान् ! जिस समय तप्त तैलमें पड़ा मैं पच रहा था उसी समय जति स्मरण होनेसे मैंने समस्त परिवार को जान लिया जिससे एक तो मानसिक दुःख दूसरा शारीरिक कष्ट, इस प्रकार, दोनों क्लेशोंका अनुभव ग्रहण किया।

नृपश्रेष्ठ ! आप भी इस बातका अनुभव कर सकते हैं कि जिस समय लवण मिरच आदि मसालों में मिलाकर मुझे तप्त तैल में पचाया होगा उस समयकी वेदना क्या नरककी वेदनासे किसी प्रकार न्यून हो सकती है ? कदापि नहीं, किन्तु नरकोंमें तो केवल तप्त तैलादिमें ही पचाया जाता है।

मुझे तो लवण, मिरच, सोंठ, पीपर आदि तीक्ष्ण मसालोंमें मिश्रितकर पकाया जिसमें एकतो अग्निकी वेदना दूसरे मसालों का कष्ट तिसपर भी पक्व हो जाने की परीक्षा के अर्थ लोहके नोकदार कीलों से बारबार छेदना इत्यादि कष्टों का कहाँतक वर्णन करूँ ? जिन दुःखों को वाग्वादिनी भी नहीं कह सकती।

पचते हुए मेरे शरीर को करछों से चलायमान करते हुए सूपकारों (रसोईदारों) ने पचाया, पश्चात् बहुत जीरा, मिरच, लवण आदि से पूरित कर मेरे शरीरके स्वादों को चखने लगे।

राजन्! उस समय सप्तम नरकके नारकीकी भांति उछलि२ कर पच्यमान हुआ पश्चात् उस पक्वगात्रको करोतों से छिन्न-भिन्न कर लोहेके कंटकोंसे ब्राह्मणोंने भक्षण किया। तत्पश्चात् मेरे पुत्र यशोमति, मेरी स्नेहवती अमृतमतीका जार कूबड़ा आदि समस्त परिवारने भोजन किया।

नृपश्रेष्ठ ! देखो संसार की विचित्रता कि पितरके (मेरे) ही निमित्त मुझेही भक्षण कियासो यह समस्त अशोभन कर्म जिह्वा

लंपटी मांसभक्षी विषयासाक्त ब्राह्मणों का ही कर्त्तव्य है, क्योंकि विप्रोंके उपदेशसे समस्त अज्ञानी लोग हिंसा कर्म को धर्म मान अंगीकारकरते हैं इसकारण समस्त दोष ब्राह्मणोंके ही ऊपर है।

तदनंतर-मेरी माता का जीव शंशुमारके शरीर से निकल पार्श्वग्राममें बकरी हुई और मैं भी मच्छ की पर्याय से प्राण त्याग दैवयोगसे उसी बकरीके गर्भसे उत्पन्न होकर वकरा हुआ।

पश्चात् क्रमपूर्वक वृद्धिगत होता जब यौवन प्राप्त हुआ तब कामांध होता अपनी माता बकरीके संग मैथुन कर्म करता हुआ। उसी समय यूथके स्वामी बकराने ईर्षायुक्त क्रोधके आवेशमें मुझे मारा सो मैं मरणको प्राप्त होकर अपने ही वीर्यसे उसी बकरीके गर्भसे बकरा उत्पन्न हुआ।

यहां पर कोई "शंका" करे कि अपने ही वीर्यसे आपका जन्म किस प्रकार हो सकता है? तो उसका समाधान इस प्रकार है कि जिस समय स्त्रीका रुधिर और पुरुषके वीर्यका संयोग होता है उस समयसे सात दिवस पर्यंत उसमें जीव आता है, सो सात दिन तक मिला रहता है और यदि सात दिवसके अंदर जीवोत्पत्ति न होवे तो वह पृथक् होकर खिर जायेगा।

इसी प्रकार जिस समय बकरीके रुधिर और बकराके वीर्यका संयोग हुआ उसी समय वकरेका मरण हुआ सो वह तत्काल उसीके गर्भमें जाकर उपस्थित हो गया इससे पुनः दूसरी पर्यायमें भी बकरा ही हुआ।

राजन्! तिर्यंचोंमें लज्जा नहीं होती, माताको स्त्री बना लेना सहज है। इसी प्रकार मैंने भी माताके साथ भोग किया सो जिस समय मुझे उस वार्ताका स्मरण होता है मुझे तीव्र वेदना होती है।

नृपश्रेष्ठ! जव मैं पुनः बकरीके गर्भमें आया और क्रमपूर्वक वृद्धिको प्राप्त होने लगा तब यशोमति महाराज मृगया (शिकार)

के अर्थ वनमें पधारे सो मृगोंके अर्थ समस्त वनमें परिभ्रमण किया परन्तु एक भी हिरण न मिला।

उस समय जब लौटकर मार्गमें आए तो क्या देखा कि मेरी माता वकरी और यूथ नायक वकरा दोनों मैथुन कर्ममें तत्पर हो रहे हैं, उस समय क्रोधके आवेशसे कुसुमावलीके भर्त्तार यशोमति महाराजने निज भालाकी नौकसे दोनोंका घात किया पश्चात् निकट आकर देखने लगे।

वकरा-बकरी दोनों ही दो खंड होते और रुदन करते मरणको प्राप्त हो गये, तथा गर्भवासमें तिष्ठते मेरे आठों अंग कंपमान देखें।

उस समय यशोमति नरेशने वकरीके उदरसे निकलवाकर मुझे वकरा पालकके हस्तगत किया उसने यत्न पूर्वक अन्य वकरियोंका दुग्धपान कराकर मेरा पालन-पोषण किया सो मैं उसके गृहमें वृद्धिको प्राप्त होता हुआ। परन्तु पशु योनि सम्बन्धी अज्ञान दशामें ग्रसित होकर माता भगिनी और बेटी आदिसे मैथुन सेवन करता यूथका स्वामी हो सुख पूर्वक काल व्यतीत करने लगा।

इतनेमें एक दिन यशोमति महाराजने कुलदेवताके सन्मुख इस प्रकार प्रार्थना की कि हे मात ! हे भट्टारके, हे महिष-विदारिणी, हे भगवति, तेरी कृपासे यदि मुझे मृगयाका लाभ हुआ तो घोटक तुल्य वेगवान् महिषकी बलि दूंगा।

ऐसा कहकर राजाने शिकारके अर्थ महारण्यमें प्रवेश किया सो वहां तत्काल शिकारका लाभ हुआ। पश्चात् लौटकर घरको आए, वहां देवीके अर्थ स्थूल महिषा बुलाया और उसे मार उसके मांससे देवीको रसवती की।

उसी समय रसोईदारोंने मुझ यूथनायक बकरेको लाकर वहीं बांध दिया सो दैवयोगसे एक चीलने किसी जँतुका मांस

लाकर मेरे निकट डाल दिया सो मैं उसे सूंघकर तत्काल उछल गया तब मुझे पुनः लम्बी डोरीसे ऐसा बांधा जैसे संसारी जीव कर्मोंके बन्धनसे बन्ध जाते हैं।

तत्पश्चात् कृतकर्म महीनाथ यशोमतिने ब्राह्मणोंके निमित्त मांसरस घृत प्रवाह और दुग्धादि भोजनके अर्थ देवीके अग्रभाग में महिषकी बलि देकर इस प्रकार कहा—

हे परमेश्वरि ! हे त्रिशूल कपाल धारिणी, हे महिषके आमिष वसा और रुधिरकी पीनेवाली ! हे कात्यायनि ! मेरे पर प्रसन्न हो, ऐसा कहकर राजा माँस उतारण कर बलि देता हुआ।

राजन् ! अज्ञानी जन हिंसाकर्म करते किंचित् भी शङ्कित नहीं होते उन मिथ्या मार्गियोंके हृदयमें इस बातका पूर्ण विश्वास हो रहा है कि दीन पशुओंकी बलि देनेसे देवी प्रसन्न होकर समस्त कार्योंकी सिद्धि करती है।

हा, धिक्कार हो उन मूर्खोंकी बुद्धिपर, कि जो परजीवोंका घातकर निज कार्यकी सिद्धि मानते हैं।

तत्पश्चात् अन्य जनोंके अर्थ बहुत घृतयुक्त महिषके मांसके ग्रास दिये, तथा क्षुधाके विकारको दूर करनेवाले भोजन योग्य अनेक रसयुक्त मदिरा और मूंगकी दाल भी दी।

तदनन्तर अनेक वस्त्र और गौओंका दान देकर महाराजने कहा कि यह हमारा समस्त दान स्वर्गमें तिष्ठे हुए हमारे पिताके निकट पहुंचे।

राजन् ! उस समय क्षुधा तृषासे पीड़ित मैं बकरा उसी स्थान प्रति दृढ़ रज्जुसे बँधा हुआ था, सो महाराज यशोमतिके वाक्योंसे जाति-स्मरणको प्राप्त होकर निज हृदयमें विचारने लगा कि इस समय तो मैं वस्त्र अलङ्कार वर्जित भूखा प्यासा रस्सीसे बंधा हुआ हूँ, मेरे पुत्रने गर्व रहित अनेक प्रकार दान

किया, सो निकट तिष्ठे हुए मेरेको कुछ नहीं मिला तो अन्य दूरवर्ती जीवोंको किस प्रकार मिलता होगा ?

नृपवर ! उस समय मेरा समस्त परिवार अनेक रसयुक्त व्यंजनोंका भोजन करे व मैं वहींपर भूख प्याससेपीड़ित सबके मुखकी ओर देखूं, किंतु किसीने यह भी न कहा कि एक ग्रास इसे भी देवे ।

जब कि मेरे निमित्त असंख्य धनका दान किया गया और निकट तिष्ठे हुए मुझे किंचित् भी न मिला तो निश्चय हुआ कि समस्त दान ब्राह्मणोंके उदर पूर्णार्थ ही होता है किन्तु किसी जीवको नहीं मिल सकता ।

श्रीनाथ ! जिस समय मेरा पुत्र यशोमति निजमाता सहित भोजन करता निकटस्थ जीवोंको रंजित करता था, उस समय मैंने समस्त परिवार और अन्तःपुरको देखा, परन्तु निज प्रिया-अमृतमतीको न देखा । इतनेमें गलित मांसकी दारुण दुर्गन्ध आई उस समय एक दासीने दूसरी दासीसे कहा—

एक दासी—प्रिय भगिनी, कैसी मृतमहिषके सड़े हुए मांस की दुर्गन्ध आती है जिससे नाक फट जाती है । बहिन यह महापूति गन्ध कहांसे आई ?

दूसरी—आरी मुग्धे ! तू तो निरी भोली है, कहीं ऐसी गन्ध सड़े हुए भैंषाकी होती है ? बहिन, यह तो मछलीके सड़े मांस कैसी मालूम होती है । आहा ! यह तो नाक फाड़े डालती हैं ।

तीसरी—(नाक बंद करती) अरी चलो यहांसे, इस महा दुर्गंधसे वमन हुई जाती । हाय-हाय यह कहांसे आई बहिन ! मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि महारानी अमृतामतीके गलित कुष्ठसे यह बीभत्स गंध आती है ।

अन्य दासी—(हाथ चलाती हुई) अरी ! सबकी सब पागल

हो गई हो, तुमको कुछ मालूम भी है कि यों ही अपनी २ टर्र टर्र मचा रक्खी है।

एक दासी—(मुंह वनाकर) यह आई वड़ी पंडिता कहींकी जो तुम जानती हो तो तुम्हीं कहो, कोरे हाथ क्यों चलाती हो।

वही दासी—[धीरेसे] सुनों मैं कहती हूँ। एक वातकी सबकी सव शपथ खाओ कि किसीसे मेरा नाम तो न लोगी। सबने शपथ खाई, पश्चात् वह दासी कहने लगी—

इस दुष्टनी अमृताने प्रिय जार कूवड़ाके निमित्त भोजनोंमें हलाहल विष देकर निज भर्त्तार महाराज यशोधर और अपनी सास महारानी चंद्रमतीको प्राणांत किया है जिसके पापसे नासिका ओष्ठ, हस्त, पाद आदि सर्व अंग कुष्ठ रोगसे गलित हो रहे हैं उसीकी यह महादारुण दुर्गंध है समझी ?

नृपवर ! उपरोक्त प्रकार दासीके वचनोंसे मेरा भी चंचल चित्त गृहके मध्य शमन करनेवाली अमृताकी ओर गया उस समय राजन् ! कामिनी (दासी) के वचनोंको सुनकर अमृता-देवीके मुख को देखा तो मुझे ऐसा ज्ञात हुआ जैसा भोजन समय मांसका पिंड होता है।

नृपवर ! उस समय समस्त अवयवों कर रहित अशुभ गात्र अमृताको मैंने बहुत देखा तो भी उसे न पहचान सका। अर्थात् उसकी अवस्था क्षण-क्षण प्रति अन्य-अन्य प्रकार होती जाती थी।

पृथ्वीनाथ ! उस समय रानी की दशा देखकर यही निश्चय होता था कि इस समय परपुरुषासक्ता व्यभिचारिणीसे रोषित होकर विधाताने इसकी यह अवस्था वनाई है, अर्थात् जो ओष्ठ जारकी दृष्ठिमें विवाफल (किंदूरी) समान भासते थे वे समस्त गल गए।

जो नख प्रिय जारके वक्षस्थलको चिह्नित करते थे वे अति-

उज्जयनी के निकट यशोधर और माता चंद्रमति के जीव मुर्गे की पर्याय में उत्पन्न हुये।
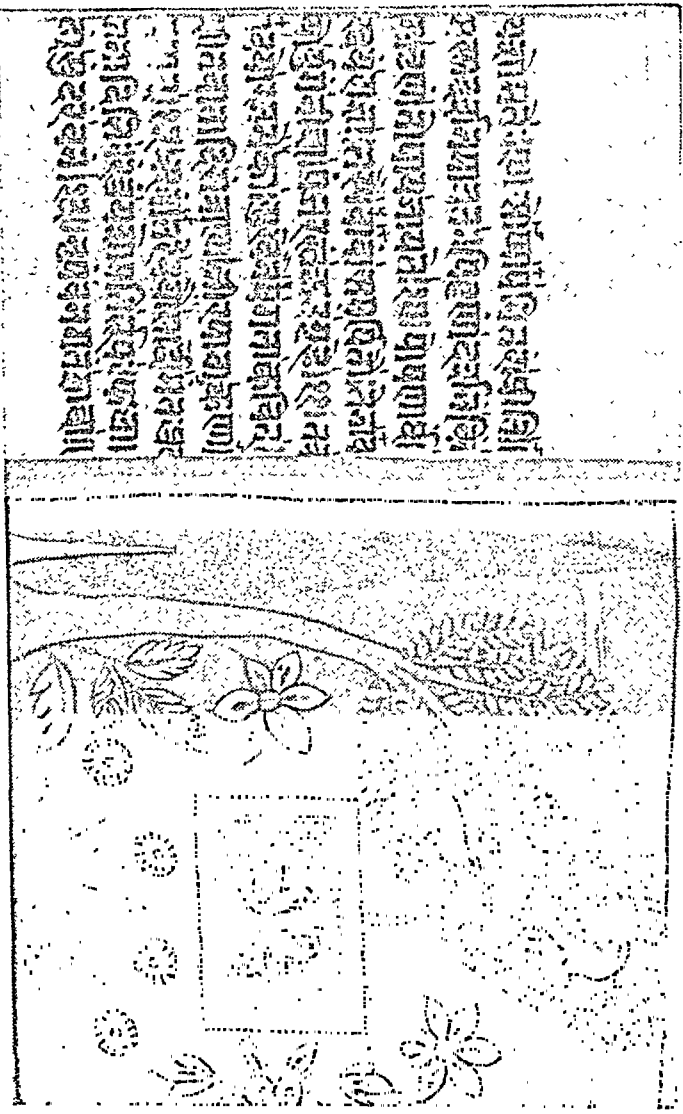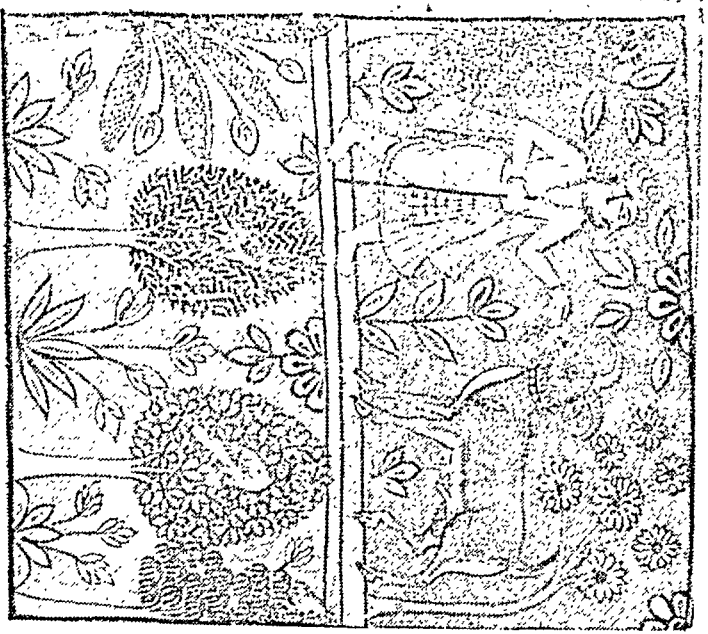
यशोधर का जीव पार्श्व ग्राम में माता चंद्रमति के जीव बकरी से बकरा पैदा हुआ ।

शय नष्टभ्रष्ट होगए जो श्वेत श्याम और रतनार नेत्र जारकी दृष्टिमें श्वेत श्याम और आरक्त कमलदल तुल्य ज्ञात होते थे वे फूटी कपर्दिका (कोडी) तुल्य हो गए।

जो पीनोन्नत कुचयुग्म जार पुरुषके कराग्रहसे भूषित होते थे वे पीव और रुधिरकर पूर्ण फूटे घट तुल्य हो गए।

जो केशभार जारके नेत्रोंमें भ्रमर विनिन्दित ज्ञात होते थे, उनका नाम निशान तक न रहा।

भावार्थ—जो-जो अंग प्रिय जार कूबड़ाने अपने हाथोंसे स्पर्शित किया वह सर्व गात्र विधाताने क्रोधित होकर जार कर्म-का फल प्रत्यक्ष दिखानेके अर्थ नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

नृपवर! अति तीव्र पापका फल प्रत्यक्ष होता है, और यदि ऐसा न होता तो सकल संसार पापसे क्यों कर भयभीत होता? परंतु प्रत्यक्ष देखते हुए भी दुष्टजनोंको बोध नहीं होता यह उनके भवितव्यका दोष है।

नृपवर! जिस समय उपरोक्त विचारमें मग्न था कि इतनेमें उस पापिनी अमृताने पुकारकर रसोईदारसे कहा—

जो देव और ब्राह्मणोंके अर्थ उतारण कर पूजन किया उस मांससे पूरी पड़ो, दूर तिष्टो, वह घृणास्पद ग्लान कारक महिष का माँस जो लाकर दिया वह मुझे नहीं रुचता।

राजन्! उस समय कुष्ट रोग पीड़ित अमृताने रसोईदारसे और भी पुकारकर कहा कि अब मेरे अर्थ सूकर या हिरणका माँस शीघ्र लाकर दो जिसे मैं रुचिपूर्वक भक्षण करूँगी।

इस प्रकार रानीकी पुकार सुन निकट तिष्टे महाराज यशो-मतिने कहा कि इस समय सूकर और हिरणके मांसका मिलना तो दुष्कर है. किंतु बकरेका माँस भी भट्ट लोगोंने पवित्र और मिष्ठ कहा है इससे हे रसोईदार! तू इस बकरे के पीछेके पगको काट इसे पक्वकर माताको भक्षणार्थ दो।

नृपवर ! उस समय निकट बन्धा हुआ मैं राजाकी आज्ञा सुनकर सकंपगात्र होता निज हृदयमें विचारने लगा—

हा ! बड़ा कष्ट है कि मेरा ही पुत्र मेरा पग भग्न कर मेरी स्त्रीके भोजनार्थ देनेकी आज्ञा देता है तो अब मेरी रक्षा कौन कर सकता है, इसकारण कर्म फल विचारता संतोषपूर्वक चुप होगया।

पश्चात् महाराज यशोमतिकी आज्ञा न पालने में असमर्थ रसोईदारने तीक्ष्ण छुरिकासे मेरा पग काटउत्तम मसालों सहित घृतमें पक्वकर अमृताको दिया सो वह कुष्ट व्याधि पीड़ित दुर्गंध गात्रा दुष्टाने रुचिपूर्वक भक्षण किया।

पृथ्वीनाथ ! मांसभक्षी जिह्वालंपटी विप्रोंकी बातोंमें आकर जो मनुष्य हिंसा कर्म करता है वह अवश्य ही तीव्र वेदना-युक्त नरकों की पृथ्वीमें जाकर अनेक कष्ट सहन करता है।

पश्चात् अनन्तकाल पर्यंत कुयोनियोंमें भ्रमण करता असंख्य क्लेशों का पात्र बनता है।

पृथ्वीनाथ ! उस समय पगभग्न हो जानेसे तीव्रवेदना सहन करता तीन पगोंसे खड़ा २ दिशाओंकी ओर देखता विचार करने लगा कि अब मैं किसका आश्रय ग्रहण करूँ जबकि मेरे पुत्रने ही आदेश देकर पग तुड़वाया तो अब किसकी शरण जाऊं

जो माता चन्द्रमतीका जीव बकरी होकर पापफल भोगती भई वह मरणको प्राप्त होकर अमरसिन्धु देशमें महिषी (भैंस) के उदरसे भीमबली महिष [भैंसा] हुआ।

राजन् ! एक दिन भ्रमण करता महिष सिप्रा नदीके जल में निमग्न हो रहा था उसी समय खड्गधारी योद्धाओं कर रक्षित, निज पादघातसे धरातलको भग्न करता, महाराज यशोमतिकी सवारीका घोटक जल पीनेको आया। उस समय उस घोड़ाको देख जातीय वैरसे क्रोधित होकर महिषीने निज

मस्तक और तीक्ष्ण शृंगोंसे उसे विदीर्ण किया।

पश्चात् राजकिंकरोंने जिस तिस प्रकारसे महिषीको बांध महाराज यशोमतिके निकट ले जाकर निवेदन किया कि श्री महाराज! आपकी सवारीका घोड़ा इस दुष्टने मारा है इससे यह सदोष है सो आप जो आज्ञा देवें वही किया जाय।

नृपवर! उस समय यशोमति घोड़ा के मरणका शब्द किंकरोंके मुखसे सुन प्रथम तो स्तब्ध हो गए, पश्चात् क्रोधानल से प्रज्वलित होकर सहसा आदेश करते हुए कि इस अश्व घातक दुष्ट महिषको इस प्रकार मारो कि जिससे बहुत विलम्ब में इसका जीवन नष्ट हो।

तत्पश्चात् रसोईदारको बुलाकर महाराजने आदेश दिया कि इस महिषको जीता ही पकावो जिससे इसे घोटके मारने का अपराध स्मरण रहे।

पृथ्वीनाथ! इस प्रकार महाराजके आदेशसे रसोईदारोंने तत्काल उस महिषीकी नासिकामें रस्सी डालकर उसके मुखको और पगोंको बांध लोहके कढ़ाहमें छोड़दिया।

पश्चात् कड़ाहके नीचे अग्नि प्रज्वलित की। तदनंतर लवणादि क्षार युक्त सोंठ, मिरच, पीपल आदि तीक्ष्ण पदार्थोंके जलसे उसका गात्र सींचा।

नृपश्रेष्ठ! एक तो अग्निकी तीव्र वेदना, दूसरे तीक्ष्ण और क्षार पदार्थोंका क्लेश इससे वह महिष तड़फता हुआ जिह्वा निकालकर बिरस शब्द करता हुआ।

तृष्णाकार शोषित जैसे तैसे बिरस शब्द करते महिषने वह क्षार जल पिया जिससे उसके मर्मस्थानोंका घात होकर अंत्र-जाल (आंतोंके समूह) पश्चिमद्वारसे निकल पड़े।

जब जहां तहां पक्व होने लगा तब रसोईदारों द्वारा तीक्ष्ण शस्त्रसे छेदकर पश्चात् चंद्रमतीके नामपर उत्तम ब्राह्मणोंको

दिया गया।

राजन् ! मेरी माता चन्द्रमतीके जीव महिषकी तो यह अवस्था हुई, अब मेरी क्या दशा हुई सो भी सुन लीजिये अर्थात् जहां महिषकी दुर्दशा हो रही थी वहीं पर रक्षा रहित पगोंकी वेदनासे पुकारते हुए मुझे देख राजाकी आज्ञानुसार दोनोंने मुझे पकड़कर प्राणघातक प्रज्वलित अग्नि पुंजमें क्षेप दिया।

पश्चात् जैसा ही पक्व होता था वैसा ही काट काटकर डाभ लिये संकल्प पढ़ते ब्राह्मणोंको मेरी [महाराज यशोधरकी] तृप्तिके अर्थ देते जाते थे और विप्र समूह बड़े स्वादसे भक्षण करते आशीर्वाद देते थे।

राजन् मारिदत्त ! संसारकी विचित्रता और ब्राह्मणोंकी स्वार्थपरायणता देखी कि मेरी तृप्तिके अर्थ हम दोनोंके शरीरका घात किया जाय और ब्राह्मणोंका उदर पूर्ण किया जाय !

धिक्कार है इस कपट चातुर्यको कि जिसके उपदेशसे असंख्य जीवोंका अधः पतन होता है।

पृथ्वीनाथ ! यह भी एक अन्धेर ही है कि उदर पूर्ण होवे किसीका, और तृप्ति होवे किसीकी, परन्तु अज्ञानी मूर्ख जन इसी निंद्य उपदेशको श्रवण कर शीघ्र मान्यकर बैठते हैं और अपना अकल्याण कर लेते हैं। धिक् धिक् धिगस्तु।

श्रीमान् ! उस समय अग्निकी तीव्र वेदना सहन करते हम दोनों अर्थात् महिष और बकराके प्राण एक साथ निकले सो वहांसे उज्जैनीके निकट मातंग भीलोंके नगरके वाड़ेमें जन्म लिया। जहां किसी स्थान पर गौओंके मस्तकोंके अस्थि पुंज पड़े हुए हैं, कहीं पशुओंके गलित कलेवरसे निकलते लटोंके समूह एकत्रित हैं।

कोई स्थल पशुओंके कलेवरसे पड़ते रुधिरसे व्याप्त हो रहा है। जहांकी भीतें अनेक प्रकारके सघन चर्मसे आच्छादित हैं।

जहांका आंगण मृग और मेषोंके श्रृंगोंसे संकुलित और कुर्कुटों-के चरणोंके प्रहारसे उठी धूलिकर धूसरित है। कोई प्रदेश बिखरे हुए मृत शरीरकी मालाओंके समूहसे पूर्ण है।

किसी स्थान पर अग्नि द्वारा पकते कुत्तोंके कलेवरके रसकी आशासे पड़ते काकोंके समूह विरस शब्द कर रहे हैं।

किसी स्थान पर मांस वसा और चर्मके धूम्रकी लहर उठ रही है।

राजन्! उसी महाघृणास्पद मातंगके गृहमें अनेक कुर्कुट [मुर्गा] पले हुए थे।

हम दोनों ही जीव कूकड़ी (मुर्गी) के गर्भमें उत्पन्न होकर पश्चात् दोनों बालक नवीन रूपके धारक अंडासे बाहर निकलते हुए।

राजन्! हम दोनोंका जन्म हुए पश्चात् हमारे पिता मुर्ग को बिलावने ऐसा पकड़ा कि उसके कंठका अस्थि भग्न होकर वह प्राणांत हो गया।

तदनंतर किंचित् काल व्यतीत हुए पश्चात् हमारी माताको भी मार्जारने भक्षण किया। अब हम दोनों कूकड़ा (मुर्ग) कूंकूं शब्द करते उस चांडालके अमनोज्ञ गृहके आंगणमें विचरने लगे।

उस समय घरकी स्वामिनीको हमारा शब्द सहन न होनेसे उसने एक अस्थि खण्डसे हमारे दोनोंके पगोंको भग्न किया।

राजन्! इतने पर भी वह चुप न हुई, किन्तु उसने हम दोनों कुर्कुटोंके पग बांधकर मांस लिप्त और कलेवर पूर्ण घरमें चर्म निर्मित ढक्कनके नीचे बंदकर दिया। उस समय उदयागत कर्मफल भोगते दुर्द्धर गृहमें कालक्षेप करने लगे।

नृपवर! पूर्व, जिस समय मैं यशोधर नामका मंडलेश्वर राजा था उस समय मैंने जिस प्रकार अनेक नृपगणोंको बंदी बनाकर कारागृहमें स्थापित किया था उसी कर्मका यह फल

मिला कि चांडालके दुर्गंधपूर्ण गृहमें पग वंधे हुए हम दोनों ही रक्खे गए ।

पृथ्वीनाथ ! यह जीव जिस समय परजीवको दुःख देता हुआ कुत्सित कर्म करता है उस समय उसे इस वातका किंचित् भी विचार नहीं होता कि इस दुष्कर्मका क्या फल मुझे मिलेगा।

किन्तु जव उस कर्मके फलको भोगता है उस समय यह विचार उत्पन्न होता है कि मैंने पूर्व अवस्थामें जो अशुभ कर्म किये थे उनसे असंख्य गुणित दुखोंका पात्र वनना पड़ा ।

उस समय पश्चाताप करता है कि हाय ! पूर्व दशामें यदि पाप कर्म न करता तो ये दुःख क्यों देखना पड़ता ?

इत्यादि अनेक प्रकार पीड़ित होता है उसी प्रकार हम दोनों कुर्कुट चांडालके गृहमें पड़े हुए पश्चाताप रूप अग्निसे संतप्त हो रहे थे ।

शीत उष्ण पवनसे पीड़ित और क्षुधा तृषासे आशक्त चांडालके गृह निवास करते हुए दुःखोंकी परम्पराको प्राप्त हुए ।

नृपवर ! उस चाण्डालके गृहमें दुःसह कष्ट पड़नेसे दुःखित अंग हम दोनों कुर्कुट अन्य प्राणियोंके प्राणोंको पीड़ित करते भक्षण करने लगे ।

राजन् ! अब हम दोनों ही विचित्र चित्र वर्ण पुच्छसे सुंदर और तीक्ष्ण चंचुसे भूमिगत सूक्ष्म जन्तुओंका भक्षण करते परस्पर चपलतापूर्वक चरण युद्ध करते पृथ्वीकी रजसे धूसरित गात्र होते, जीव राशिके खण्डनेमें प्रवीण इतस्ततः घूमने रूप स्वभावके धारक और चौरोंकी घातमें रक्त होकर क्रीड़ा करने लगे ।

इसी प्रकार भ्रमण करते हम दोनोंको सत्पुरुषोंके अभिप्रायसे पृथक् कोटपालने देखा सो प्रसन्नचित्त होकर चाण्डाल द्वारा अपने निकट वुलाकर हमारे गात्र पर स्नेहपूर्वक हाथ फेरा

सो हमको आनन्द हुआ मानो पूर्व जन्मके पुत्र यशोमतिके ही हस्तगत हुए हों।

नृपवर! एक दिवस हम दोनों ही कोटपालके द्वारके अग्र भागमें क्रीड़ा करते थे इतनेमें दैव योगसे महाराज यशोमतिकी सवारी उधरसे निकली सो रूप ऋद्धिके भाजन हम दोनोंको स्नेहपूर्ण रुचिकर नेत्रोंसे देख कोटपालसे कहने लगे—

ये दोनों कूकड़े शारीरिक लक्षणोंकी परीक्षा करनेसे अति उत्तम ज्ञात होते हैं इस कारण इन दोनों बच्चोंको गृहांगणके जल और अन्नसे तृप्त कर इनका यत्नपूर्वक पालन पोषण करो।

कोटपाल! जब ये जवान होंगे तब अपनी सुन्दर चंचु और तीक्ष्ण नखोंसे पक्षोंको फड़फड़ाते हुए शत्रु वर्गका क्षय करेंगे। ये दोनों बालक यौवनारंभमें निज चरणोंकी घातसे पृथ्वीतलको खोदते, रक्त नेत्र करते, भृकुटीके विकारको प्रकाशित करते, निज कण्ठगत केशरीको फुलाकर जब युद्ध करेंगे उस समय गमन करते पथिकजनोंके चित्तको मोहित करेंगे।

उसी समय हम भी इनके युद्धकी कुशलता देखेंगे इस कारण तुम इनको यत्नपूर्वक रक्खो।

राजाका उपरोक्त प्रकार आदेश श्रवण कर कोटपालने अपने घरमें स्थापन किया पश्चात् जब रात्रि व्यतीत हुई तब प्रभात समय पिंजरा स्थित हम दोनोंको वनमें जहां राजा उपस्थित थे वहां ले गए।

वह वन! मन्द पवन कर हालते वृक्षोंके पत्र तथा पक्षियोंके कलकलाट शब्दसे पूर्ण था। उस वनमें स्वच्छ चञ्चल वेगयुक्त जलके नीझरनोंके जलसे कूप तड़ाग पूर्ण हो रहे थे, जिनमें फूले हुए कमल और तटोंके वृक्षों पर बैठे अनेक पक्षीगण मनोहर शब्द करते थे, जहां पवन कर हालते लताओंके पत्रमें मिले हुए पक्षियोंके पक्ष कैसे चित्रित हो रहे थे। जिस अरण्यमें अनेक

जातिके वृक्षोंके विविध वर्णयुक्त सुगन्धित पुष्पोंसे पड़ती रजसे जसां तहां मण्डल बन रहे थे।

जिस वनकी मालती लताओंके मण्डलमें तिष्टते क्रीड़ा करते करते किन्नर युगलोंके हाथके बजाये हुए वादित्रोंके शब्दके हिरणोंके समूह मोहित होते थे।

वह मनोहर वन, आकाशसे उतरते देवोंके विमान शिलातल पर तिष्टते क्रीड़ा करते विद्याधर गणोंसे अति रमणीक दृष्टिगत होता था।

जिस वनमें कहीं गंभीर कर्दममें सूकर समूह लोटते और कहीं मदोन्मत्त हाथियोंके दांतोंसे भिदे चन्दनादिके वृक्षोंसे सुगंधि निकल रही थी।

वह अरण्य पुरवासी स्त्रियों द्वारा ग्रहण किये हारोंसे देदीप्यमान, चन्दनादि वृक्षोंसे सघन, शुक सारिका आदि पक्षियोंके समूहसे व्याप्त और पालाके समूह समान श्वभ्रवर्ण हंसोंके युगलों कर पूर्ण अत्यन्त शोभायमान दृष्टिगत होता था।

नृपवर! उसी रमणीक उद्यानमें महाराज यशोमतिका रमणीक और स्वच्छ मन्दिर था, जिसके अवलोकनसे ऐसा ज्ञात होता था मानों देव विद्याधरोंने रमण करनेके निमित्त मायामयी महल निर्मापित किया है।

उस यशोमति नृपके आंगणमें किंकिणी (क्षुद्रघंटिकाओं) कर वाचलित पंचवर्ण और वस्त्र निर्मित मण्डपमें पिंजरा सहित हम दोनों ऐसे स्थापित किये गये मानों यमके मुखमें ग्रास ही स्थापन किया हो।

उस वस्त्र विनिर्मित मण्डपके निकट ही परताप विनाशक शीतल, रक्त पत्रोंकर व्याप्त अशोक वन नरनाथकी भांति शोभा दे रहा था। क्योंकि राजा भी परताप नाशक शीतल और रक्त वस्त्रोंसे व्याप्त था।

नृपवर! भवितव्यताके अनुसार उस चोरनिवारक, पर-स्त्री लंपटोंको विघ्न स्वरूप और हिंसामें प्रवर्त्तक कोटपालने अशोक वृक्षके नीचे प्रासुक शिलापर ध्यानारूढ़ तिष्ठे श्री मुनीराज देखे।

वे श्री मुनि इस और परलोककी आशाके बन्धनसे रहित रागद्वेषादि दोषोंसे विरक्त, शुभ मन शुभ वचन और शुभ योग इन तीनों शुभ योगोंकर युक्त, मन वचन और कायके अशुभ योगोंसे विरक्त, माया मिथ्या और निदान इन तीनों शल्योंके नाशक, लोकत्रयके विजेता कामदेवका खंडनकर लोकत्रयके मंडन।

श्री सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र एवं तीनों रत्नोंकर विभूषित, क्रोध मान माया और लोभ एवं कषाय चतुष्करूप घृतके भस्म करनेको अग्नि समान, आहार भय मैथुन और परिग्रह एवं चार संज्ञाओंसे दूर तिष्ठे, ईर्ष्या, भाषा एषणा, आदाननिक्षेपण और प्रतिष्ठापन एवं पांच समितिके प्रतिपालक तथा पांच मिथ्यात्व, बारह अव्रत, पच्चीस कषाय और पंद्रह योग एवं सत्तावन आश्रवोंके निरोधक।

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह एवं पंच महाव्रतरूप भारके वहनेमें धुरंधर; अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु एवं पंच परमेष्ठीके भावके प्रकाशक, तथा पंच परमेष्ठीमें पंचम पदके धारक साधुओंके नायक, पंचम गति जो मोक्ष उसके विधायक; दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार एवं पंच आचारोंके धारक; पृथ्वीकाय, अपकाय, तेजकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय एवं पंच स्थावर तथा द्विइंद्रिय, तिइंद्रिय, चोइंद्रिय और पंचेंद्रिय एवं त्रसकायके जीवोंकी दयामें अति तत्पर।

सप्त भयरूप अन्धकारके नष्ट करनेमें सूर्य समान; ज्ञान,

पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और शरीर एवं अष्ट मदोंके दूर करनेमें आदरयुक्त, तथा अष्टम पृथ्वी (मोक्ष) के गमनमें तत्पर, सिद्धोंके अष्ट गुणोंमें तल्लीन, नवधा ब्रह्मचर्यके धारक तथा ब्रह्म (आत्मा) के ज्ञाता उत्तम क्षमादि दशधा धर्मके प्रतिपालक।

स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र एवं पंच इंद्रिय मन, वचन और काय एवं तीन बल श्वासोच्छ्वास और आयु एवं दश प्राणोंके धारक जीवोंके रक्षक इत्यादि अनेक गुणोंके भण्डार श्री मुनि-पङ्गवको देखा।

जिन मुनि पुङ्गवने श्रावकोंकी एकादश प्रतिमाओंका विचार कर वर्णन किया तथा जिन्होंने द्वादश विध तप और त्रयोदश प्रकार चारित्रका प्रतिपादन किया।

क्रोध, मान, माया और लोभकी सेनासहित जिस कामदेवने तीन जगतको निर्जित किया, उसी नग्न मुद्राधारक परम दिगम्बर शांतिमूर्ति श्री आचार्यवर्यको देख रोषचित्त होता कोटपाल निज हृदयमें चिंतवन करने लगा—

इस दुष्ट ! गर्विष्ठ पापिष्ठ मलिनगात्र और क्लेशित नग्न मुनिने यह मेरा अत्युत्तम स्थान अपवित्र किया, तथा महा अपशकुन किया इस कारण श्री महाराज यशोमतिके मनोरंजक स्थानसे इस श्रमणको अवश्य निकालूंगा।

परन्तु इस समय उदासीन भावसे रहना योग्य है पश्चात् किंचित् विलम्बकर इस श्रमण से ऐसा अटपटा प्रश्न करूंगा, कि जिसका उत्तर ही न बने, फिर क्या है तत्काल मूर्ख बनाकर इस वस्त्र रहितको निकाल दूंगा।

इस प्रकार विचारकर मायावी कपटाचारी यमराज तुल्य कोटपालने श्री मुनिको साष्टांग नमस्कार किया पश्चात् ध्यान पूर्ण होनेपर श्री मुनिको यद्यपि इस बातका ज्ञान होगया था कि

यह अभक्त दुष्टचित्त है तथापि समभावी मुनिने उसे जिनेन्द्र कथित धर्मकी वृद्धि हो ऐसा आशीर्वाद दिया।

तृण और कंचन है समान जिनके ऐसे महाऋषीश्वर निंदकोंके प्रनि मात्सर्य भाव नहीं करते और न प्रशंसकोंमें हर्ष बढ़ाते हैं। उन महामुनियोंके शत्रु मित्रमें समान दृष्टि है।

अभयरुचिकुमार क्षुल्लक महाराज मारिदत्त से और भी कहने लगे—राजन्! जिस समय उन समभावी मुनिराजने धर्मवृद्धि हो ऐसा शब्दोच्चार किया उस समय धर्म ऐसा शब्द श्रवण कर कोटपालने कहा—

कोटपाल—ऋषिवर! आपने जो धर्मवृद्धि रूप आशीर्वाद दिया वह शिरोधारण किया, परंतु वीरधुरीण योद्धाओंके मतमें तो धनुष ही धर्म है तथा उसकी प्रत्यंचा गुण और शत्रुविध्वंसन निमित्त जो बाण छोड़ा जाता है वही मोक्ष है।

इसके सिवाय न कोई धर्म है न गुण है और न कोई मोक्ष है सो जब कि मोक्ष ही नहीं तो मोक्ष सम्बन्धी सुख कैसे कहा जाय? इस कारण पंचेन्द्रियोंके विषयमें जो आनंद है वही सुख है और उसी सुखको मैं सुखकर मानता हूँ।

मुने! तुम इस अरण्यमें निवास कर क्या करते हो, यह दुर्बल शरीर तिसपर भी वस्त्र नहीं, कंबल नहीं, पांवमें पगरखी [जूता] नहीं, शिरपर पगड़ी नहीं, तुम्हारे आठों अंग क्षीण खेदखिन्न और मललिप्त प्रक्षाल रहित गात्र, नेत्र कपालमें घुस गए हैं, रात्रि दिनमें एक निमेषमात्र भी निद्रा नहीं लेते।

इस प्रकार नेत्र बन्दकर किसका ध्यान करते हो, इसमें तो हमारे सरीखे मनुष्योंको भ्रांति उत्पन्न होती है इस कृत्यमें आपको क्या लाभ होगा, इससे तो उत्तम यही होगा कि इस कोरे आडम्बरको छोड़ विषय भोगोंका रुचिपूर्वक सेवन करो। इसप्रकार कोटपालके वचन सुनकर श्रीमुनिने कहा—

मुनिराज—भ्रातृवर ! जीव और कर्म इन दोनोंका विभाग कर परमात्मामें लीन होकर अजर अमर और शाश्वत स्थान जो निर्वाण हैं वहां प्रति जानेकी कामना करते तिष्ठे हैं और उसीके प्रति लय लगाये हुए हैं ।

प्रियवर ! तुमने जो दुर्बल मलिन और वस्त्र रहित शरीर की निंदाकी सो इस संसार-चतुर्गतिमें भ्रमण करते पुरुष स्त्री नपुंसक सौम्य शांति और क्रूर प्रचण्ड हुआ । यमदूत तुल्य राजा, पयादा, सेवक, दीन, दरिद्री, रूपवान् कुरूप, धनवान् उज्वल-गात्र, नीचकुली, उत्तमगोत्र, बलहीन और अतुलवली भी अनेक बार हुआ । इस भ्रमण स्वभावी संसारमें ऐसी कौनसी पर्याय है जिसे इस जीवने धारण न किया हो ?

मनुष्य भवके भ्रमणमें आर्य म्लेक्ष दरिद्र और धनवान् हुआ पश्चात् क्षत्रिय ब्राह्मण होकर चांडाल हुआ । इस संसारकी गति अति विषम है ।

इस चतुर्गति रूप संसारमें भ्रमण करते भयानक अरण्यमें मांसाहारी क्रूर पशु हुआ, तृणभोजी तिर्यंच हुआ पश्चात् रत्न-प्रभादि नरकोंकी भूमिमें महाघातकको सहन करनेवाला नारकी हुआ । पुनः जलचरथलचरऔर नभचर तिर्यंच होकर पापाचारी देव हुआ । इस प्रकार जन्म मरण रूप भँवरमें पड़ा रत्नत्रय रहित अनन्त शरीर धारण किये । इसी प्रकार जीवते मरते दुःखोंको सहन करते और पापफल भोगते अनंतानंत काल व्यतीत हुआ ।

कोटरक्षक ! अनरक्षक संसारमें जो जो क्लेश मैंने सहे उन सबको मैं जानता हूं । इसी कारण इन्द्रिय जनित विषयसुखों से विरक्त होकर भिक्षा भोजन करता हूं सो भी आत्माको कष्ट देता हुआ स्तोक आहार लेता हूं ।

निर्जन वनमें निवास कर मौन पूर्वक तिष्ठता हूं । कदाचित्

धर्मका उपदेश भी देता हूं। मोहसे पृथक् होता निद्रा भी नहीं लेता।

साम्य जलसे क्रोधाग्निको शांति करता, विनयसे मानको भगाता, सरल भावसे कपटको दूर करता, सन्तोषसे लोभका तिरस्कार करता हूं तथा हास्य नहीं करता, लीला विलास नहीं करता, उद्वेगको छोड़ता, तपाग्निसे मदनके वेगको भस्म करता हूं।

भय रहित होता, शोक नहीं करता। किन्तु हिंसारंभ के आडम्बरसे अति दूर तिष्ठता निज आत्माके ध्यानमें मग्न रहता हूं।

नर रक्षक! मैं स्त्रीके अवलोकनमें अंधा, गीतोंके सुननेसे बधिर, कुत्सित तीर्थके गमन करनेमें पंगु और विकथा कथनमें मूक हूँ।

कोटरक्षक! जीवका आधारभूत जो शरीर है वह यद्यपि अचेतन है तथापि वृषभों द्वारा चलाए हुए गाड़ीकी भांति चेतन द्वारा चलाया हुआ चेतन सदृश ही दृष्टिगत होता है।

प्रियवर! जैसे वृषभों विना शकट [गाड़ी] नहीं चलती उसी प्रकार पुद्गल परमाणुओंका पिण्ड जो शरीर है वह चेतन जीव बिना नहीं चल सकता, इस कारण जीव पृथक् है और शरीर भिन्न है।

ऐसा विचारकर मैं दिगम्बर हुआ सो अन्य किसीकी अभिलाषा नहीं करता, किन्तु केवल मोक्षकी इच्छा करता ध्यानारूढ़ तिष्ठता हूँ। मैं अरण्यवास करता आर्तरौद्र कुत्सित ध्यानसे विरक्त होकर धर्म-ध्यान और शुल्क ध्यानके योगसे आत्माका अवलोकन करता हूं।

यद्यपि मैं शरीरकी स्थिरताके अर्थ आहार ग्रहण करता हूं, परन्तु उसमें गृद्धता नहीं रखता तथा इंद्रियोंके बलको दमन करता

पापाश्रवोंका विसर्जन करता हूं, इस दशा में जो आनन्द है वह लोकत्रयमें नहीं है।

इसप्रकार श्री मुनि—पुंगवके वचन सुनकर कोटपाल कहने लगा—

कोटपाल—मुनिवर्य ! तुमने कहा सो सत्य है परन्तु देह और आत्माको भिन्न कहते हो यह योग्य नहीं, क्योंकि जैसे गौके शृंगोंसे दुग्ध नहीं झरता और छत्र बिना छाया नहीं होती, उसी प्रकार जीव बिना मोक्ष नहीं होता। तुम सरीखे जो तपाग्निसे आत्माको संतप्त करते हो सो केवल क्लेश भोगते हो। इसकारण जैसा मैं कहूं वह करो तो अवश्य सुख प्राप्त होगा।

मुने ! जैसे पुष्पसे गंध भिन्न नहीं उसी प्रकार आत्मा भी शरीरसे पृथक नहीं, किंतु जैसे पुष्पके नाश होनेसे गंधका विनाश हो जाता है उसी प्रकार देहके नष्ट होनेमें आत्माका अभाव हो जाता है इसकारण देहको कष्ट देनेमें आत्मा कष्टयुक्त होता है।

इस प्रकार कोटपालके वचन सुन श्रीमुनि कहने लगे—

मुनि०—कोटपाल ! आत्मा और शरीरकी भिन्नता प्रत्यक्ष सिद्ध है। जैसे चम्पाका पुष्प तैलमें क्षेपनेसे उसकी सुगंध पृथक् हो जाती है किन्तु पुष्प बना रहता है इसी प्रकार देहसे आत्मा भिन्न हो जाता है।

ऐसा सुन पुनः कोटपाल कहने लगा—

कोटपाल—जब कि तुम देहसे आत्माको भिन्न मानते हो तो देहमें आते जाते आत्माको किसीने देखा है ? यदि तुमने देखा हो तो तुम ही कहो कि हमने आत्मा देखा है।

कोटपाल और भी कहने लगा—

यह शरीर शोणित और शुक्रके घर रूप गर्भांतरमें वृद्धिको प्राप्त होता देखते हैं (वहां अन्य जीव कहांसे आजाता है) ऐसा

सुन संयम और नियमके भण्डार तथा शांतिमान् भट्टारक(आचार्य) कहने लगे—

मुनिराज—भो कोटपाल ! तुमने कहा कि जीव आते जाते दृष्टिगत नहीं होता सो यह बात सत्य है कि निज अमूर्त्तत्व गुणके सम्बन्धसे यथार्थमें जीव दिखाई नहीं देता, परंतु दृष्टिगत न होनेसे क्या वस्तुका अभाव होजाता है ? कदापि नहीं।

मित्रवर ! जो दूरसे आया हुआ शब्द नेत्रों द्वारा क्या देखा जाता है ? किन्तु कर्णों द्वारा ज्ञात होजाता है इसी प्रकार संसार में अनेक योनियोंसे आया हुआ आत्मा यद्यपि निज सूक्ष्मत्व गुण से दृष्टिगत नहीं होता परंतु अभाव नहीं होता किन्तु अनुमान ज्ञानसे जाना अवश्य जाता है।

इसका मुख्य कारण यही है कि जिस इंद्रियका जो विषय है वह उसी इंद्री द्वारा ज्ञात होता है, किन्तु इन्द्रियके विषयको दूसरी इन्द्रिय ग्रहण नहीं कर सकती। जैसे नासिका इन्द्रियका विषय जो गंध है वह नेत्र कर्ण जिह्वा और स्पर्श द्वारा नहीं जाना जाता, जो स्पर्श इन्द्रियका विषय स्पर्शन है वह रसना, नासिका नेत्र और कर्ण द्वारा ज्ञात नहीं होता।

नेत्र इन्द्रियका विषय जो वर्ण है उसे स्पर्श, रसना, घ्राण और कर्ण नहीं जान सकते। रसना इन्द्रियका विषय जो स्वाद है वह स्पर्श, घ्राण, कर्ण और नेत्रों द्वारा नहो जाना जाता, और कर्ण इन्द्रियका विषय जो शब्द है उसका अन्य इन्द्रियों द्वारा वोध नहीं हो सकता।

प्रियवर ! यह तो मूर्तिमान पदार्थका विधान कहा, अर्थात् मूर्तिक इन्द्रियोंका विषय भी मूर्तिक ही होता है और मूर्तिवन्त विषयको मूर्तिक इन्द्रिय ही ग्रहण कर सकती है किंतु अमूर्तिकको नहीं जान सकती।

कोट रक्षक ! यह जीव नामक पदार्थ अमूर्तिक है, वह

अमूर्तिक केवल ज्ञानका विषय है, अर्थात् जीव द्रव्यका केवल ज्ञान द्वारा बोध होता है।

इसी हेतु से श्री केवली भगवान् उस अमूर्तिवन्त जीव द्रव्य को प्रत्यक्ष जानते देखते हैं। इस प्रकार शरीरस्थ होता हुआ भी देहसे पृथक् जीव नामक पदार्थकी सिद्धि है।

इस प्रकार श्री मुनिके वचन सुन त्याग विक्रम गुणका धारक कोटपाल कहने लगा—

कोटपाल—मुनिश्रेष्ठ! यह तो आपका कथन हमने माना परंतु यह तो कहिये कि इस जीवको अनेक योनियोंमें कौन प्राप्त करता है? और कौन इसे ले जाता है?

इस प्रकार कोटपालके प्रश्न करने पर मेघवत् गर्जना करते असंयमके घातक श्री मुनिपुङ्गव इस प्रकार उत्तर देते हुये—

मुनि—इस चैतन्य आत्माको अनेक योनियोंमें ले जानेवाला अचेतन कर्म है, वही इस जीवको चार गति और चौरासी लक्ष योनियोंमें नाच नचाता है, उसी कर्मसे चतुर्मुखी ब्रह्माने रंभा द्वारा तप भ्रष्ट होकर निज मस्तक पर गर्दभका मुख धारण किया पश्चात् महादेव उसीके घात करनेसे महाव्रती हुआ।

कोटपाल! इस लोकमें कर्मोदय ही बलवान हैं। जैसे चुम्बक पाषाण द्वारा आकर्षित हुआ लोह पिंड नृत्य करने लगता है उसी प्रकार जीवके रागद्वेषादि भावों कर पुद्गल परमाणुकर्म-स्वरूप होकर जीवको चतुर्गतिरूप संसारमें भ्रमण कराते हैं।

संकोच भी और विस्तार भी कर्म प्रकृतियों द्वारा ग्रहण करता आत्मा जगतसूक्ष्ममें कुन्थु होकर हाथी होता है इसीसे यह जीव जीवशरीर प्रमाण वर्णन किया है।

मित्रवर! यदि यह जीव ध्रुवलोक प्रमाण सर्वगत निश्चल और क्रियगुण वर्जित सर्वथा माना जायेगा तो उसके भवोत्पाद और भीषण कर्मबंध किसप्रकार होगा?

क्योंकि जो शुद्ध जीव होता है वह ज्ञानावरण, दर्शनावरण मोहनीय और अंतराय एवं चार घातिया तथा आयु, नाम, गोत्र और वेदनीय एवं चार अघाती इस प्रकार आठ कर्मोंका वंध किस प्रकार करै तथा गुरुपना शिष्यपना किसके होवे, इससे यह सिद्ध है कि यह जीव निज भावों द्वारा बंधे हुए कर्मोंसे ही अनेक कार्य करता हुआ पुनः कर्मबंध करता है।

प्रियवर! यदि शरीरहीको आत्मा मानोंगे तो शरीर जड़ होनेसे आत्मा भी अचेतन मानना पड़ेगा और जब आत्मा अचेतन हुआ तो शय्यासनका स्पर्शन, अनेक रसोंका स्वाद, अनेक गन्धोंका सूंघना, अनेक शब्दोंका सुनना और अनेक वर्णों का देखना किसके होगा?

इस कारण देहको आत्मा मानना सर्वथा विरुद्ध है किंतु देह स्थित होता हुआ भी आत्मा देहसे भिन्न और ज्ञानी है।

चार्वाक मतवालोंका जो वृहस्पति नामका गुरु है वह पृथ्वी अप, तेज, वायु, और आकाश एवं पदार्थोंके ब्रह्मा, हरि, हर, ईश्वर और शिव पंच नाम प्रतिपादन कर पुनः कहता है कि उपर्युक्त पंच पदार्थोंके समुदायसे स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द एवं पंच गुण विशिष्ट जीव है।

इस प्रकार चार्वाकका कहना सर्वथा विरुद्ध है। क्योंकि—

उस जीवके स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, और शब्द एवं पांचमें एक भी वर्णन नहीं किया, किन्तु केवल पांच इन्द्रियों द्वारा स्पर्शादि पंच गुणोंको जानता है। इस प्रकार मैंने सुखपूर्वक श्रवण किया है।

जीव अनादि निधन है और चैतन्य गुण युक्त है, अमूर्त्तीक है इस कारण स्पर्शादि पंचगुण जीवमें नहीं किन्तु वही जीव संसार अवस्थामें देह धारण कर पंच इन्द्रियों द्वारा उपर्युक्त गुणोंका ज्ञाता दृष्टा है।

इसके सिवाय चार्वाक और भी कहता है कि जो नेत्रों द्वारा दृष्टिगत होता है वही प्रत्यक्ष होनेपर प्रमाणभूत है, और जो नेत्रोंके देखे विना अन्य पदार्थका मानना गर्दभ शृङ्ग तुल्य है।

इत्यादि कथन करनेवाला सर्वथा एकांतवादी, किन्तु मिथ्या वादी है, क्योंकि किसी पिता तथा पितामहने रक्खा गृहमें द्रव्य जबकी दृष्टिगत नहीं होता तो क्या वह नहीं है ?

जब कि कानोंसे सुन तो लिया कि अमुक स्थान पर द्रव्यका भण्डार है, परन्तु नेत्रोंसे नहीं देखा तो क्या वहां द्रव्य नहीं है या वह चार्वाक मतानुयायी उस द्रव्यको ग्रहण नहीं करेगा ?

जो गर्वसे महंत विषय कषाय रूप रसमें लंपट जो प्रत्यक्ष-वादी है वह परमाणु आदिक सूक्ष्म पदार्थ राम रावणादि अंतरित और मेरु आदिक दूरस्थ एवं वर्त्तमान होते हुओंको भी नहीं मानता है।

इसके सिवाय नेत्र इन्द्रियोंके विषय विना अन्य इन्द्रियोंके विषयको भी ग्रहण नहीं करते होंगे। अर्थात् वे पुरुष गीतवा-दित्रादि सुनते हुए भी बधिर हैं तथा कामिनीके स्तन युगलोंके स्पर्शनके आनन्दसे भी अनभिज्ञ रहते होंगे और शत्रुओं द्वारा खड्गादिका घात होते हुए भी उस सम्वन्धी पीड़ासे दुःखी न होते होंगे, और ग्राम नगरादिकोंका दाह भी देखे बिना न मानते होंगे।

जो प्रत्यक्षवादी देह रहित आत्माको न मानते हुए इस अचेतन देहहीको आत्मा मानते और श्रद्धान करते हैं वे कच्छवाके रोमोंका दुशाला ओढ़े और आकाशके पुष्पोंका मुकुट रक्खे वंध्याके पुत्रसे वार्त्तालाप करते हैं।

कोटरक्षक ! जो रागी द्वेषी छद्मस्थ ज्ञानी कर्मोदय सहित होते अमूर्त्तीक आत्माको मूर्त्तीक मानते हैं और अदेह परमात्मा को जगत्का कर्त्ता मानते हैं उनका कथन प्रमाणभूत नहीं किंतु

जो सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशी है उसीका वचन प्रमाण है।

शरीर रहित (सिद्ध परमेष्ठी) न उत्पन्न होते, न मरते, न करते, न धरते और न कुछ हरते हैं क्योंकि अशरीरी प्रभु भव संसारमें भ्रमण नहीं करते हैं।

अशरीरी परमात्माका स्वरूप उपर्युक्त ज्ञान करना और जो सर्वज्ञ वीतराग हितोपदेशक शरीर सहित भगवान् हैं उसका स्वरूप इस प्रकार जानना और श्रद्धान करना योग्य है।

जो इन्द्र, प्रतीन्द्र, चन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्र, चक्रेन्द्र, विद्याधरेन्द्र आदि कर पूजनीक एक हजार आठ लक्षणोंकर सहित केवल ज्ञान नेत्रके धारक अष्ट प्रातिहार्यसे विराजमान धर्मचक्र कर शोभित ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनी और अन्तराय एवं घातिचतुष्कसे विमुक्त किंतु अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य एवं अनन्त चतुष्टयके धारक श्रीअरहंत केवलीके मुखसे आत्माका स्वरूप श्रवण किया है।

वह आत्मा द्रव्यार्थिक नयद्वारा नित्य और पर्यायार्थिक नयकर अनित्य है और जो एकांतवादी आत्माको सर्वथा नित्य ही मानते हैं उनके शासनमें आत्मा जन्म मरण आदि समस्त कार्योंसे रहित आकाशवत् निर्लेप और अक्रिय ही कहा जायेगा।

जब आत्मा अक्रिय हुआ तो नित्य कूटस्थ हो जायेगा। जिससे उसमें असंख्य दोषोंका उत्पाद होगा। इस कारण आत्मा कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है।

श्रीआप्त भगवान्ने आत्माको अनेक रूप वर्णन किया है और जो अद्वैतवादी भट्ट जीवको एक ही कहता है अर्थात् भट्ट कहता है कि जैसे अनेक जलपूरित घटोंमें एक ही चन्द्रमाका बिंब प्रतिबिंबित होकर अनेक रूप दीखता है उसी प्रकार जीव एक होनेपर भी अनेक रूप दृष्टिगत होता है।

इस प्रकार भट्टका कहना सर्वथा विरुद्ध है, क्योंकि यदि

जीव एक ही होता तो कोई जीव हास्य करता, कोई अनेक रुदन करते हैं इसी प्रकार एक रोता है तो अनेक हंसते हैं। एक शयन करता है, अनेक जागृत होरहे हैं, अनेक दया पालन करते हैं, अनेक हिंसाकर्ममें प्रवृत्तिमान होते हैं, कोई स्वस्थ तिष्ठे हुए हैं, कोई युद्धमें संलग्न हैं, अनेक शंका उत्पन्न करते शिष्य बनते हैं।

एक गुरु सबका समाधान करता है, एक राज्य करता है। अनेक दासकर्म करते हैं इत्यादि कोई किसी क्रियामें मग्न है कोई किसी कर्ममें संलग्न होरहा है। यदि चन्द्रबिंब सदृश भी मानोगे तो अनेक घटोंमें प्राप्त होता हुआ भी एक ही प्रकारका दीखता है। घटस्थ बिंबमें और चन्द्रबिंबमें कुछ अन्तर नहीं।

उसी प्रकार समस्त जीव एकही प्रकारके दृष्टिगत होते सो हैं नहीं, किंतु एकदूसरे प्रतिकूल कर्म करते दृष्टिगत होते हैं इस हेतु यही सिद्ध होता है कि जीव एक नहीं किंतु अनेक हैं।

और बौद्ध मतानुयायी जगतको क्षणिक मानता है। वह कहता है कि समस्त जगत क्षणमें उत्पन्न होता है अर्थात् जो प्रथम समय है वह द्वितीय समयमें नहीं रहता इस कारण जगतका होना न होना समान ही है तिस क्षणिकवादी बौद्ध प्रति कहते हैं—

बौद्धके कथनानुसार यदि जगत नहीं है तो वह पात्रसे पतित मांस रसका रसिक बौद्ध तपश्चरण करता क्यों तिष्ठता है ? जो आत्माको विज्ञानस्कंध मानता है सो वह बुद्ध भट्टारक हठग्राही है।

यदि तीनों लोक भ्रांति रूप क्षणिक ही होते तो एकदूसरेकी कृतिके ज्ञाता किस प्रकार होते ?

यदि चैतन्य आत्मा क्षणध्वंसी होता तो छः मासकी वेदना का ज्ञाता किस प्रकार होता ?

वौद्ध पुनः कहैं कि जो छः मासकी वेदनाको जानता है सो पूर्व बासनाके अनुसार जानता है।

उनके प्रति कहते हैं कि जब समस्त जगत् क्षणिक हैं तो क्या वासनामें क्षणकत्व न होगा ? इसके सिवाय विज्ञान वेदना संज्ञा, संस्कार और रूप एवं पंच स्कंधोंसे भिन्न हैं।

इत्यादि हेतुओंसे सिद्ध हुआ कि आत्मा सर्वथा क्षणिक नहीं है किन्तु कथंचित् क्षणिक और कथंचित् ध्रुव है।

इस प्रकार श्री मुनि पुंगवके बचन सुनकर कोटपाल निज मस्तक पर हस्तकमल धारण कर श्री मुनिकी स्तुति करता हुआ मुनि कथित वाक्योंको प्रमाणभूत ज्ञात करता स्वीकार करता हुआ।

तदनंतर कोटपाल कहने लगा—

कोटपाल—हे मदनभंजक, हे भट्टारक, हे जगतारक ! आप मुनिमार्गका प्रतिपादन कीजिये। मैं यथाशक्ति उसका प्रतिपालन करूंगा।

मुनिराज—कोटरक्षक ! तू श्री सर्वज्ञ वीतराग और हितोपदेशक श्री जिनराज कथित धर्मका सेवन कर क्योंकि इसी धर्मसे स्वर्ग मोक्षकी प्राप्ति होती है। धर्मसे मनुष्य होजाय तो नारायण, बलभद्र, विद्याधरेश, चक्रवर्ति होता है। इस धर्मसे धरणेद्र, इन्द्र और अहिमेंद्र पद प्राप्त होता है।

प्रियवर ! इसी धर्मके धारण करनेसें जिनके चरण कमलों के दास इन्द्रादिक देव जिनका जन्माभिषेक क्षीरसागरके जलसें करते हैं ऐसा जिनेन्द्र पद प्राप्त होता है।

इसी धर्मके फलसें मनुष्य पर्याय धारण कर उत्तम धनवान् गृहस्थ होता हैं वहां चन्द्रवदनी, कर कमली, हंस गामनी, कमल दल नेत्रा, सुगन्धमय श्वासोश्वास सहित मनोहर, लापा अनेक कौतुकोत्पादिका, पीनोन्नकुचा और उत्तम वस्त्राभूषणों कर

विभूषिता इत्यादि रूपकर देवांगना तुल्य स्त्रीरत्नकी प्राप्ति होकर सांसारिक सुखोंका अनुभव प्राप्त करता है।

रत्नोंकी किरणोंके समूहसे व्याप्त, जालीकर उपलक्षित गवाक्षोंकर मनोहर, सुविचित्र भीतियों कर शोभमान और पाँच सात खनके महल इस धर्मसे प्राप्त होते हैं।

भव्यवर ! इस धर्मके फलसे मदोन्मत्त गजराज, पवन तुल्य वेग युक्त घोटक, रथ, पालकी आदि अनेक आसन, ध्वजा, उज्वल छत्र चमर, सिंहासन आदि राज्य चिह्न, महाबलधारी अनेक सुभट और महासेनाका स्वामी होकर आनन्दपूर्वक काल व्यतीत करता है।

प्रियवर ! इस संसारमें धर्म समान मित्र अन्य नहीं किंतु इससे विपरित पाप समान दुःखदायक शत्रु दूसरा नहीं है।

जो परजीवकी हिंसा करता है अर्थात् अन्य जीवके प्राणोंको पीड़ित करता है वह पापी गिना जाता है, और उसी पाप के फलसे यह जीव संसार चतुर्गतिमें भ्रमण करता अनेक कुयोनियोंमें असंख्य दुःखोंका पात्र बनता है।

कोटरक्षक ! जो हिंसक है वह संसार बनमें भटकता किसी पुन्य योगसे मनुष्य पर्याय धारण करें तो दुःखी, दरिद्री, दीन, मलिनगात्र, दुर्बल, रूक्ष हस्तपादादि, दुर्गंधियुक्त वक्र बदन, महा घृणित, लोकोंके उच्छिष्टसे जीविका करनेवाला और मलिन और फटे वस्त्रोंसे, आयु पर्यन्त दुःख भोगता काल व्यतीत करता है।

जिस महा हिंसादि पाप कर्मसे, यदि मनुष्य पर्यायमें स्त्री पावे तो मलिनगात्रा, जार पुरुषोंसे रमण करनेवाली पर पुरुषासक्ता, व्यभिचारिणी, पर धन हरण करनेमें प्रवीण, पीत नेत्रा रुक्ष केशा, शुष्क कपोला, भग्नस्तनी, मोटे और धूसरे फटे ओष्ठ, दुर्भागणी, दुष्टिणी, कुलमार्गसे भ्रष्ट, कठोर, धींठ,

निर्लज्ज, पाप कर्ममें लीन, स्नेह रहित, दुर्गंध शरीर, प्रलय-काल सदृश कलहिनी, शोभा रहित, दारिद्रय पीड़ित, कठोर व कर्कश भाषिणी होती है।

पापकर्मसे यदि गृहस्थ भी हो तो उपरोक्त गुण विशिष्टा स्त्री, महामूर्ख अनेक पुत्र तिसपर आप दरिद्री, यदि कदाचित् किसीकी मंजूरीसे जो कुछ द्रव्य लावे उससे अनाजकी योग्यता न होनेपर खलके खण्ड और तुषके पिंडोंसे समस्त कुटुम्ब भूख-को शांति करें।

इधर उधर बालक रोते हैं, उनकी नाक बहती है, कहीं घरमें फूटे पात्र पड़े हुए हैं, कहीं दूसरोंसे माँगकर लाये मलिन और फटे वस्त्र लटक रहे हैं, जिनका कोई सहायक परिवार नहीं, जिनका घर भी कैसा उत्तम कि तृणोंसे आच्छादित होने-पर भी सहस्रों छिद्र।

वहुत कहाँ तक कहा जावे, इस संसारमें यावत् मात्र दुःख है, वह समस्त पापरूप वृक्षके फल हैं और वह पाप भी पर पीड़ासे ही है।

कोटपाल ! इस प्रकार जानकर जैसे हो तैसे जिसमें जीव का वध न सम्भव हो ऐसे धर्मको करो, ऐसा हास्यपूर्वक श्री मुनिराजके वचन सुनकर कोटपाल श्री मुनिसे कहने लगा—

कोटपाल—श्री मुनि ! देव, गुरु, भूत नामक ब्राह्मण इस प्रकार कथन करता है कि जो पुरुष पशुओंका घातकर मांस भक्षण करता है वह निश्चय स्वर्गमें असंख्य काल पर्यंत सुख भोग करता है, इस प्रकार कोटपालका कहा हुआ श्रवण कर पुनः श्रीमुनिने कहा—

मुनि—महाशयवर ! जो निश्चित शुद्ध ज्ञान है वह इन्द्रिय-वर्जित अतींद्रिय है तथा वही ज्ञान जीविका निज स्वभाव मयहै, किन्तु पराधीन नहीं, वह साधनक्रमसे स्खलित रहित है सो

अतींद्रिय ज्ञानके धारक श्रीकेवली भगवान्ने जो प्रतिपादन किया है वह सर्वथा सत्य है, अन्यथापनका लेश भी नहीं।

क्योंकि वस्तु स्वभावके यथार्थ कथनमें प्रथम तो सर्वज्ञ होना चाहिये और सर्वज्ञ भी हुआ, यदि रागद्वेष कर मलिन हुआ तो भी वह यथावत् नहीं कह सकता, इस कारण जो सर्वज्ञ और वीतराग ही हितोपदेशक गुण सहित है, वही आप्त है, उसीका कहा हुआ वचन प्रमाणभूत है।

मित्रवर! आप्त भगवान्ने चैतन्यगुण विशिष्ट अमूर्तीक जीवका जैसा स्वरूप प्रतिपादन किया है उसे इन्द्रियजनित ज्ञानका धारक स्वप्नमें भी नहीं जान सकता। क्योंकि जो इन्द्रियजनित ज्ञान है वह मूर्तिक है। वह मूर्तिक ज्ञान अमूर्तिक वस्तुका ज्ञाता किस प्रकार हो सकता है?

कोटरक्षक! तुम्हारा जो देव है वह इन्द्रियजनित ज्ञानका धारक है सो वह इन्द्रियजनित ज्ञानसे वस्तु स्वभावको जन्मांतरमें देख जान नहीं सकता।

जैसे मदोन्मत्त मूर्छावान् और शयनस्थ पुरुषके मुखमें श्वान मूत्रक्षेपण कर जाता है और उसेनहीं जान सकते इसी प्रकार अतींद्रिय ज्ञानवर्जित छद्मस्थ ज्ञाता त्रैकालिक वस्तुको कदापि नहीं जान सकता।

व्यासजीने यद्यपि समस्त भारत नामक ग्रन्थका प्रकाशन किया परन्तु अतीन्द्रिय ज्ञान वर्जित होनेसे यत्किंचित् कथन किया है वह मिथ्या है। क्योंकि छद्मस्थके वस्तुका यथावत् ज्ञान नहीं होता। इस कारण लोकके अग्रभागमें पृथ्वीतलका स्थापन तथा सूर्य चन्द्रादि ग्रहोंकी गतिमें गणित पर भाषण त्रिलोकगत कालत्रयकी कथा और गगनांगणमें सूर्य चन्द्रमाके ग्रहण आदि का निरूपण नहीं हो सकता। इसके सिवाय जो मूढ़बुद्धि सर्वज्ञको अतींद्रिय और अनिंदित ज्ञानमय प्रतीत नहीं
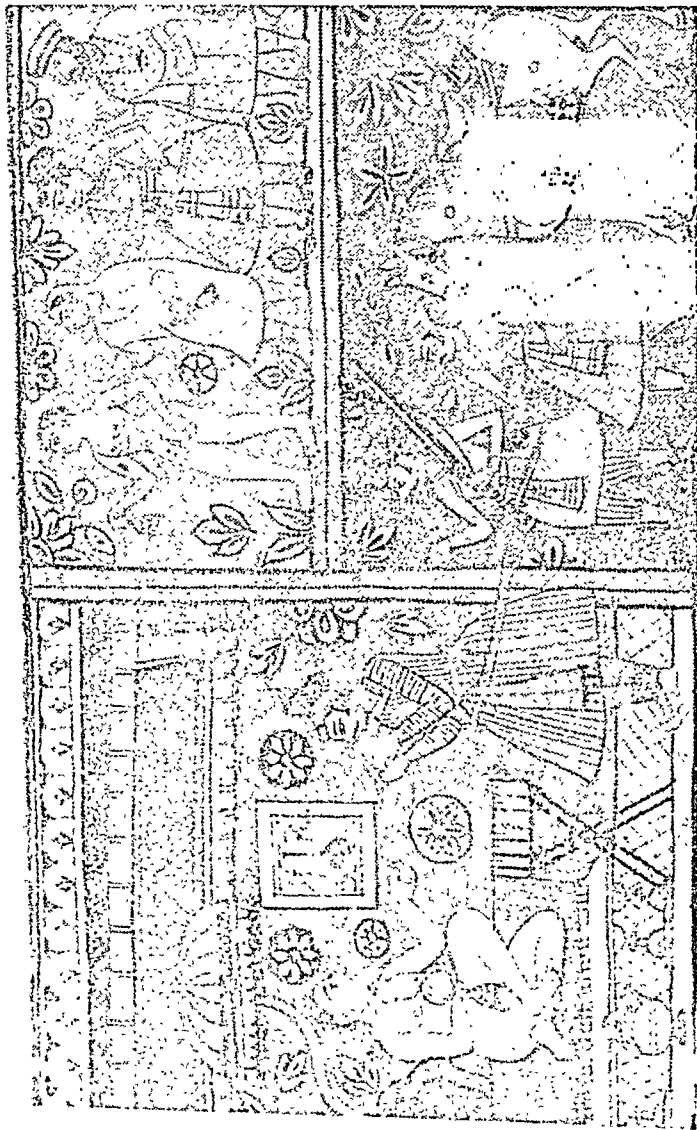
मारिदत्त ने मुनि सुदत्ताचार्य जी से दीक्षा के लिये निवेदन किया।
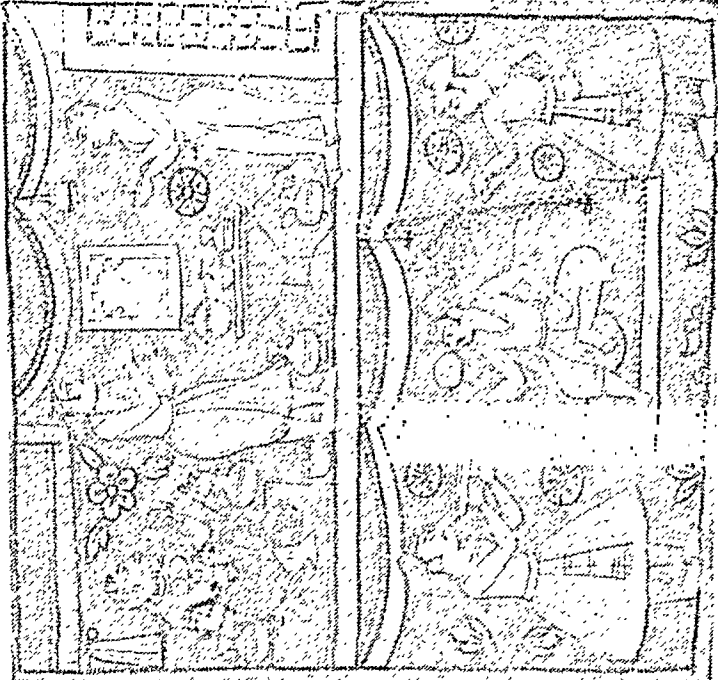
मुनिराज ने कोढ़पाल को उपदेश दिया।

करता वह निंदित पंचेन्द्रियोंमें रत होता हुआ नरकोंमें वैतरणी के जलको पान करता है।

भ्रातृवर ! वेदपाठी जन वेदकी उत्पत्ति इस प्रकार करते है कि अशरीरी परमात्माकी इच्छानुसार चारों वेद स्वयमेव उत्पन्न हुए हैं।

इस प्रकार कहनेवालोंको किंचित् भी लज्जा प्राप्त नहीं होती। क्योंकि जबकि वेद स्वयंसिद्ध हैं तो आकाशमें शब्दोंकी पंक्ति एकत्रित होकर आप हीं पुस्तकमें किस प्रकार लिखी गई यह कथन सर्वथा विरुद्ध ही नहीं, किन्तु असंभव ज्ञात होता है।

मित्रवर ! दो पुद्गलके संगठनसे उत्पन्न हुआ शब्द आकाश में गमन कर लोकोंके कर्णाश्रित है वह शब्द दो प्रकार है अर्थात एक अक्षरात्मक और दूसरा अनक्षरात्मक है।

उनमें पशु और बंशादि द्वारा उत्पन्न हुआ शब्द अनक्षरा-त्मक है और अष्टस्थानोंके सम्बन्धसे उत्पन्न हुआ मनुष्योंका शब्द अक्षरात्मक बुद्धिमानोंने भाषारूप परिगणित किया है।

कोटरक्षक ! जो मूढ़वुद्धि वेद को स्वयं सिद्ध करते हैं वे ही देवको शरीर रहित तथा पाँडवोंको देव पुत्र कहते हैं। अर्थात् धर्मका पुत्र युधिष्ठिर, इन्द्रका पुत्र अर्जुन, पवनका पुत्र भीम, अश्विनीकुमारका पुत्र नकुल और सहदेवको वरुणका पुत्र प्रतिपादन करते हैं।

जो नित्य निरंश और अखण्ड है उसमें अंश कल्पना किस प्रकार हो सकती है ? जो पुरुष जबकि उपरोक्त कथन करते लज्जास्पद नहीं होते, अकीर्तिसे भयभीत नहीं होते वे ही कंस नामक शत्रुकी हिंसासे वासुदेवको स्वर्ग सुखका भोक्ता बतलाते हैं।

इससे यह ज्ञात होता है कि वेद भिन्न हैं, पुराण अन्य हैं, देव अन्य, पूज्य अन्य ; और इस कथनका करनेवाला अन्य है।

मित्रवर ? इस प्रकार कुमारिल भट्टके कथनसे पूर्णता हो, क्योंकि उपरोक्त समस्त कथन असत्य होनेसे धर्मके विपरीत है किन्तु अधर्मका पोषक और सर्वथा असम्भव है।

वेद द्वारा किया हुआ कथन मैंने जाना, उसमें हिरणोंका मरण प्रकाशित किया। एक वेदने निश्चय कर भील कुलका पोषण किया और दूसरेने द्विजकुल (ब्राह्मणों) का पालन किया

यदि मीन भक्षी और स्नानसे पवित्र होते ब्राह्मण और बगुला ही पूज्य पदको प्राप्त हो जायेंगे तो षट्कायके प्रणियों के रक्षक, संयमके प्रतिपालक और समभावसे युक्त मुनियोंकी क्या दशा होगी ? अर्थात् उनकी पूजा वन्दना कौन करेगा ?

कोटरक्षक ! तुम ही निज हृदयमें विचार कर देखो कि सरिता तटपर निवास कर मच्छियोंके समूहको भक्षण करता बगुला किस प्रकार पवित्र हो सकता है ? इसी प्रकार जो ब्राह्मण जिह्वालंपट मांसभक्षी हैं वे पूज्य किस प्रकार हो सकते हैं।

पाप कर्मके उदयसे मेढ़ी, बकरी, हरिणी, और गाय आदि पशु जाति समस्त तृण भोजी हैं, किन्तु वे किसी जीवके घातमें प्रवृत्तिमान् नहीं होते, उन दीन पशुओंका घात कर आपको उच्चकुली और पवित्र मानकर भोले जीवोंसे अपनी पूजा करावें और कहें कि—

हमको परमेश्वरने इस विप्रकुलमें इसीलिये उत्पन्न किया है कि हम चाहे जैसा नीच कर्म करें तो भी पूज्य ही हैं और जो हमारी निन्दा करता है वह जब तक सूर्य चन्द्रमाका उदय है तबतक वह नरक वास करता है।

तथा जो हमारे बचनोंमें दूषण लगाता है वह वैतरणीके जलका पान करता है इससे हमारा कहा हुआ जो वाक्य है वह जनार्दन भगवान् तुल्य है।

कोटरक्षक ! अब आपही कहिये कि इन विप्रोंका कहा हुआ वाक्य कहां तक सत्य माना जाय ? क्योंकि प्रथम तो आप कहते हैं कि गौ देवता है और उसकी पूछ में तेतीस कोटि देवता वास करते हैं।

इस कारण गौकी विष्टा और मूत्र दोनों ही पवित्र हैं फिर आप ही उपदेश करते हैं कि गोमेध्य यज्ञमें गौके हवन करनेसे मनुष्य स्वर्गलोकको जाता है।

इसके सिवाय और भी कहते हैं कि जो पुरुष सौदामिनी यज्ञमें मदिराका पान करता है वह संसारसे पार हो जाता है। इत्यादि कहां तक कहा जावे, विप्रोंका कथन सर्वथा असत्य और विरुद्धता युक्त है।

भव्यवर ! अब तुम वेदमार्गको त्यागकर श्री ऋषभदेव आदि तीर्थनाथ कर प्रकाशित धर्मको अंगीकार करो।

श्री ऋषभदेवव स्वामीने दयामय धर्मका प्ररूपण कर पुनः वही दयामयी धर्म मुनि और गृहस्थके भेदसे दो प्रकार प्रतिपादन किया।

उनमें पंच महाव्रत, पंच समिति और तीन गुप्ति एवं त्रयोदश प्रकार चारित्रयुक्त मुनि धर्म, महा दुर्द्धर है और पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत एवं द्वादश व्रत रूप श्रावक धर्म है उसीका पालन तुम करो।

क्योंकि इस श्रावक धर्ममें एकदेश हिंसाका त्याग है सो तुम हिंसा, झूठ, चौर्य कर्म, कुशील सेवन और परिग्रहकी तृष्णा एवं पंच पापोंका एकदेश त्याग कर अहिंसा [दया], सत्य अचौर्यव्रत स्वदार सन्तोष और परिग्रहका प्रमाण एवं पंच अणुव्रतों का धारण करो।

पुरुषोत्तम ! उपरोक्त व्रतोंके सिवाय रात्रि भोजनका त्याग मधु, मांस, मदिरा तीन मकार तथा ऊमर, कठूमर, पीपल, बड़

और पाकर फल एवं पंच उदंबर फलोंका वर्जना करना, दशों दिशाओंका प्रमाण और भोगोपभोगकी संख्या करके आठ मदों का त्याग कर देना चाहिये।

इसके सिवाय अन्य कुशास्त्रोंके श्रवणका वर्जन वर्षा कालमें गमनका निषेध, जीव घातक आजीविकाका त्याग करके अपने शस्त्र किसीको नहीं देना चाहिये ।

अष्टमी और चतुर्दशीके दिवस स्त्रीके दुर्घट स्तनोंका स्पर्श न करना किंतु उपवास पूर्वक एकांत स्थानमें वास करना अथवा एक भुक्त और नीरस आहार करना चाहिये ।

हे कोटरक्षक ! प्रत्येक पर्वके दिवसमें उपवास अथवा कांजीका आहार करना तथा धर्मध्यान पूर्वक श्री जिन मन्दिर में तिष्ठ कर पापका अंत करना ।

इसके सिवाय पात्र दान देना अर्थात् शम, दम, व्रत, नियम आदिका पालने वाला संयमी मुनि उत्तम पात्र, सम्यग्दृष्टि श्रावक मध्यम पात्र, और अव्रत सम्यग्दृष्टि, जघन्य पात्र, एवं तीन प्रकार पात्रके अर्थ औषध, शास्त्र, अभय और आहार एवं चार प्रकार दान सत्कार पूर्वक देना ।

इस प्रकार दान करनेसे पुंण्यकी संतान उत्तरोत्तर वृद्धिगत होगी । तदन्तर पंच कल्याणक प्रतिष्ठादि कर्मोंमें द्रव्यका व्यय करना और सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप रत्नत्रयका निरन्तर आराधना करना, व त्रिकाल सामायिक करना ।

उस समय जिन वन्दनाके पश्चात् राग द्वेषका वर्जन कर साम्य भावका अवलम्बन करना उपरोक्त सामायिक कर्म, निज गृहके एकान्त स्थानमें अथवा जिन मन्दिरमें एकान्त स्थान प्रति या जिन प्रतिमाके अग्रभागमें कायोत्सर्ग तिष्ठ कर करना योग्य है । कुगुरु कुदेव और कुधर्मसे पराङ्मुख होकर अन्त समय सल्लेखना मरण करना ।

मुनिराज के कथित वचन श्रवण कर श्रेष्ठ भट्ट (कोटपाल) कहने लगा—हे मुनिश्रेष्ठ ! हमारे कुलमें जीवोंका मारना प्रथम है सो इस जीव घात विना अन्य जो धर्म सम्बन्धी क्रम वर्णन किया वह मैंने ग्रहण किया ।

इस प्रकार कहकर कोटपाल और भी कहने लगा—

कोटपाल—हे मुनिपुंगव ! मैं नगरका श्रेष्ठ कोटपाल हूँ सो जीवोंका वध करना, मारना और कारागृहमें बन्द करना यह मेरा प्रथम ही कर्तव्य कर्म है इस कारण इस व्रतका व्रती मैं नहीं हो सकता ।

हे आचार्यवर्य ! हमारे पितामह, प्रपितामह और पिताके समयसे जीव वधके क्रमका संचार हो रहा है सो क्रमसे मैं बद्ध हूं । इस कारण इस व्रतको ग्रहण नहीं कर सकता किन्तु अन्य समस्त धर्मका ग्रहण करता हूँ ।

इस प्रकार कोटपालका कहा वाक्य सुन श्रीमुनिने कहा—

श्रीमुनि—हे कोटपाल ! बहुत कहने कर क्या ? यह देख तेरे निकट जो कुर्कुट युगल तिष्ठा हुआ है इसने जिस प्रकार संसार भ्रमण कर महान् कष्टोंको सहन किया है उसी प्रकार तू भी करेगा ।

कोटपाल—भो दिगम्बरेश ! इस कुकुंट युगलके भव-भ्रमण की कहानी आप वर्णन करें जिससे श्रवण से मुझे सम्बोधन हो ।

इस प्रकार कोटपालकी प्रार्थना करने पर श्री मुनि कुकुंट युगलके संसार-भ्रमणका कथन करने लगे ।

महाराज यशोधर और उनकी माता चन्द्रमतीने अत्यन्त कुसंगतिके योगसे कर्कश भाव उत्पन्न किये जिससे कृत्रिम कुर्कुट मारकर कुलदेवीके अर्थ बलिदान किया ।

हे कोटपाल ! मिथ्यात्वके योगसे वे दोनों ही निज धन और शरीरका विनाश कर महाभयभीत होते क्षुधातुर मयूर और

श्वान हुए। पुनः मरकर मत्स और शंशुमार (सूंस). हुए। वहांसे प्राण त्याग बकरा बकरी हुए, तदन्तर बकरा और महिष हुए। वहां प्राण त्याग नवीन पुच्छके सेहरा सहित कुर्कट युगल हुआ तेरे निकट तिष्ठा हुआ है।

इस प्रकार श्री मुनिद्वारा कुर्कुट युगलके भव-भ्रमणका संक्षेप सुनकर कोटपालने समस्त कुल धर्मका त्याग कर श्रावक व्रतका ग्रहण किया। पश्चात् मन, वचन, कायसे श्री मुनिको भाव सहित नमस्कार किया।

श्री क्षुल्लक महाराज मारिदत्त नृपसे कहने लगे—राजन्! जिस समय श्रीमुनिने हम दोनों कुर्कुटों के भव भ्रमणकी कहानी वर्णन की उसे श्रवणकर हर्षपूर्वक जीवदयाका प्रतिपालन कर अपूर्व लाभके योगसे अत्यन्त सन्तोषको प्राप्त हुए।

पश्चात् उत्कंठापूर्वक जैसे ही मधुर शब्द का उच्चारण किया तत्काल उसे श्रवण कर मैथुन कर्ममें उपस्थित मेरे पुत्र यशोमतिने धनुषमें वाण लगाकर निज पत्नी कुसुमावलीसे कहा—प्रिये! इस समय तुझे शब्दवेधी धनुर्वेद दिखाता हूं।

इस प्रकार कह राजाने वाण छोड़ दिया जिससे पिंजरेमें स्थित हम दोनों कुर्कटोंका शरीर छिन्न होनेसे हम दोनों ही इश प्रकार प्राणोंसे मुक्त हुए अर्थात् मर गये।

राजन्! हम दोनों ही मुर्ग उस तीक्ष्ण वाणद्वारा मरण प्राप्त होकर जन्मांतरके पुत्र यशोमतिकी कुसुमावलीके रुधिर और लटों कर व्याप्त गर्भाशयमें उत्पन्न हुए।

नृपवर! पापोंकी परम्परासे मैं निज पुत्रका पुत्र और मेरी माता चन्द्रमती निज पोताकी पुत्री हुई, इस प्रकार नव मास व्यतीत हुए। पश्चात् मेरा जीव तो अभयरुचिकुमार नामका पुत्र और मेरी माताका जीव अभयमती नामकी पुत्री हुई।

पृथ्वीनाथ! अब हम दोनों भाई वहिन कामकी शक्ति

समान रूप लावण्य युक्त होते चन्द्रकला सदृश वृद्धिगत होने लगे। हम दोनों ही कलागुणकर प्रवीण निज सौजन्यता और विनयगुणसे समस्त कुटुम्बीजनोंका मन हर्षित करते आनन्दपूर्वक काल व्यतीत करने लगे।

कालांतरमें हमारे पिताने युवराजपदका पट्ट हमारे मस्तक पर आरोहण कर आप मृगया (शिकार) अर्थ पाँचसौ कुत्तों और अनेक शस्त्रधारी सुभटोंको साथ लेकर महावनकी ओर गमन किया।

सो मार्गमें रमणीक उपवनमें उग्रोग्र तपकी तापसे क्षीण शरीर और कामदेवके विदारक एक तरुके तल प्रासुक शिलापर सुदत्त नामक भट्टारक उस समय देखे।

यह राजा यशोमति चिंतवन करने लगा कि सिद्धिका विनाशक अपशकुन साधु कहाँसे आया? ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनोंसे बाह्य यह मुझ द्वारा बिना मारे कहां जायगा?

ऐसा विचार कर उस जन्मान्तरके पुत्र और वर्तमानके पिता यशोमतिने मुनिके मारने को बिजलीके पुँज और पवनवेग तुल्य तीक्ष्ण नखों युक्त पाँचसौ कुत्ते छोड़े।

वे श्वान श्वानपालकोंने छोड़े ऐसे ज्ञात होते थे मानों मृगादि जीवोंके मारनेके शस्त्र ही हैं। उन श्वानोंकी वक्र पुच्छ पापिष्ठों के चित्त समान, जिह्वा हिंसारूप वृक्षके पल्लव तुल्य और नख हिंसारूप तरुके अंकुर सदृश दृष्टिगत होते थे।

उस पाप पुंजवत् श्वान समूहके छोड़ने में शिकारीजन किंचित् भी दया नहीं करते।

वे हिरणोंके विदारक भूँकते, उछलते कुत्ते श्री मुनिराजके तपकी सामर्थ्यसे मुनिके पास जाकर उनके चरणोंको नमस्कार कर विनयपूर्वक चरणोंके निकट बैठ गये।

जब कुत्तोंका छोड़ना निरर्थक हुआ तव राजा यशोमति स्वय

खड्गलेकरश्रीमुनिके मारनेको उद्यत हुआ। उस समय कल्याण-मित्र नामका राजश्रेष्ठी जोकि मुनिराजके निकट तिष्ठा हुआ था राजा यशोमतिऔरश्रीमुनिराजके मध्य होकर कहने लगा—

हाथ जोड़कर सेठने राजासे कहा—राजा मनुष्योंकी पीड़ाका हरनेवाला होता है सो यदि राजा ही व्रतयुक्त यतिवरको मारेगा तो विंध्याचल पर्वतपर वास करनेवाले भीलोंकी क्या दशा होगी ?

अर्थात् विंध्याचल पर्वतके निवासी भिल्लजन मुनि हत्यामें प्रवर्तते हैं किंतु राजा तो मुनिजनोंकी रक्षा ही करता है और यदि राजा ही मुनि हत्या करेगा तो भिल्लजन क्या करेंगे ?

इस कारण हे प्रजापालक ! मुनिराजकी हत्यासे निवृत्त होकर पवन, वरुण, वैश्रवण कर स्तुति करने योग्य और विषयों से विरक्त श्री मुनिराजको नमस्कार करना ही योग्य है।

ऐसा सुन क्रोधयुक्त होकर राजा यशोमतिने कहा--

यशोमति—कल्याणमित्र ! जोकि नग्न है, स्नान रहित है, वह अमंगल और कार्यका विनाशक है, उसे विना मारे कैसे छोड़ूं ? किन्तु मुझे यमराजकी आज्ञाका पालन करना ही अभीष्ट है और तुम कहते हो कि नमस्कार करो, सो मैं प्रणाम कैसे करूं ? क्योंकि जो इतने योग्य है उसका विनय करना वेदमार्गियों द्वारा नीति विरुद्ध है इस कारण इसे अवश्य मारूंगा।

कल्याणमित्र—(हताश-हृदय होकर) श्रीमान् ! यदि नग्न ही अमंगल है तो नग्न और धूलिसे धूसरित शरीर महादेव तथा कतरनी हाथमें लिये नग्न मूर्ति क्षेत्रपाल भी हैं।

इसके सिवाय अरुण चरणों में घूंघुरा धारण किए लोहका कड़ा हाथ में पहिने गर्दभ पर सवार मुँडोंकी माला धारण किये अस्थियोंके आभूषण पहिने मनुष्योंके माँसकी भक्षण करने वाली, हाथ में कपाल और श्मशानमें वास करनेवाली नग्न-

शरीरा योगिनी किस प्रकार मंगल स्वरूप हो सकती है क्योंकि जो जीवदयाका बाधक और हिंसाका स्थान हो वह मंगल नहीं होता।

नृपवर ! जो जीव दयाका प्रतिपालक, संयमका धारक साधु, भट्टारक नग्न दिगम्बर है वह अमंगल नहीं, किंतु सच्चा मंगल वही है क्योंकि जो सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र रूप आभूषणोंके धारक और नग्न, भावनायुक्त है उनको दूषण लगाना पापका उपार्जन करना है।

पृथ्वीपति ! आपने स्नान रहित मुनिकी निंदारूप वचन कहा सो यज्ञ कर्ममें स्नान कहां ? जैसे क्षार द्रव्यसे वस्त्र मलरहित होजाता है उस प्रकार मलभृत घट सदृश यह शरीर स्नान करनेसे शुद्ध नहीं होता।

क्योंकि स्नान करनेसे सुगंधादि लेपन और पुष्पमालादि धारण करनेसे देह पवित्र और निर्मल नहीं होता किंतु शरीरके संयोगसे सुगंधादि विलेपन अपवित्र होजाता है।

यह शरीर क्रोध, मान, माया, लोभ और मोह आदिसे पूर्ण है सो यद्यपि सप्तधातु उपधातुमय अपवित्र है, तथापि सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तपसे पवित्र हो जाता है।

हे राजन् ! दुर्द्धर तपके धारक ऋषीश्वरोंका सर्वांग पवित्र है क्योंकि उनकी लारका रस और शरीरका मल भी रोगातुरोंके रोगको नाश करता है।

नृपश्रेष्ठ ! जिन ऋषीश्वरोंके चरणोंकी रज ही पापरूप पंकका नाश करती है इस कारण उन ऋषीश्वरोंको ईर्षारहित प्रणाम करना ही सर्वथा योग्य है।

क्योंकि जिन मुनिश्वरोंकी आमर्षोषधि श्रेष्ठखिल्लौषधि विड़ौषधि अक्षीणमानसर्द्धि और सर्वोषर्द्धिके प्रभावसे श्रीमुनिके अंगको सर्प नहीं डसते तथा सिंह शार्दूल भिल्ल पुलिंद आदि

दुष्ट जीव भी विनयपूर्वक प्रणाम करते हैं,

वे मुनिपुंगव यदि रोषयुक्त होवें तो इन्द्रका भी स्वर्गसे पतन करें और मेरु सहित तीन लोकको उलट देवें। तीन लोक में ऐसा कौनसा बलवान तेजस्वी जीव है जो ऋद्धियुक्त श्रीमुनि के सन्मुख तिष्ठ सके।

प्रजारक्षक! वे महाशक्तिके धारक श्रीमुनि प्रणाम करने-वाले सज्जनसे प्रसन्न नहीं होते और जो निंदा करता है उसके प्रति रोष नहीं करते। किन्तु शत्रु मित्र दोनोंसे सम भाव रखते हैं। वे महामुनि शत्रु, मित्र, तृण, कांचन, गृह, श्मशान और धूलि तथा रत्नमें समभाव हैं, बड़े खेदकी बात है कि ऐसे शांतचित्त तपोनिधि महामुनिके ऊपर खड्ग उठाना कहां तक योग्य है?

वे महामुनिवर समस्त परिग्रह रहित समस्त जीवोंके उप-कारी हैं जिनका प्रभाव श्रावकोंके सिवाय देवेन्द्रों पर भी पड़ता है। नृपेश! आप भी प्रत्यक्ष देख रहे हैं कि महाक्रूर स्वभावी, हिंसक, पांचसौ श्वान आपने श्रीमुनिके मारणार्थ छोड़े, परंतु श्रीमुनिराजके प्रभावसे वे शांतचित्त होकर विनयवान् शिष्यकी भांति मुनिराजके पादमूलमें पूंछ हलाते हुए तिष्ठे हैं।

राजन्! अज्ञान अवस्था और क्रोधसे विमुक्त होकर श्रीसाधुके चरणोंकी वन्दना करो इत्यादि कहकर कल्याणमित्र सेठने और भी श्रीमुनिका परिचय दिया।

गुणोंके समूहकी निधि कलिंग देशका राजा नामकर सुदत्त कुसुमाल चोरके बन्धन और वधसे उदास होकर परम यति हुए हैं!

जिस समय कुसुमाल चोरको बन्धनमें डालकर कोटपालने राजा सुदत्तके सन्मुख उपस्थित किया, उस समय राजकर्मचारी-गण श्रेष्ठ ब्राह्मणोंने नृपतिसे विज्ञप्ति की कि स्वामिन्! इस

अपराधी चोरको हस्त पाद और मस्तक छेदनेका दण्ड दिया जाय ऐसा सुन राजा को संसार देह भोगसे वैराग्य उत्पन्न हुआ।

ये सुदत्ताचार्य महाराज, जीवित और धनकी आशारूप पाशको छेद तथा जीर्ण तृणवत् राज्यको छोड़ परम दिगम्बर होकर गिरि और वनके वासी हुए हैं, ऐसा कहकर कल्याणमित्र सेठने कहा—अहो राजन्! यशोमते! अब रोषमुक्त होकर हाथ जोड़ श्रीमुनि महाराजके चरण कमलोंको प्रणाम करो।

इस प्रकार कल्याणमित्रके कल्याणरूप अमृततुल्य वचन श्रवण कर समस्त जीवोंमें मैत्री भाव धारण कर श्रीमुनिराजकी महाभक्ति पूर्वक महाराज यशोमतिने हाथ जोड़ नमस्कार किया।

तब श्री आचार्यवर्यने धर्मवृद्धि हो, ऐसा वात्सल्यपूर्वक अमृत तुल्य वचन कहा।

उसे श्रवणकर यशोमति नृप हृदयमें चिन्तवन करने लगे कि ये मुनि महाराज सुमेरु समान अचल, पृथ्वी समान क्षमावान, समुद्र समान गम्भीर, दिनकर समान प्रतापी व चन्द्रमा समान सौम्य हैं।

ये श्रीमुनिपुंगव संयमके पुञ्ज; तपकी शक्ति महात्म्यके सार, जिनवरकी भक्तिके निवास, दयादेवीकी क्रीड़ाके पर्वत, क्षमारूप कमलिनीके सरोवर और साधुवृत्तिके भण्डार, जीवोंकी प्रतिपालना करते तिष्ठे हुए हैं। मुझ पापी कृतघ्नी दुष्टात्माने ऐसे महात्माके मारनेका संकल्प किया सो अत्यन्त अयोग्य कार्य किया।

राजा यशोमति विचारने लगे कि इस दुष्ट चेष्टाका प्रायश्चित अपना मस्तक छेदकर करता हूं, इसप्रकार नृपतिके हृदयस्थ आशयको जानकर श्री मुनिमहाराजने श्रवणोंको सुखदायक वचन कहा।

श्रीमुनि—नरनाथ! यह क्या अशोभन चिन्तवन करता

है ? क्या भ्रमर कुल सदृश नीलकेशों सहित मस्तकके छेदनेसे ही प्रायश्चित होता है ? नहीं नहीं, किन्तु अपनी निन्दा और गर्हासे भी तो प्रायश्चित होता है, ऐसा सुन राजाने कहा—

यशोमति—श्रीमुने ! मेरे हृदयकी गुप्तवार्ता आपने किस प्रकार जानी, इस प्रकार राजाके वचन सुनकर निकटस्थ कल्याणमित्र सेठने कहा—

कल्याणमित्र—राजन् ! आपके हृदयकी वार्ताको श्री मुनि-ने जान लिया सो इसमें क्या आश्चर्य है। श्री केवली भगवान् तो लोका-लोक सम्बन्धी त्रिकालवर्त्ती समस्त चराचर वस्तुओंको एक ही कालमें जान लेते हैं। इस प्रकार सेठके वचन सुनकर राजाने श्री मुनिसे कहा—

नृपति—[हाथ जोड़कर] श्री ऋषिवर्य ! मैं एक वार्ता पूछता हूं उसे आप कृपाकर वर्णन करें।

श्रीमुनि—नृपवर ! जो तेरी इच्छा हो वह पूछ, मैं जो कुछ जानता हूं उसे कहूंगा।

यशोमति—[मस्तक नवाकर] श्री मुनिपुङ्गव ! यह कहिये कि पिता यशोधर महाराज निज माता [मेरा पितामही] सहित मृत्यु प्राप्त होकर कहां उत्पन्न हुए हैं ?

श्रीमुनि—नरनाथ ! तुम्हारे पितामह महाराज यशोर्घ पलित केश देख जिस समय वैराग्य भूषित होकर तुम्हारे पिता यशोधरको राज्यलक्ष्मी समर्पण कर आप मदनका मद भंजन करते तपश्चरणके योगसे स्वर्ग प्राप्त हुए, उस समय पश्चात् यशोधर महाराज राज्यासन पर तिष्ठते न्यायपूर्वक प्रजापालन करने लगे।

राजन् ! एक दिवस तुम्हारी कुलदेवीके अर्थ यशोधर और चन्द्रमतीने चूर्ण विनिर्मित कुक्कुटका बलिदान किया, पश्चात् विषमिश्रित भोजन कर मरण प्राप्त होकर माता पुत्र दोनों ही

श्वान और मयूर हुए।

वे दोनों तुम्हारे ही गृहमें वृद्धि प्राप्त होकर श्वान द्वारा मयूरका मरण हुआ देख तुमने कुत्तेको मारा।

पश्चात् तेरे पिता यशोधरका जीव मयूरकी पर्याय छोड़ न्योला और तेरी पितामही [आजी] का जीव कुत्तेकी योनिसे भयानक सर्प हुआ। तदनंतर दोनों ही परस्पर युद्ध कर प्रथम न्योलाने सर्पको मारा पश्चात् न्योला भी मरणको प्राप्त हुआ।

नृपवर! तदनंतर तेरी आजीका जीव सर्पके शरीरको त्याग सिप्रानदीमें शंशुमार (सूंसि) हुआ सो तेरी कुब्जिका दासीके मारनेके अपराधसे तुमने मरवाया, और तुम्हारे पिता-का जीव न्योलाकी पर्य्यायसे उसी सिप्रामें मत्स हुआ वह शंशु-मार (सूंसि) की खोज करते समय धीवरोंने पकड़ा पश्चात् वेदाभ्यासी भट्ट ब्राह्मणोंके अर्थ पक कर दिया गया।

नृपश्रेष्ठ! इस प्रकार शंशुमार और मत्स एवं दोनों मरण-को प्राप्त हुए तिनमें तेरी माताका जीव शंशुमार (सूंसि) की पर्यायसे बनमें बकरी हुई और तेरे पिताका मत्सकीपर्यायसे उसी बकरीके उदरसे बकरा हुआ।

राजन्! संसारकी विचित्रता अवलोकन करो कि वह बकरा अपनी माता बकरीके साथ सम्भोग कर यूथके स्वामी बकराके श्रृंगसे मरणको प्राप्त होकर अपने ही वीर्यसे अपनी माताके उदरमें पुनः बकरा ही हुआ।

राजेश्वर! एक दिन तू शिकारके अर्थ वनमें गया था। वहां कोई मृग तुझे न मिला इस कारण उधरसे लौटकर आ रहा था सो मार्गमें बकरी और यूथपति बकराका मैथुन देख क्रोधित होकर तूने भालासे मारा सो बकरीके उदरसे निकला बकरा तूने अजापालकोंके हस्तगत किया सो उन्होंने उस बकरा का पालन-पोषण किया।

वह बकरी मरकर महा भयानक महिष हुआ, उसने तेरी सवारीका घोड़ा मारा, इससे तूने जीवित ही दग्ध किया। पश्चात् पक्व हो जानेपर उसका मांस समस्त ब्राह्मणोंको भक्षणार्थ दिया।

उस समय तेरी माता अमृतमती (जोकि कुष्टकर व्याकुल थी) उसे महिषका माँस न रुचा इस कारण रसोईदारोंने उसी बकरेके पगका खण्डनकर पकाकर तेरी माताको तृप्त किया पश्चात् बकराको मारकर पितरोंके श्राद्धके अर्थ ब्राह्मणोंको दिया।

नृप ! तू स्मरणकर कि तूने वह बकरा और महिष खंड-खंड कर श्राद्ध पक्षमें ब्राह्मणोंके भक्षणार्थ दिया था या नहीं ?

वे दोनों बकरा और महिष मरण प्राप्त होकर कुर्कुटका युगल हुआ सो नन्दन वनमें उनका शब्द श्रवण कर बाणसे वेधित किये सो मरकर तेरी कुसुमावली रानीके गर्भमें उत्पन्न होकर अभयमती नामकी कन्या और अभयरुचिकुमार नामका पुत्र हुआ।

राजन् ! इस प्रकार तेरे पिता यशोधर और तेरी आजी चन्द्रमती एवं दोनों ही मिथ्यात्वके योगसे ससार भ्रमण कर पुण्यके योगसे तेरे पुत्र पुत्री होकर तेरे गृहमें तिष्ठे हुए हैं।

तेरी माता अमृतादेवी निशाचारी समान मांसका भक्षण करनेवाली, गुण समूहका महा ऋषीश्वरोंको निंदा करनेवाली, कुगरु, कुदेव, कुधर्मके चरणोंकी वन्दना करनेवाली, जीवित मत्सोंको तप्त घृतमें पक्वकर ब्राह्मणोंको भक्षण कराकर, पश्चात् आप खाकर मदिरा पान कर जारके साथ रमण कर निज पति और सासुको विष देकर मारा जिससे महा कष्टसे पीड़ित होकर आर्त्त रौद्र ध्यानके योगसे मरणको प्राप्त हो छठवें नरकमें महा दुःखोंको सहनेवाला नारकी हुआ।

जो मूर्ख पुरुष श्री वृषभदेव कथित धर्मका अवगाहन नहीं करता किन्तु दुष्कर्म करता है वह नरकके विलमें पड़ता है और यह तो सत्य ही है कि श्री पुष्पदन्त जिनवरके वचनको मूर्ख लोक आचरण नहीं करते।

इति महामान्य नन्हकर्णाभरण पुष्पदन्त महाकविविरचित श्री यशोधरचरित्र महाकाव्यमें यशोधर चन्द्रमती मनुज जन्म लाभवर्णन नामक तृतीय परिच्छेद समाप्त हुआ ॥ ३॥

चतुर्थ परिच्छेद

यशोमति, कल्याणमित्र, मारुदत्त व अभयरुचि स्वर्गगमन

अश्रान्तदानपरितोषितवन्दिवृन्दो,
दारिद्रय्यरौद्रकरिकुम्भविभेददक्षः ।
श्रीपुष्पदन्तकविकाव्यरसाभितृप्तः,
श्रीमान् सदा जगति नन्दतु नन्न नामा ॥१॥

जो निरन्तर दानकर बंदीजनोंको सन्तोषित करता है, जो दारिद्रय्यरूप भयानक हस्तीके कुंभस्थल विदारनेमें प्रवीण है जो श्री पुष्पदंत नामक महाकविके काव्यके रससे तृप्त हुआ है और जो लक्ष्मीवान् है वह नन्न नामका महामंत्री जगत्में सतत, जयवंत प्रवर्त्तो ।

श्री अभयरुचिकुमार नामक क्षुल्लक महाराज मारिदत्त नृपसे कहने लगे—

राजन् ! श्री सुदत्ताचार्यके मुखसे मेरे भव सम्वन्धी चारित्र को सुनकर यशोमति महाराजका शोकपूर्ण हृदय कंपमान हुआ तथा हृदयस्थ शोक समस्त शरीरमें व्याप्त होकर पश्चात् नयन मार्गसे अश्रुधाराके भिष्कर वाहर निकलने लगे ।

नृपवर ! उस समय यशोमति महाराजने श्री मुनिके चरण-कमलोंमें पड़कर इस प्रकार कहा—स्वामिन ! जिसने मेरे पिता का घात किया है वह अवश्य निर्दयी और पापी है ।

यशोमति महाराज और भी कहने लगे—

हे दयानिधे ! हे करुणासागर ! मैं शीघ्र ही पापशत्रुका संहार कर पुनः किसी भी जीव मात्रसे वैर नहीं करूंगा, क्योंकि हमारे पिता यशोधर महाराजऔर पितामही चंद्रमतीने एकबार

ही पिष्ट-निर्मित कुर्कुटका कुलदेवीके सम्मुख बलिदान किया, जिससे संसार भ्रमण कर असंख्य कष्टोंके भाजन बने और मुझ दुष्ट पापिष्ट द्वारा अनेक वार हने गए।

श्री मुने ! मैं ऐसा मूर्ख होगया कि मुझे इस बातका किंचित् भी ज्ञान नहीं रहा कि अपने पूज्य पिता और पितामहीका वध किस प्रकार कराता हूं।

सत्य ही है जिह्वालम्पटी मांसभक्षी ब्राह्मणोंके मिथ्या उपदेशसे असंख्य जनसमूह नरक निगोदके पात्र बन गये।

स्वामिन् ! जिस धर्म रहित किन्तु अधर्म युक्त श्राद्ध लक्षण और यज्ञ धर्म प्ररूपक शासनमें सर्वज्ञ नहीं उस सम्प्रदायमें जीव-दयारूप विवेक किस प्रकार हो सकता है ? जिस धर्ममें वनचर नभचर और जलचर जीवोंका वध किया और धर्म कहकर पुकारा उस धर्ममें दयाका लेश भी नहीं, किंतु अज्ञानतासे निज कुटुंवियोंका भी वध किया जाता है।

नाथ ! मैंने भी वेदाभ्यासी विप्रोंके उपदेशसे अनेक जीवों का वध किया, इतना भी नहीं अपने पिता और पितामहीके जीवका भी अनेक वार घात किया, उसे देखनेको कौन समर्थ है ?

इस प्रकार यशोमति महाराजने श्री मुनिके सन्मुख पश्चाताप रूप वचन कहकर पश्चात् कल्याणमित्र सेठसे कहने लगे:—

वणिग्वर श्रेष्ठिन ! तुमने हमारा बड़ा भारी उपकार किया। आपके संसर्गसे मुनिहत्यासे मुक्त होकर संसार-भ्रमणसे भी रहित हो जाऊँगा। इस कारण समस्त परिग्रहका त्यागकर पाणिपात्र आहार करूँगा।

सिंहासन, छत्र, श्रेष्ठवादित्र, अनेक प्रकार राज्य चिह्न (ध्वजा पताकादि), चमर, रथ, श्रेष्ठ मातंग (हस्ती), चपल तुरंग और अञ्जली जोड़नेवाली भटोंकी सेना, इत्यादि समस्त राज्य सुखका त्याग किया, किन्तु अभयरुचिकुमार मेरा पुत्र

उसका अनुभव करो।

श्रेष्ठिवर! आप श्रीमुनिसे मेरी तरफसे प्रार्थना करो कि मुझपर प्रसन्नचित्त होकर जिनदीक्षा देवें।

प्रिय मित्र कल्याणमित्र! मैं तो जिनदीक्षा ग्रहण करता हूं और आप नगरमें जाकर समस्त नगर राजकर्मचारीगण और अन्तःपुर निवासियोंको सूचित करो कि यशोमति नृपने जिन-दीक्षा ग्रहणकी। तथा अभयरुचिकुमारको राज्य दिया, और केलिकंद सदृश सुकुमारशरीरा, हरिणी नयना अभयमती-कुमारीका अहिछत्र नगरके राजाके अरिदमन नामक पुत्रके साथ पाणिग्रहण करो।

इह प्रकार महाराजने जिस समय उपरोक्त वार्त्ता कल्याण-मित्रसे कही जो तत्काल बिजलीकी भांति समस्त नगरमें इस प्रकार फैल गई, कि महाराजको बहुत उत्तम प्रकार मृगया (शिकार) का लाभ हुआ, अर्थात् श्रीमुनिके दर्शनसे धर्मका लाभ हुआ।

उपरोक्त समस्त रहस्य नगरव्यापी होकर अन्तःपुरमें भी प्रवेश कर गया, उस समय रनवासमें खलबली पड़गई और परस्पर इस प्रकार वार्त्ता होने लगी—

एक रानी—(दूसरीसे) प्रिय भगिनी! अपने भर्तारने तो हम तुम सबसे स्नेह छोड़ दिया किंतु मुनिव्रत ग्रहण कर लिया। अब ललाटमें कस्तूरीकी रचनासे क्या प्रयोजन?

अन्य रानी—अरी मुग्धे! यह विचित्र चित्राम क्यों लिखती है, स्वामी तो काम चरित्रसे विरक्त हो गया।

अन्य रानी—(अन्यसे) प्रिय सखि! वस्त्राभरणादि मण्डनसे क्या प्रयोजन रहा, प्राणवल्लभ तो तपोमण्डनमें रंजितचित्त हुआ है।

अन्य—अरी बावली! अब क्या बाजे बजाती है! विधाता

तो और ही राग आलापने लगा, अर्थात् प्राणनाथको समस्त, स्त्रियोंसे विरक्त कर मोक्षवनितामें आसक्तचित्त कर दिया।

एक रानी—शोभने! अब क्या केश संस्कार करती है? पति तो निज केशोंके उपाड़नेमें दत्तचित्त होकर बनवासी हुआ है।

इत्यादि वार्त्ता करतीं योषितागण हाहाकारका शब्द करने लगीं, वहां कोई स्त्री निज कपोलोंमें विचित्र रचना करती थीं वह भरतारकी वार्ता श्रवण कर निज कपोलोंमें हाथ रख इस प्रकार हाहाकार करने लगी—हा! विधाता! तूने यह क्या विपरीत कार्य किया?

कोई महारानी मुक्तामणियोंको गुण (सूत) में पिरोती थी वह निज प्राणवल्लभकी वार्त्ता सुनकर निज मनरूप मुक्ताको मुनिके गुणोंमें लगाने लगी।

कोई स्त्री निज भरतारको दीक्षाके सम्मुख होनेकी सूचना श्रवणकर एकदम ऐसी शिथिलशरोरा होगई कि जिसकी कंचुकी शिथिल होकर गिर पड़ी।

कोई स्त्री निज भरतारके विरहमें व्याकुलचिता कंपितगात्रा होती होती प्रस्वेदबिंदुसे व्याप्त होने लगी।

कोई रमणी निजस्वामीकी वार्त्ता श्रवणकर दुःखसे व्याकुल होती आश्रुधारासे मुख प्रक्षालती निजमणियोंके पगनूपुरोंकी झनकार करतीं गृहांगणमें भ्रमण करतीं विलाप करने लगीं।

पश्चात् समस्त योषागण बिलाप करती मस्तक और उर-स्थल कूटती, नन्दन वनमें जहां श्रीमुनि महाराजके निकट यशोमति महाराज जिनदीक्षाको उद्यमी थे, वहां पहुंचीं।

नखोंकी प्रभासे मणियोंकी दीप्तिको तिरस्कार करती और चलायमान हारोंकी मणियों कर युक्य रमणियोंने महाराज यशोमतिसे इस प्रकार प्रार्थना की—

स्वामिन्; दैवने लक्ष्मी सुखके घातक तपश्चरण द्वारा आपको ठग लिया।

प्राणवल्लभ ! आप स्वर्ग सुखके अर्थ तपश्चरण करते हो सो हम समस्त स्त्रियां अप्सरा हैं, सुन्दर मनोहर महल विमान तुल्य हैं और प्रिय संगम है वही सुख है।

इस स्थलमें आपको स्वर्ग-सुखसे किस वातकी न्यूनता है जो आप वर्त्तमान सुखका तिरस्कार कर आगामी सुखकी वाञ्छा कर तपश्चरणके कष्टको सहते हो ?

इसप्रकार धूर्त्ता स्त्रियोंने अनेक प्रकार स्नेहरूप पाशसे यशोमतिको रोकना चाहा, परन्तु राजाके चित्तमें एक भी न आया किन्तु जिनदीक्षामें दत्तचित्त होकर तिष्ठता हुआ।

अभयरुचिकुमार क्षुल्लक ! मारिदत्त नृपतिसे और भी कहने लगे—राजन् ! जिस समय मुझे और मेरी भगिनी अभयमतीको समस्त वृत्तांतकी सूचना मिली, तत्काल हम दोनों ही अनेक वादित्रोंके समूहसे व्याप्त मदोन्मत्त गजराजोंपर चढ़े तथा उच्चस्वर करते पवन तुल्य द्रुतगामी अश्वारूढ़ और नग्न खड्ग धारण किये योद्धाओंकर वेष्टित तथा मोनरथ समान रथोंमें आरूढ़ सुभटों और पयादों कर युक्त राज-कर्मचारियोंकर सहित चमर छत्रादि राज्य विभूति कर पूर्ण पालकीमें आरोहण कर नन्दन वनमें जहां श्रीमुनि विराजमान थे, वहां पहुंचे।

हम दोनों भाई वहिनोंने यशोधर नृपको समस्त राज्य परिकर ध्वजा और चमरसे रहित तथा चारित्र रत्नके अर्थ हाथ फैलाते पृथ्वीतलपर तिष्ठे सामान्य मनुष्यकी भांति देखा।

नृपवर ! उस समय हम भी वहांपर वैठ गये। तत्पश्चात् श्री मुनिराजके मुख कमलसे अपने भवांतरकी कथाको श्रवण कर जैसा ही उसका स्मरण हुआ कि तत्काल हम दोनों मूर्छा युक्त होकर पृथ्वीतलपर पड़े। उस समय हमारी माता कुसुमा-

वली हमारे स्नेहमें मुग्ध होकर विलाप करने लगी ।

तत्काल दासियोंने शीतलोपचार कर हम दोनोंको सचेत किया तो जैसे ही हमारी मूर्छा जागी कि हम दोनों ही श्री मुनिराजके चरणोंको नमस्कार कर तिष्ठे ।

नृपवर ! उस समय मेरी माता कुसुमावली मुझे मुनि चरणोंके निकट तिष्ठा देख मेरा हाथ पकड़ अपनी गोदमें बैठा कर मुख चूमती कहने लगी—

प्रिय पुत्र ! तू क्यों उदासचित्त होगया ? तू तो अभी बालक है, तू इन बातोंको क्या समझता है ? उठ, घरको चल, निजका दिया राज्य शासन कर, इत्यादि बचन करती अपना उरस्थल कूटती विलाप करने लगी—

पश्चात् विह्लल चित्त होकर मूर्छा खाकर पृथ्वीमें पड़ी । उस समय अंतःपुरकी समस्त रानियोंने अनेक प्रकार शीतोपचार कर समझाया और इस प्रकार प्रिय वाक्य कहने लगी—

एक रानी—प्रिय भगिनी ! उठ-उठ प्रिय वचन बोल, नाथ के कहे हुए वचनोंको धारण कर । तूने मेरे दुर्भाग्यका तिरस्कार कर सौभाग्य दिया सो अब क्यों विलाप करती है ?

द्वि० रानी—भो सखि ! क्या सोच करती है, तूने मुझे वस्त्राभूषणोंसे भूषित कर भर्त्तारके पास भेजी थी सो अब भर्त्तार तपश्चरणमें तत्पर हैं सो यदि तू ही ऐसा करेगी तो मेरी खबर कौन लेगा ?

अन्य रानी—प्रिय भगिनी ! अब क्या सोच करती है ? हे कल्याण रूपी ! करुणारूपी व्रत ग्रहणके अर्थ जाते हुए निज भर्त्तारका अनुकरण कर ।

तदन्नतर मूर्छाको त्याग कर, पड़ता जलका समूह नेत्रोंसे जिसके ऐसी देवीका मुख शीतकर मुर्झाये शतपत्र कमलतुल्य होगया ।

उस समय कुसुमावली महारानी निज हृदयमें चिंतवन करने लगी—ये दोनों बालक श्री मुनिके बचनोंको श्रवण कर मूर्छा प्राप्त क्यों कर हुए ?

अभयरुचिकुमार क्षुल्लक मारिदत्त नृपसे कहने लगे—राजन्! उस समय हमारी माता कुसुमावली उपरोक्त चिंतवन कर हम दोनों (भ्रात भगिनी) को अपनी गोदमें बैठाकर हमारे मुख पर अपना हाथ फेरकर प्रिय वचन कहने लगी।

कुसुमावली—प्रिय पुत्र ! श्रीमुनि तो निज स्वच्छ ज्ञान द्वारा जगत्के समस्त चराचर पदार्थोंको जानते हैं, तुमने क्या जाना और देखा जो मूर्छित होकर पृथ्वी तल पर शयन करने लगे ?

अभयरुचिकुमार—मातुश्री ! हम दोनोंने श्रीमुनिके मुख-कमलसे निज भवावलिका श्रवण किया। उसीका स्मरण कर हम दोनों मूर्छित हो गए, क्योंकि ज्ञानी मुनिके वचन कहीं अन्यथा भी होते हैं ? कदापि नहीं।

कुसुमावली—प्रिय पुत्र ! श्रीमुनिराजने तुम्हारे भवोंका किस प्रकार वर्णन किया उसके श्रवण करनेकी मुझे विशेष उत्कण्ठा हो रही है सो क्या तू पुनः प्रतिपादन कर सकता है ?

अभयरुचिकुमार—मात, मैं संक्षेपसे कहता हूं तू उसे श्रवणकर।

अंबिके ! हम दोनों राजा यशोधर और चन्द्रमती थे। उस भवमें चूनका मुर्गा बनाकर देवीके अर्थ वलि प्रदान किया।

उसी मिथ्या कर्मके प्रसादसे विष मिश्रित भोजनोंके योगसे मरण प्राप्त कर मयूर और श्वान भए वहां अरण्यमें न्योला और सर्प, वहांसे सिप्रा नदीमें सूंसि और मत्स्य, वहांसे बकरा और महिष, वहांसे कुर्कुट युगल और उस पर्यायसे तेरे स्वच्छ उदरसे पुत्र-पुत्री हुए।

इस कारण हे वर्तमान भवकी मात ! हे पूर्व भवकी पुत्रवधू ! अब तू श्री मुनिके चरणोंको प्रणाम कर।

इस प्रकार हमारे कहनेसे श्री मुनिको प्रणाम कर महाराज यशोमति नृपतिके आदेशसे महाराज यशोमति और मुझ सहित नगर प्रति पधार गई, उसके साथ समस्त रानी, राजा, कर्मचारी, और कल्याणमित्र सेठ भी नगरमें पहुंच गए, वहां कल्याणमित्र सेठने मुझसे कहा—

कल्याणमित्र—प्रिय भ्रात अभयरुचि कुमार ! तुम्हारे पिता महाराज यशोमति तो दीक्षाके अर्थ उद्यमी हैं, अब तुम इस सप्तांग राज्यका न्यायपूर्वक पालन करो, और कुटुम्बीजनोंको तथा अपनी माताको संतोषित करो।

उपरोक्त कल्याणमित्र सेठके बचन सुनकर, अनेक भवोंके खेदसे खेदित मैं इस प्रकार कहने लगा—

मैं (अभयरुचिकुमार) श्रेष्ठिवर्य ! यह यशोमति पूर्व भवांतर में नेत्रानन्ददायक मेरा पुत्र था, उसे मैंने ही राज्यमें स्थापन किया था सो अब इस भवमें चन्द्रमा सदृश मुखका धारक मैं उसका पुत्र हुआ हूं। सेठजी ! दैवने कितना उत्तम शिक्षण किया ?

वणिग्वर ! अब आप ही कहिये, कि दान क्रमको क्या मैं उल्लंघन करूं ? अर्थात् निज हस्त द्वारा दिये हुए दानका पुनः ग्रहण करूं ?

अब तो मोह पटल रूप सघन वस्त्रसे वेष्टित, स्नेहरूप पर्वतकी गुफाका स्फोटन कर तपोलक्ष्मीका मुखावलोकन करूंगा।

कल्याण मित्र—प्रिय कुमार ! अभी तपश्चरणका कौन समय है ? इस समय तो आपको सबसे प्रथम राज-विद्याकी शिक्षा लेना आवश्यक है, क्योंकि राज विद्या बिना राज्य

शासन करना दुःसाध्य है, और राज्य शासन विना समस्त प्रजा अन्याय मार्गमें प्रवर्तने लगती है। इससे श्रावक धर्म और मुनि धर्म दोनों नष्ट होजाते हैं।

कुमार! जब जिनराज कथित दोनों मार्ग धरातलसे जाते रहें, तो राजगृहमें आपका जन्म लेना हो व्यर्थ हो गया, इस कारण राज्य करना परमावश्यक कार्य है।

राज्य कर्मका जानना आन्वीक्षिकी विद्या, निज देह रक्षण और मनुष्योंमें धर्माधर्मकी विधि, त्रयी विद्या, अर्थ और अनर्थ की प्रवृत्ति रूप ज्ञान वार्ता, विद्या और सुनय और कुनयके मार्गके प्रवर्त्ता बने, रूप दण्डका जानना, दण्ड नीति एवं उपरोक्त चारों ही राज विद्याओंका ज्ञान होना प्रथम कर्त्तव्य कर्म है ऐसा सुन मैंने कहा।

क्षमा इंद्रियोंका दमन, समभाव, सत्य और निर्मल शौच द्वारा ही जीवदया प्रतिपादन की गई है सो पूर्ण दयाके पालक मुनियोंका धर्म, गृहस्थोंसे ही चलता है, मैंने यह निश्चित जान लिया।

वणिक श्रेष्ठ! इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्र और खगेन्द्रों कर पूजित श्री भगवान् सर्वज्ञ—भाषित जो धर्म है वह राज्य शासन विना नष्ट हो जाता है।

अभयरुचि कुमार क्षुल्लक मारिदत्त नृपतिसे और भी कहने लगे कि—नृप-श्रेष्ठ! उस समय यद्यपि मैं संसारके दुःखोंसे अत्यन्त भययुक्त था तथापि पिता द्वारा दिये पाप रूप राज्यको अंगीकार किया ही।

राजन्! जिस समय मेरा राज्याभिषेक हुआ उस समय विविध प्रकार रत्नजडित वस्त्र आभूषणोंसे भूषित दिव्य अंगनाओंके समूह, चमर ढारते थे।

कोई योपितागण ध्वजा हाथमें लिये इधर उधर घूमती

थीं, किसी स्थानमें केशर, कस्तूरी, कर्पूर आदिकी सुगन्धसे भ्रमर गुंजार करते थे, कहीं गन्धर्वजन वीणा मृदंगादि वादित्रों को वजाते अनेक प्रकार मनोहर स्वरोंमें यशगान करते थे, किसी स्थलमें मदोन्मत्त हाथियोंके शब्द, कहीं मनोहर तुरंगों का हीसना कर्णोंको तृप्त करते थे, और वादित्रोंकी ध्वनिसे मिले हुए लोगोंकी जयकार ध्वनिसे समस्त नगर पूरित हो रहा था।

इत्यादि शोभा और उत्सव सहित मेरे पिता यशोमति महाराजने मेरा राज्यारोहण किया पश्चात् मुझे और मेरी माता आदि समस्त कुटुम्बको सम्बोधित कर वनको गमन कर गए।

वहां श्री मुनिराजको विनयपूर्वक नमस्कार कर भव भ्रमण नाशिनी दिगम्बरी दीक्षा धारण करते हुए।

नृपवर! हमारे पिता यशोमतिने जिस समय तपश्चरण ग्रहण किया, उसी समय अन्तःपुरकी योषिताओंने भी अर्जिका के व्रत ग्रहण किये।

यशोमति महाराजने दीक्षा ग्रहण करते समय निज कर-कमलों द्वारा केशोंका लुंचन किया सो मानों अंतरंगसे कृष्ण नीललेश्याका ही तिरस्कार किया। यशोमति महाराजने जो वस्त्र आभूषण और शस्त्रआदि समस्त परिग्रह का त्याग किया सो मानों रागद्वेषका ही अन्तरंग परिहार किया।

नृपराज! हमारे पिताने ऋषियोंके चारित्र को ग्रहण कर घोर वीर तपश्चरणका आरम्भ किया वह तपश्चरण, जन्म-मरणादि व्याधियोंका नाशक है। उसी को धारणकर यशोमति मुनि रागद्वेष, मान, मत्सर आदि भावोंको त्याग, कर्म रूप पाशके नाश करनेको निर्जन वन, श्मशानभूमि और गिर गुफा आदिमें निवास करते वेला, तेला, पक्ष, मासोपवास धारण

करते हुए।

गुणरूप मणियोंसे भूषित हमारे पिताने घरके मोहको छोड़ निज मनको रोक, माया, मिथ्या और निदान एवं तीनों शल्यों का खण्डन कर पाँचों इन्द्रियोंको दंडित कर निर्जित किया।

क्षुल्लक महाराज कहने लगे—राजन् ! हमारे पिता यशोमति तो उपरोक्त प्रकार तपश्चरणसे निज कर्मोंको नष्ट करने लगे और मैं संसारसे उदास तो था ही, किन्तु पिता और कल्याणमित्र सेठके आग्रहसे मैंने राजभार ग्रहण कर लिया था। तो भी निज मनकी उदासीनताको कहाँ तक रोकता ?

इस कारण अति विनययुक्त निज द्विमात भाईको कुलकी लक्ष्मी कर शोभित राज्यभार समर्पण कर उपशम भाव सहित समस्त गृहारंभादि कार्योंका त्याग कर मैं और मेरी भगिनी अभयमती एवं दोनोंही संसार देह भोगोंसे विरक्त होकर जहाँ उद्यानमें श्री दिगम्बर साधु विराजमान थे, वहां जाकर श्री मुनिको नमस्कार कर प्रार्थना करने लगे—स्वामिन् ! हमको जिन दीक्षा कीजिये। इस प्रकार हमारी प्रार्थनाको सुनकर वे वीतराग भावके धारक श्री भट्टारक महाराज कहने लगे—

भट्टारक—अहो वत्स ! अभी तो तुम क्षीण शरीर कमल-दलतुल्य कोमलांगी बालक हो और जिन दीक्षा अत्यन्त दुःसह है इसका निर्वाह बालकोंसे नहीं हो सकता इस कारण उत्तम श्रावकके व्रतको तुम दोनों ग्रहण करो।

भो पुत्र! तुम दोनों भ्राता भगिनी; यद्यपि संसार देह भोगोंसे विरक्त-चित्त हो इस कारण तुम्हारा परिणाम अभी जिन दीक्षाके ग्रहणमें वृद्धिगत हो रहा है, परन्तु तुम अभी सुकुमार अल्प वयस्क बालक हो। इस कारण मुनिराजके लघु भ्राता क्षुल्लकके व्रतको धारण करो।

कुमार ! यद्यपि तुम्हारा हृदय उच्च श्रेणीके आरोहणमें संलग्न है, तथापि प्रथम इस क्षुल्लक व्रतका साधन करो इसमें पूर्ण सिद्धि हो जावे पश्चात् मुनिव्रत ग्रहण करना, ऐसा करनेसे तुम्हारा निर्वाह पूर्णतया हो जायगा ।

इस प्रकार श्रीमुनि महाराजके बचन श्रवण कर हम दोनों ने पूछा—स्वामिन् ! यह तो बतलाईये कि इस क्षुल्लक व्रतमें हम दोनोंको क्या कार्य करना होगा ?

श्रीमुनि कहने लगे—भो वत्स ! इस व्रतमें प्रथमही गुरु सेवापूर्वक शास्त्राभ्यास करो जिसके द्वारा अन्य मतोंकी मूर्खता का बोध होनेसे स्वमतमें आस्था होगी तब सम्यग्दर्शनकी दृढ़ता होगी ।

इस सम्यक्त्वकी शुद्धताके अर्थ जात्यादि अष्टमद, शंकादिक अष्ट दोष, षट् अनायतन और तीन मूढ़ता एवं पच्चीस दोषोंका निराकरण कर, जिससे सम्यग्दर्शन शुद्ध होकर संसार का नाशकर मोक्षप्राप्ति में यथार्थ सहायक होगा ।

राजन् ! उपरोक्त प्रकार श्री मुनिके बचन सुन मैंने पुनः पूछा—

स्वामिन् ! आपने जो कुछ कहा वह सर्व सत्य है, परन्तु इतने कहनेसे तृप्ति नहीं हुई इस कारण उपरोक्त कथनको पुनः विस्तारपूर्वक प्रतिपादन कीजिये अर्थात् अष्टमद कौन ? षट् अनायन कैसे ? और शंकादिक दोष कौन ? इत्यादि समस्त कथन पुनः कहिये ।

इस प्रकार हमारे प्रश्न करने पर श्री मुनि महाराजने उत्तर दिया—कुमार ! उपरोक्त कथनको मैं पुनः कहता हूं, तू चित्त लगाकर श्रवण कर ।

श्रीमुनिराज—वत्स ! प्रथम अष्ट मदोंका वर्णन करता हु । अर्थात् ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, बल, ऋद्धि, तप और वपु एवं

आठ प्रकारका मद आचार्योंने वर्णन किया है।

उपरोक्त ज्ञानादिकका अहंकार करना सम्यग्दर्शनको दूषित करना है इस कारण ज्ञानादिकका मद नहीं करना।

इसी प्रकार जिन वचनमें सन्देह करना शंका, इस भव तथा परलोक सम्बन्धी लोगोंकी वांछा, कांक्षा, दुःखी दरिद्री, रोगपीड़ितको देख ग्लानि करना विचिकित्सा।

देव, शास्त्र और गुरुकी सेवा आदिमें मूर्खता करना अर्थात् देव कुदेवमें, शास्त्र कुशास्त्रमें और सुगुरू कुगुरूमें किसी प्रकार का भेद न जानकर सबकी पूजा, विनय, उपासना आदिमें तत्पर रहना मूढ़ दृष्टि।

जिस कार्यसे जैन शासनकी निंदा होवे उसे प्रगट करना इत्यादि अनुपगूहन, जिस कार्यसे अन्य जीव धर्मसे च्युत होजावें वह अस्थितिकरण।

स्वधर्म प्रतिपालकोंसे स्नेह नहीं करना अवात्सल्य और जिनशासनकी प्रभावना न करना उसे अप्रभावना कहते हैं।

इसी भांति कुगुरु, कुदेव और कुधर्म एवं तीन ये तथा कुगुरु के सेवक, कुदेवके पूजक और कुधर्मके धारक एवं तीन ये इस प्रकार इन छहोंकी प्रशंसा वाचक शब्द कहना षट अनायतन हैं।

यथा धर्म जानकर गंगा आदि नदियों तालाबों और समुद्रमें स्नान करना-वालुका और पत्थरोंका ढेर करना, गिरिसे (पर्वतों से) गिरना, अग्नि में प्रवेश करना आदि मूर्खोंकी देखादेखी विवेक विना गाड़री प्रभाव-तुल्य कार्य करना लोकमूढ़ता है।

तथा वरकी इच्छासे हृदयमें आशा धारण कर रागी द्वेषी देवों अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, गणेश, शीतला, तिहाड़ी आदि क्षुद्र देवता तथा पीर पैगम्वर आदिकोंकी,उपासना करना अर्थात् उपर्युक्त रागी द्वेषी देवताओंकी पूजा पैलागी करना देव-मूढ़ता है।

इसी प्रकार परिग्रह आरंभ और हिंसा सहित संसार चक्रमें रहनेवाले पाखण्डी साधु तपस्वियोंका आदर सम्मान, भक्ति पूजा करना पाखण्डी मूढ़ता अर्थात् गुरु मूढ़ता है।

इस प्रकार उपरोक्त पच्चीस दोषोंको त्यागनेसे सम्यग्दर्शन शुद्ध होता है और यही देव शास्त्र गुरुका तथा तत्वार्थका श्रद्धान रूप सम्यग्दर्शन, निःशंकादि अङ्गोंसे जब पूर्ण होवे तब निर्मल होता है, इस कारण सम्यक्त्वके अष्ट अङ्गोंका वर्णन करते हैं।

सम्यक्त्व के आठ अंगों का वर्णन

निःशंकित अंग ॥१॥

सर्वज्ञ वीतरागके कथित तत्व (वस्तुका स्वरूप) यही है, इसी प्रकार है और नहीं तथा अन्य प्रकार भी नहीं, इस प्रकार जैन मार्गमें खड्गके जल समान अकम्प (निश्चल) श्रद्धानको निःशङ्कित अंग कहते हैं।

निःकांक्षित अंग ॥२॥

कर्मोंके परवशरूप, नाशवान्, दुःखोंसे पूर्ण, पापका बीजभूत और अनित्य एवं सांसारिक सुखको अनित्य रूप श्रद्धा अर्थात् उपरोक्त प्रकार संसारके सुखकी वांछा न करना निःकांक्षित गुण है।

निर्विचिकित्सित अंग ॥३॥

दुःखी दरिद्री और रोग पीड़ित जीवोंके शरीरको देखकर ग्लानि न करना तथा स्वभावसे ही अपवित्र किंतु रत्नत्रयसे पवित्र धमात्माओंके शरीरमें घृणा न करना किंतु गुणोंमें प्रीति धारण करना निर्विचिकित्सित अंग है।

अमूढ़दृष्टि अंग ॥४॥

दुःखोंसे पूर्ण कुत्सित मार्ग तथा मिथ्या पथके पथिक मिथ्या-दृष्टियोंमें मन कर सम्मत न होना, काय कर सराहना न करना, और वचन द्वारा उनकी प्रशंसा नहीं करना, उसे अमूढ़दृष्टि कहते हैं।

उपगूहन अंग ॥५॥

श्री जैन मार्ग यद्यपि स्वयं पवित्र है तथापि मूर्खजन उसकी निंदा करते हैं, सो जो जैन मार्गकी निंदाको दूर करे वह उप-गूहन अंग है, अर्थात् जो जैनी स्वयं निंदित कार्य न करे तथा किसी धर्मात्मा द्वारा किसी प्रकार कर्मोदयसे निंद्य कार्य बन गया हो तो उसे गुप्त रखना किंतु उसे प्रकट नहीं होने देना, यही उपगूहन अंग है।

स्थितिकरण अंग ॥६॥

सम्यदर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रसे किसी कारण च्युत हुए प्राणियोंको निज तन मन और धनसे तथा उत्तम उप-देश द्वारा धर्ममें स्थापित करना उसे स्थितिकरण कहते हैं।

वात्सल्य अंग ॥७॥

जो अपने सहधर्मी भाइयोंके प्रति समीचीन भावों सहित किंतु छल कपट रहित यथायोग्य आदर सत्कार करना उसे वात्सल्य कहते हैं।

प्रभावना अंग ॥८॥

मिथ्यात्व अज्ञानरूपी अंधकारके विस्तारको जिस प्रकार हो सके उस प्रकार अर्थात् निज ज्ञानोपदेश, पूजा, प्रतिष्ठा और तपश्चरण आदि द्वारा तथा तन, मन, धनसे अन्य मतावलंबियों में जिन मतका महत्व-प्रभाव प्रगट कर देना उसे वीतराग सर्वज्ञ ने प्रभावना अंग वर्णन किया है।

वत्स ! जिस प्रकार अक्षर रहित मंत्र विषकी वेदनाको दूर नहीं कर सकता उसी प्रकार अंगहीन सम्यग्दर्शन भी संसारकी परिपाटीके छेदनेमें समर्थ नहीं होता, इस कारण अष्टांग सम्यग्दर्शन ही धारण करना योग्य है।

इस प्रकार कथन कर श्री मुनिराजने और भी कहा—

परमतके नयका विध्वंस करनेवाले सम्यग्दर्शनको प्रथम अपने हृदय में धारण करना पुनः संसार सम्बन्धी पापोंके हरण करनेवाले बाह्याभ्यंतर तपका आचरण करना।

जैसे नायक विना रथ घोटक मदोन्मत्त हस्ती और अनेक सुभटोंकी सेना शत्रुके सन्मुख युद्ध करनेमें असमर्थ हो जाती है उसी प्रकार एक सम्यग्दर्शन बिना अनेक प्रकार दुर्द्धर तपश्चरण भी निरर्थक है।

इसी प्रकार जैसे वीज बिना वृक्षकी उत्पत्ति स्थिति वृद्धि और फलोद्‌गम नहीं होता उसी प्रकार सम्यग्दर्शन बिना ज्ञान और चारित्रकी उत्पत्ति स्थिति वृद्धि और पूर्ण फलकी प्राप्ति नहीं होती।

उपरोक्त सम्यक्त्वके समान इस जीवका तीन लोक में कोई कल्याण नहीं। इसी प्रकार मिथ्यात्व समान इस जीवका लोकत्रयमें कोई अकल्याण नहीं। इस कारण मिथ्या स्वरूप विषको वमन कर सम्यक्त्व रूप अमृतका पान करना योग्य है।

इस प्रकार सम्यग्दर्शनको धारण करने से ज्ञान भी सम्यग्ज्ञान होजाता है। इस कारण सम्यग्ज्ञानका स्वरूप संक्षेप मात्र तुझे सुनाता हूं।

सम्यग्ज्ञान का स्वरूप

जो पदार्थोंके स्वरूपको न्यूनता रहित तथा अधिकता रहित और विपरीतता रहित अर्थात् जैसेका तैसा संदेह रहित जाने

उसे सम्यग्ज्ञान कहते हैं।

यही सम्यग्ज्ञान ! सर्वज्ञ वीतराग कथित स्याद्वादयुक्त शास्त्र द्वारा उत्पन्न होता है और वह जैन शास्त्र प्रथमानुयोग करणानुयोग चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग एवं चार अनुयोगोंमें विभक्त हुआ है इस कारण उपरोक्त एवं चार अनुयोगोंका संक्षेप सुनाता हूं।

प्रथमानुयोग

जो परमार्थ विषयका अथवा धर्म अर्थ काम और मोक्षका कहनेवाला हो, एकपुरुषके आश्रय जिसमें कथन हो, तथा जिसमें त्रेशठ शालाका पुरुषोंका चरित्र प्रतिपादन किया हो, जिसमें पुण्य पापके फलका वर्णन हो और जो रत्नत्रयका भंडार हो वह प्रथमानुयोग आचार्योंने कहा है।

जो लोक अलोकके विभागको तथा युगों [कालों] के परिवर्तनको तथा चारों गतियोंका आदर्शन हो वह करणानुयोग है अर्थात् जिसमें लोक और अलोकके स्वरूपका वर्णन हो, जिसमें अवसर्पिणी कालकी आयुकाय आदिका वर्णन हो, जिसमें चतुर्गतिके जीवोंके बंध सत्व उदय और उदीरणा तथा सर्व प्रकारके जीवोंके परिणामोंका कथन हो वह करणानुयोग है।

चरणानुयोग

जो गृहस्थ और मुनियोंके चारित्रकी उत्पत्ति वृद्धि और रक्षाका अङ्गभूत हो अर्थात् जिसमें गृहस्थ धर्म और मुनि धर्म की विधिका पूर्ण कथन हो वह चरणानुयोग है।

द्रव्यानुयोग

जो जीव अजीव रूप तत्वोंको तथा पुण्य पाप और बन्ध मोक्षका विस्तारपूर्वक कहनेवाला हो वह द्रव्यानुयोग है।

इस प्रकार उपरोक्त चारों अनुयोगोंके रहस्यका ज्ञाता

सम्यग्दर्शनपूर्वक सम्यग्ज्ञानको धारण करता है। इसके पश्चात् सम्यक्चारित्रका स्वरूप संक्षेपसे प्रतिपादन करता हूँ उसे चित्त लगाकर श्रवण करो।

यद्यपि मोहांधकारके नाशसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है, तो भी रागद्वेषकी निवृत्तिके अर्थ सम्यग्ज्ञानी-को एक देश तथा सर्वदेश पंच पापों का त्यागरूप व्यवहार चारित्रका पालन करना परमावश्यक है।

जिस पुरुषको धनादिककी कांक्षा नहीं वह राजादिकोंकी सेवा क्यों करेगा ? और जो धनादिकका इच्छुक है, वह राजा-दिकोंकी सेवा अवश्य करेगा, इसी भांति जो पंच पापोंसे मुक्त होनेका इच्छुक है वह राग द्वेषकी निवृत्ति अवश्य करेगा।

क्योंकि रागद्वेषके त्याग विना पांच पापोंका त्याग नहीं होता, और पांच पापोंके त्याग विना रागद्वेष निवृत्ति रूप चारित्रका पालन नहीं होता, इस कारण उपरोक्त दोनोंके त्यागको ही चारित्र कहते हैं, उसीका पालन करना उचित है।

इन पंच पापके त्यागरूप चारित्रके सकल और विकल दो भेद हैं अर्थात् सकल चारित्र जिसमें पंच पापोंका सर्वथा त्याग जिसे मुनि धर्म भी कहते हैं, वह सकल चारित्र है, और जिसमें एकदेश पंच पापोंका त्याग हो उसे गृहस्थ प्रतिपालन करते हैं वह विकल चारित्र है।

यही विकल चारित्र, अर्थात् जिसमें हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रहकी तृष्णा एवं पंच पापोंका एकदेश रूप चारित्र श्रावक धर्म है, वह अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत एवं तीन भेद तथा इनहीके उत्तर भेद पंच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत एवं द्वादश भेद रूप है, तिनमें प्रथम पंच अणु-व्रतोंके स्वरूप वर्णन करते हैं—

पांच अणुव्रतोंका स्वरूप

जो हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, और परिग्रह एवं पंच पापोंसे विरक्त होना, उसे अणुव्रत संज्ञा है, इनमें प्रथम हिंसाके त्याग रूप प्रथम अहिंसा अणुव्रतका वर्णन करते हैं—

अहिंसा अणुव्रत

जो मन, वचन और कायके संकल्पसे तथा कृत, कारित और अनुमोदनासे त्रस अर्थात् दो इंद्रिय, तेंद्रिय, चतुरिंद्रिय, और पंचेन्द्रिय जीवोंको जो नहीं हनता उस क्रियाको (स्थूल हिंसासे विरक्त होने रूप) अहिंसा अणुव्रत कहते हैं।

इसको मलिन करनेवाले पंच अतीचार हैं, जिनके स्वरूप कहते हैं, अर्थात् छेदना, बांधना, पीड़ा देना, मर्यादासे अधिक भारका लादना, और आहार पानीमें त्रुटि करना एवं स्थूल हिंसाके त्याग रूप अहिंसा अणुव्रतके पंच अतीचार हैं।

सत्य अणुव्रत

जो स्थूल झूठ न तो आप बोले और न औरोंसे बुलवावे तथा जिस बचनसे किसीको आपदा आ जावे ऐसा यथार्थ भी न आप कहै न दूसरोंसे कहलावे उसको सत् पुरुष स्थूल झूंठ त्याग रूप सत्य अणुव्रत कहते हैं।

सत्य अणुव्रतके पांच अतीचार

मिथ्या उपदेश देना, किसीके गुप्त रहस्यको प्रगट करना, अर्थात अंगविकार भूक्षेपादिसे किसीका गुप्त अभिप्राय जानकर निंदापूर्वक प्रगट करना (इसको साकार मन्त्र भेद भी कहते हैं)

पैशून्य अर्थात चुगली वा निन्दा करना। कुटलेखकरण अर्थात झूंठी वातें लिखना और न्यासापहारिता अर्थात किसीने गहने रुपये वगैरह, अमानत रक्खे हों और लेते समय गिनतीमें उसने भूलकर कुछ मांगे तो अपने याद रहते भी हां इतने ही थे सो

ले जाओ इत्यादिक कहना पांच सत्य अणुव्रतके अतीचार हैं।

अचौर्य अणुव्रत

जो रक्खे हुए, गिरे हुए, भूले हुए और धरोहर रक्खे हुए परद्रव्यको न स्वयं हरण करता है, और न दूसरोंको देता है, वह स्थूल चोरीसे विरक्त होनें रूप अचौर्य अणुव्रत अचार्यों ने कहा है।

अचौर्याणव्रतके पांच अतीचार

चोरीका उपाय वताना, चोरीका द्रव्य लेना, राजाकी आज्ञाका उल्लंघन करना अर्थात् राजाके महसूल आदिको चुराना, अधिक मूल्यकी वस्तुमें हीन मूल्यकी वस्तु मिलाना और नापने तोलनेके गज बाट तराजू आदिक हीन अधिक रखना ये पांच स्थूल चोरीके त्यागके अर्थात् अचौर्याणुव्रत अतीचार कहे हैं।

परदार निंवृत्ति अर्थात् शीलव्रत

जो पापके भयसे न तो स्वयं परस्त्री प्रति गमन करे और न दूसरोंको गमन करावे वह परस्त्री त्याग अर्थात् स्वदार सन्तोष नामक अणुव्रत है।

परस्त्री त्याग व्रतके पांच अतीचार

दूसरेका विवाह कराना, काम सेवनके अंगोंसे भिन्न अंगों द्वारा काम सेवन करना, भंड बचन बोलना, स्वस्त्रीके सेवनमें भी अत्यंत गृद्धता रखना, और व्यभिचारिणी स्त्रीके घर जाना तथा उससे किसी भी प्रकारका सम्बंध रखना, एवं स्त्री त्याग व्रतके पांच अतीचार हैं।

परिग्रह परिमाण व्रत

जो वर्तमान धन धान्यादि दश प्रकारके परिग्रहका परिमाण करके उससे अधिकमें इच्छा न करना, अर्थात् जितना परिग्रह

अपने गृहमें विद्यमान है उसमेंसे आवश्यक पदार्थोंका परिमाण करके शेषसे इच्छाका अवरोध करना, वह परिग्रह परिमाण नामक अणुव्रत है।

परिग्रह परिमाण व्रतके पांच अतीचार

प्रयोजनसे अधिक सवारी रखना, आवश्यक वस्तुओंका अतिशय संग्रह करना, परके विभव देख आश्चर्य करना, बहुत लोभ रखना, और परिमाणसे अधिक भारका लादना एवं परिग्रह परिमाण व्रतके पांच अतीचार हैं।

श्री मुनिराज कहने लगे—वत्स ! अतीचार रहित पंच अणुव्रतोंके धारण करनेसे स्वर्गलोककी लक्ष्मी प्राप्त होती है, जहां अवधि ज्ञान, अणिमादि ऋद्धियाँ और मनोहर शरीर आदि सुखदा सामग्रीकी प्राप्ति होती है।

इस प्रकार कहकर श्री मुनि-पुंगवने और भी कहा—

राजकुमार ! उपरोक्त पञ्च अणुव्रतोंको धारनेवाला श्रावक अष्ट मूल गुणोंको धारण करता है अर्थात् पंच अणुव्रतों सहित मधु मांस और मदिराके त्यागको अष्ट मूल गुण कहते हैं।

कोई कोई आचार्य ऊँमर, कठूमर, पीपर, वड़, और पाकर फल एवं पंच उदम्बर तथा मदिरा, मांस, और मधु एवं तीन मकार इन आठ वस्तुओंके त्यागको अष्ट मूल गुण कहते हैं।

इस प्रकार पांच अणुव्रत और अष्ट मूल गुणोंका वर्णन कर अब तीन गुणव्रतोंको कहता हूँ, तिनमें प्रथम गुणव्रतका स्वरूप तुझे सुनाता हूँ।

तीन गुणव्रतका स्वरूप

गुणोंकी वृद्धिके अर्थ दिशादिकोंकी तथा भोगोपभोगकी मर्यादा और अनर्थ दण्डके त्यागको गुणव्रत कहते हैं।

यह गुणव्रत, दिग्व्रत, भोगोपभोग परिमाण और अनर्थ दण्ड त्याग एवं तीन प्रकार है, अब इनके भिन्न-भिन्न स्वरूप-

का वर्णन करते हैं ।

दिग्व्रतका स्वरूप और उसके धारण करनेकी मर्यादा मरण-पर्यंत पापकी निवृत्तिके अर्थ दिशाओंका परिमाण करके इसके बाहर न तो जाऊँगा और न किसी प्रकारका व्यवहार करूँगा इस प्रकारके संकल्प करनेको दिग्व्रत कहते हैं ।

जहां दशों दिशाओंके त्यागमें प्रसिद्ध २ समुद्र, नदी, वन, पर्वत, देश और योजन आदिकी हद्दको मर्यादा कहते हैं ।

दिग्व्रतका फल

दिग्व्रतके धारनेवालोंको मर्यादासे बाहर सूक्ष्म पापकी निवृत्ति होनेसे जो अणुव्रत हैं वे ही पंच महाव्रतोंके समान हो जाते हैं अर्थात् दिग्व्रतका धारक अपनी की हुई मर्यादामें तो श्रावक ही हैं किंतु मर्यादासे बाहर न जानेसे वहां पर कोई भी पाप नहीं करते इस कारण मर्यादासे बाहर मुनिराजके समान सर्वत्यागी हैं ।

दिग्व्रतके पांच अतीचार

अज्ञान व प्रमादसे ऊपर, नीचे तथा दिशा और विदिशाओं की मर्यादाका उल्लंघन करना, क्षेत्रकी मर्यादा बढ़ा लेना और की हुई मर्यादाको भूल जाना इस प्रकार दिग्व्रतके पांच अती-चार हैं ।

अनर्थदण्डका स्वरूप और भेद

पूर्व की हुई दिशाओंकी मर्यादाके भीतर किसी प्रकारके प्रयोजनके विना पाप रूप आचरण करना उसे अनर्थदण्ड कहते हैं । यह पापोपदेश १-हिंसादान, २-अपध्यान, ३-दुःश्रुति, ४-पापोपदेश, और ५-प्रमादचर्या एवं पांच प्रकार है । अब इनके भेदोंका वर्णन करते हैं ।

पापोपदेश अनर्थदण्ड

जिस वचनमें तिर्यंचोंको दुःख हो तथा जिससे वाणिज्य

हिंसा आरंभ और ठग विद्या आदिका प्रसंग आवे वह पापोपदेश नामका अनर्थदण्ड है।

हिंसादान अनर्थदण्ड

जो फरसा, तलवार, फावड़े, अग्नि, आयुध, सींगी, सांकल और रस्सी आदि हिंसाके अपकरण अपने यहां रखकर दूसरोंको मांगे देना तथा उनका व्यापार करना अर्थात् जिन वस्तुओंमें हिंसाकी प्रवृत्ति विशेष पाई जाय उन हिंसाके उपकरणों को मांगे देना या उनका व्यापार करना उसे हिंसादान नामक अनर्थदंड कहते हैं।

अपध्यान अनर्थदण्ड

क्रोध, मान, माया और लोभ तथा हास्यादि द्वारा अन्य स्त्री पुरुषोंके नाश आदिका चितवन अथवा इस लोकपरलोक संबंधी विषयोंकी इच्छाका अभिलाष आदि, रौद्र तथा आर्त्त ध्यान रूप परिणामोंको अपध्यान नामक अनर्थदण्ड कहते हैं।

दुश्रुति अनर्थदण्ड

आरम्भ, परिग्रह, साहस, मिथ्यात्व, द्वेष, राग, मद और मदन आदि से चित्तको क्लेशित करनेवाले शास्त्रोंके सुननेको दुश्रुति नामक अनर्थदण्ड कहते हैं।

प्रमादचर्या नामक अनर्थदण्ड

बिना प्रयोजन पृथ्वी, जल, अग्नि और पवनके आरम्भ करने वनस्पति छेदने, पर्यटन करने और दूसरेको पर्यटन करानेको प्रमादचर्या नामक अनर्थदंड कहते हैं।

उपर्युक्त अनर्थदंडके त्यागको अनर्थदंड त्याग नामक व्रत जानना, अब इस व्रतके भंग करनेवाले पांच अतीचारोंको कहता हूं।

अनर्थदण्डके पांच अतीचार

रागपूर्वक हास्य मिश्रित भंड वचन बोलना, कार्यकी कुचेष्टा

करना, वृथा बकवाद करना, व्यर्थही भोगोपभोगकी सामग्री वढ़ाना और प्रयोजनकी जांच किये बिनाही अथवा प्रयोजनरहित अधिकताके साथ मन, बचन और कायकी प्रविर्तिको बढ़ाना ये अनर्थदण्ड व्रतके पांच अतिचार हैं।

भोगोपभोग परिणाम व्रतका स्वरूप

जो रागादि भावोंके घटानेके अर्थ परिग्रह परिणाम व्रतकी मर्यादामें भी प्रयोजनभूत इद्रियोंके विषयोंका प्रतिदिन परिमाण करना उसे भोगोपभोग परिणाम व्रत कहते हैं।

भोग और उपभोगका निर्णय

जो भोजन वस्त्र आदि पंचेन्द्रिय सम्बन्धी विषय, भोग करके पुनः त्यागने योग्य हों, अर्थात् एकबार भोगकर फिर भोगनेमें नहीं आवे वह भोग है, और जो एकबार भोग करके फिर भी भोगनेमें आवे वह उपभोग है।

जैसे जो भोजन एकबार भक्षण कर लिया, वह भक्षण किया हुआ पुनः भोगनेमें नहीं आवे वह भोग है, और जो स्त्री वस्त्र आभूषण आदि को एकबार भोगकर फिर भोगा जा सकता है इस कारण वह उपभोग है।

इसी भोगोपभोग परिमाण व्रतमें विशेष त्याग

जिनेन्द्र भगवानके चरणोंकी शरणमें आनेवाले महानुभावों द्वारा त्रस जीवोंकी हिंसाके निवारणार्थ मधु मांसका त्याग करना तथा प्रमाद दूर करनेके अर्थ मदिराका भी परिहार करना योग्य है।

जिसमें फल तो अल्प हो और त्रस (द्वीन्द्रियादि) जीवोंकी हिंसा अधिक हो ऐसे, गीले अर्थात् सचित्त (जीवयुक्त) अदरख, मूली, गाजर, आलू आदि कन्दमूल तथा मक्खन, (नौनीं) निंव और केतकी आदि के पुष्प इत्यादि समस्त वस्तुओं का त्याग करना योग्य है।

व्रत लक्षण

जो अनिष्ट (हानिकारक) हो उसे छोड़े और जो उत्तम कुल के सेवन करने योग्य न हो उसे भी छोड़े क्योंकि योग्य विषय से अभिप्रायपूर्वक की हुई विरक्ति ही को व्रत संज्ञा प्रतिपादन की है।

आर्थात्—जो शरीरको हानिकारक अथवा अपने को प्रिय नहीं है उसे तो हम स्वयं ही सेवन नहीं करते, इससे इसके त्याग को व्रत नहीं कहते तथा जो गोमूत्र, मद्य, मांस, मदिरा कन्दमूल, अनछना जल, रात्रिभोजन, आदि अभक्ष्य वस्तु उत्तम कुलवालों को ग्रहण करने योग्य ही नहीं, इससे इनके त्याग को व्रत नहीं कहते।

किन्तु जो उत्तम सज्जन पुरुषोंके सेवन करने योग्य पंचेन्द्रियों के विषय हैं, जिनके सेवन करनेमें राज व पंचका दंड नहीं, अपने पदस्थ के विरुद्ध नहीं और वह हमको प्रिय भी है ऐसे योग्य विषयोंके त्यागको ही वास्तवमें व्रत संज्ञा है, इसके सिवाय अन्य प्रकार के त्यागको व्रत नहीं कहते।

यम और नियम रूप व्रतका स्वरूप

भोग और उपभोगके त्यागमें नियम और यम एवं दो प्रकार त्याग का विधान किया गया है, उसमें जो कालकी मर्यादा रूप त्याग है, वह तो नियम है और जो यावज्जीव त्याग किया जाता है, वह यम है।

नियम करनेकी विधि

भोजन, सवारी, शयन, स्थान, पवित्र अंग में सुगन्ध पुष्पादि धारण करना, ताम्बूल, वस्त्र, आभूषण, कामभोग-नृत्यादि सहित संगीत और सामान्य गीत-इत्यादि विषयों में एक घड़ी, प्रहर, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, ऋतु, (दो मास), अयन(छः मास)

और वर्ष इस प्रकार कालके विभाग से जो मर्य्यादा रूप त्याग करना है उसे नियम कहते हैं।

भोगोपभोग व्रतके अतीचार

विषयरूपी विषमें आदर करना, पूर्वकालके भोगे हुए विषयोंका स्मरण रखना, वर्तमानके विषयोंके भोगनेमें अत्यन्त लालसा रखना, भविष्यत्में विषयोंकी प्राप्तीकी अतिशय तृष्णा रखना, और विषय नहीं भोगते हुए भी विषय भोगता हूँ ऐसा अनुभव करना, ये भोगोपभोग परिमाण नामक गुणव्रतके पांच अतिचार, श्री गणधर देव ने प्रतिपादन किये हैं।

चार शिक्षाव्रतोंका स्वरूप

देशावकाशिक, सामायिक, प्रोषधोवास और वैयावृत्य ये चार शिक्षाव्रत हैं अब इनका भिन्न २ स्वरूप वर्णन करता हूँ—

देशावकाशिक शिक्षाव्रत

जो दिग्व्रतमें परिमाण किये हुए विशाल देशका कालके विभाग से प्रतिदिन त्याग करना। जैसे प्रथम दिग्व्रतमें दक्षिण दिशा का आसमुद्र परिमाण किया था उसमें से कर्णाटक देश तथा महाराष्ट्र देशका तथा उससे भी न्यून नगरादिकका प्रति-दिन प्रमाण करना उसे देशावकाशिक शिक्षाव्रत कहते हैं।

देशावकाशिक व्रतके कालकी मर्यादा

गणधरादि ज्ञानी पुरुषों ने देशावकाशिक व्रत की एक वर्ष, छः मास, दो मास, एक मास, पक्ष और नक्षत्र पर्यन्त कालकी मर्यादा वर्णन की है।

इस देशावकाशिक व्रतमें भी सीमाओं के परे स्थूल सूक्ष्म रूप पांचों पापोंका भले प्रकार त्याग होने से इस व्रतके व्रती द्वारा भी महाव्रत साधे जाते हैं।

देशावकाशिक शिक्षाव्रतके अतीचार

मर्य्यादाके बाहर किसीको भेजना, किसी प्रकारका शब्द करना, मर्य्यादाके बाहरसे वस्तु मंगाना, अपना रूप दिखाकर समस्या (इशारा) करना और कंकर, पत्थर आदि फेंकना ये देशावकाशिक शिक्षाव्रतके पांच अतीचार हैं।

सामायिक शिक्षाव्रत

मन वचन और काय, तथा, कृत, कारित और अनुमोदनासे मर्यादा और मर्यादाके बाहर भी किसी नियत समय पर्यंत पांचों पापों का त्याग करना, उसे सामायिक शिक्षाव्रत कहते हैं।

सामायिककी विधि

सामायिकके समय चोटीके बालोंको बांधना, मूठी, व वस्त्र बाँधना, पल्यंकासन (पालथी) तथा कायोत्सर्ग धारण करना, तथा अन्तरंगसे राग द्वेषादि का त्याग करना।

सामायिकके योग्य स्थान

सर्व प्रकारके उपद्रवोंसे रहित अर्थात्, शीत, वात, दंशमशक आदि बाधासे रहित, एकान्त जहां स्त्री, पुरुष, नपुंसक, बालवृद्ध, जवान और पशु आदिका आवागमन न हो, निर्जन वन पर्वतकी शिखर तथा गुफा, जिनगृह, धर्मशाला, स्मशान भूमि और जिन चैत्यालय आदि निर्जीव भूमिमें प्रसन्न चित्तसे सामायिक करें।

इसके सिवाय कायादि चेष्टा और मनोव्यग्रतासे निवृत्ति होने पर मनके विकल्पोंकी विशेष निवृत्ति करके प्रतिदिन अथवा उपवास और एकासनके दिन उपर्युक्त विधिसे सामायिक करे।

उपर्युक्त विधिके अनुसार, किया हुआ सामायिक, पंच महाव्रतोंके परिपूर्ण करनेका कारण है, इस कारण प्रति दिवस आलस्य रहित एकाग्र चित्तसे यथानियम सामायिक करना योग्य है।

इसी सामायिकमें आरम्भ सहित सर्व प्रकारके परिग्रहोंके न होनेसे, उस समय गृहस्थको उपसर्गपूर्वक वस्त्रादिकों सहित मुनिपना हो जाता है।

सामायिक करते समय, मौनधारी, अचलयोगसे तिष्ठा हुआ श्रावकको शीत, उष्ण, डांस, मच्छर दुष्टोंके कुवचन आदि उपसर्गोंका भी सहन करना योग है।

सामायिक करते समय क्या विचार करना चाहिये

मैं ! यद्यपि अकारण, अनित्य, दुःखमयी संसारमें वास करता हूँ। परन्तु यह मेरी आत्मासे पृथक् है, और इससे सर्वथा प्रतिकूल मोक्ष है, वह मेरा निज स्वरूप है उसीमें संलग्न होना मेरा परम कर्त्तव्य कर्म है।

सामायिकके अतीचार

मन, वचन, और कायकी वृत्तिको चलायमान करना, सामायिकमें अनादर करना, और सामायिकका समय और पाठ भूल जाना, ये सामायिक नामक शिक्षाव्रतके पांच अतीचार हैं।

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत

अष्टमी और चतुर्दशीके दिवस सर्वकाल पर्यंत व्रतके विधान की वांछाओंसे चार प्रकारके आहारका त्याग करना तथा धर्मध्यानपूर्वक रहना, प्रोषधोपवास नामक शिक्षाव्रत कहते हैं।

प्रोषधोपवासके दिवस क्या त्याग करना चाहिये

उपवासके दिवस-हिंसादि पंच पापोंका, शृंगार, आरम्भ, गन्ध, पुष्प, तथा रागादिककी वृद्धिके कारण गीत नृत्यादि, स्नान, अंजन, नस्य (सूँघने योग्य वस्तु) का भी त्याग करना योग्य है।

उपवासके दिनका कर्त्तव्य

उपवासका धारक निरालसी होकर अतिशय उत्कंठित

होता हुआ, धर्मरूपी अमृतका पान करै तथा अन्यको करावे अथवा ध्यानाध्ययनमें तत्पर रहे।

प्रोषध और उपवास का स्वरूप

जो दाल भात आदि अशन, घृत दुग्धादि पीने योग्य पान, मोदकादि खाद्य और रबड़ी आदि लेह्य ये चार प्रकारके आहार का त्याग करना सो उपवास है, तथा जो एकबार भोजन करना है वह एक भुक्ति अर्थात् प्रोषध और जो व्रत धारनेके दिवस एकवार भोजन पूर्वक उपवास करके पारनाके दिवस एकाशन करना है वह प्रोषधोपवास कहा जाता है।

प्रोषधोपवासके अतीचार

जो बिना देखे शोधे पूजा के उपकरण ग्रहण करना, मल मूत्रादि त्याग करना, सन्थरा बिछाना, उपवासमें अनादर करना, और योग्य क्रियाओंको भूल जाना, ये प्रोषधोपवास व्रतके पांच अतीचार हैं।

वैयावृत्य नामक शिक्षाव्रत

जो सम्यक्त्वादि गुणोंके भण्डार, गृह रहित तपस्वियोंको विधिद्रव्यादि सम्पदा कर धर्मके अर्थ प्रत्युपकारकी इच्छा रहित दान करता है वह वैयावत्य नामक शिक्षाव्रत कहा जाता है।

इसके सिवाय गुणोंमें अनुराग धारण कर गुणाधिक्य तथा संयमी मुनियोंके खेद दूर करनेको पगोंका दाबना आदि शुश्रूषा सेवा कर्म आदि जितने प्रकारका उपकार करना है वह समस्त वैयावृत्यमें गर्भित है।

तथा श्रद्धा, तुष्टि, भक्ति, विज्ञान, अलुब्धता, क्षमा और सत्व ये सप्त गुण सहित शुद्ध श्रावक द्वारा कूटने, पीसने, चूल्हा सुलगाने, पानी भरने, और बुहारी देनेके आरम्भ रहित मुनि आदि श्रेष्ठ पुरुषोंका पड़गाहन, उच्च स्थान, पादोदक, अर्चन, प्रणाम, मनशुद्धि, वचनशुद्धि, कायशुद्धि, आहारशुद्धि ये नवधा-

भक्ति पूर्वक आदर सत्कार करना उसे दान कहते हैं।

दानका फल

जैसे स्वच्छ जल रुधिर आदिको धोकर शुद्ध कर देता है उसी प्रकार अतिथियों [मुनियों] को शुद्धान्तःकरणसे दिया हुआ दान भी गृह कार्योंसे संचित किये हुए पापोंको नष्ट कर देता है।

इसके सिवाय तपस्वी मुनियोंको नमस्कार करनेसे उच्च गोत्र, दान देनेसे उत्तम प्रकारके भोग, उपासना करनेसे प्रतिष्ठा और भक्ति करनेसे सुन्दर कीर्ति प्राप्ति होती है।

सुपात्रको दिया हुआ अल्प दान भी समयांतरमें पृथ्वीमें प्राप्त हुए बटके बीजकी भांति छाया फलादि विभवरूप मनवांछित फलको देता है अर्थात् सुपात्रको अल्प भी दान देनेसे स्वर्गादि लक्ष्मीकी प्राप्ती होती है। अर्थात् जैसे बटका अल्प भी बीज उत्तम भूमिमें पड़नेसे कितने बड़े वृक्ष छाया और असंख्य फलोंको फलता है उसी प्रकार सुपात्रके अर्थ अल्प भी दान वृहत्फलका दाता होता है।

दानके भेद

चार ज्ञानके धारक श्री गणधरादि आचार्योंने आहार, औषध, ज्ञानके साधन शास्त्र, और अभय तथा धर्मशाला आदि एवं चार प्रकार का दान वर्णन किया है।

श्रीषेण राजा और वृषभसेना नामकी सेठकी पुत्री आहार और औषध दानमें, कौंडेश नामक ग्रामकूट शास्त्र दानमें और शूकर मुनिकी रक्षा करने अर्थात् अभयदानमें प्रसिद्ध हुए हैं इन्होंने उपर्युक्त दानके प्रभावसे सुन्दर कीर्ति, उत्तम भोग और शुभ गति प्राप्ति की है।

वैयावृत्यके भेदमें ही भगवत् की पूजा भी है

इच्छित फलके देनेवाले और कामदेवके बाणोंको भस्म

करनेवाले देवोंके देव अर्हंतदेवके चरणोंकी पूजा करनेसे समस्त दुःखोंका नाश होकर मनोभिलाषित कार्यकी सिद्धि होती है, इस कारण आदरपूर्वक प्रतिदिन श्री अर्हंत भगवान्‌की पूजन करनी योग्य है।

वैयावृत्यके अतीचार

दान देनेवाली वस्तुको हरित पत्रसे ढकना, हरित पत्रमें रखना, अनादरसे दान देना, दानकी विधिको भूल जाना और ईर्षाबुद्धिसे दान देना ये पांच वैयावृत्य नामक शिक्षाव्रतके अतिचार हैं।

श्री मुनि महाराज ने कहा—वत्स ! तुझे श्रावकके द्वादश व्रतोंका स्वरूप सुनाया। अब एकादश प्रतिमाओंका स्वरूप प्रतिपादन करता हूं, उसे एकाग्र चित्तसे श्रवण कर। ऐसा करनेसे तेरा अपूर्व कल्याण होगा।

ग्यारह प्रतिमाओंका स्वरूप

श्री मुनि कहने लगे—अहो राजकुमार ! श्री सर्वज्ञ देवने श्रावकोंकी एकादश कक्षा वर्णन की हैं जिन कक्षाओं (प्रतिमाओं के धारण करनेसे पूर्व धारण किये गुणोंके साथ-साथ निज गुणोंकी वृद्धि होती रहती है।

(१) दर्शन प्रतिमाका धारक

जो संसार देह और भोगोंसे विरक्त होता हुआ, पच्चीस मल दोषोंसे रहित अतीचार वर्जित जिसका सम्यग्दर्शन हो तथा सत्यार्थ मार्गके ग्रहणमें तत्पर हो और मद्यादि निवृत्तिरूप अष्ट मूलगुणोंका धारक हो वह दार्शनिक अर्थात् दर्शन प्रतिमाधारी श्रावक होता है।

(२) व्रत प्रतिमाका धारक

जो निःशल्य होता हुआ अतीचार रहित पंच अणुव्रत तथा शील सप्तक अर्थात् तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतों को धारण करता है वह व्रत प्रतिमाका धारक श्रावक माना जाताहै।

(३) सामायिक प्रतिमाका धारक

जो चार आवर्तोंके त्रितय अर्थात् एक २ दिशामें तीन २ आवर्त इस प्रकार चारों दिशाओं प्रति बारह आवर्त तथा चार प्रणाम पूर्वक कायोत्सर्ग सहित वाह्याभ्यतर परिग्रहकी चिंतासे रहित, खड्गासन तथा पद्मासनमेंसे किसी एक आसन सहित मन, वचन, कायकी शुद्धता पूर्वक प्रातःकाल मध्याह्नकाल और सायंकाल एवं तीनों संध्याओंमें अभिवन्दन करता है वह सामायिक प्रतिमाका धारक श्रावक होता है।

(४) प्रोषध प्रतिमाका धारक

जो एक मासमें चारों पर्वों अर्थात् दो अष्टमी दो चतुर्शदशी के दिनोंमें अपनी शक्तिको न छिपाकर शुभ ध्यानमें तत्पर होता हुआ आदि अन्तमें प्रोषधपूर्वक सोलह प्रहरका उपवास धारण करता है वह प्रोषध प्रतिमाका धारक श्रावक होता है।

(५) सचित्त त्याग प्रतिमाका धारक

जो अपक्व अर्थात् अग्निका बिना पका तथा वृक्षका विना पका। मूल, फल, शाक, शाखा, गांठ, कंद, पुष्प और बीजका भक्षण नहीं करता वह दयामूर्ति सचित्त त्याग प्रतिमाका धारक श्रावक होता है।

(६) रात्रिभुक्ति त्याग प्रतिमाका धारक

जो जीवोंकी दयामें तत्पर होता हुआ रत्रि समय चावल, दाल आदि अन्न, दुग्ध जलादि पान, मोदकादि खाद्य और चाटने योग्य रबड़ी आदि लेह्य एवं चार प्रकारके आहारका

त्याग करता है वह रात्रिभुक्ति त्याग नामक प्रतिमाका धारक श्रावक होता है।

(७) ब्रह्मचर्य प्रतिमाका धारक

जो मलका बीजभूत, मलको उत्पन्न करनेवाले, मल प्रवाही दुर्गंधियुक्त, और लज्जाजनक अंगको देखकर काम सेवनसे सर्वथा विरक्त हो जाता है अर्थात् सर्वथा स्त्री मात्रका त्याग करता है वह ब्रह्मचर्य प्रतिमाका धारक श्रावक होता है।

(८) आरम्भ त्याग प्रतिमाका धारक

जो जीवदयाका पालन, जीव हिंसाके कारण नौकरी, खेती और वाणिज्य आदि व्यापारोंके आरम्भसे विरक्त होता है वह आरम्भ त्याग नामक प्रतिमाका धारक श्रावक होता है।

(९) परिग्रह त्याग प्रतिमाका धारक

जो बाह्य दश प्रकारके परिग्रहसे ममताको छोड़कर निर्ममत्वमें दत्त चित्त होता हुआ मायादि रहित सन्तोष वृत्तिमें संलग्न हैं वह परिग्रह त्याग नामक प्रतिमाका धारक श्रावक होता है।

(१०) अनुमति त्याग प्रतिमाका धारक

जिस दया निधिकी अनुमति आरम्भ, परिग्रह और लौकिक कार्योंमें समान बुद्धि धारण करती है वह अनुमति त्याग प्रतिमाका धारक श्रावक होता है।

(११) उत्कष्ट श्रावक

जो गृहस्थाश्रमका त्याग कर मुनियोंकी भांति तपोवनमें जाकर गुरुके निकट व्रत धारण करके तपश्चरण करता हुआ भिक्षा भोजन करता है वह खण्ड वस्त्रका धारक उत्कृष्ट श्रावक कहलाता है।

इस एकादशमी प्रतिमाके क्षुल्लक और ऐलक एवं दो भेद

हैं जिनमें क्षुल्लक तो साढ़े तीन हाथ प्रमाण पिछोड़ी और लगोंटी मात्र परिग्रह रखते हैं, और ऐलक केवल लगोंटी ही रखते हैं। शेष क्रिया दोनोंकी समान हैं !

श्री मुनिराजने और भी कहा—

राजकुमार ! इस उत्कृष्ट श्रावक अर्थात् ऐलक वृत्ति पर्यन्त तो श्रावक ही है, इसके ऊपर मुनिव्रत होता है किन्तु ये ऐलक और क्षुल्लक भी श्री मुनिराजके लघुभ्राता हैं । इस व्रतके धारण करनेसे मुनिव्रतका पालन करना सहज है इसी कारण, इस समय तुझे क्षुल्लक व्रतके धारनेकी प्रेरणा करता हूँ ।

वत्स ! सबसे प्रथम इस बातका विचार करना चाहिये, कि इस जीवका पाप तो शत्रु है, और धरम मित्र है ऐसा विचार करता हुआ, जो शास्त्रको जानता है, वही श्रेष्ठ ज्ञाता होता है।

राजकुमार ! जिस महानुभावको अपनेको निर्दोष ज्ञान दर्शन और चारित्र रूपी रत्नोंका पिटारा वनाना हो, उसे तीनों जगतमें पतिकी भांति इच्छा करके धर्म, अर्थ, काम, और मोक्ष एवं पुरुषार्थ रूपी बनिता, स्वयं प्राप्त हो जाती है।

प्रिय अभयरुचि कुमार ! हिंसानंद, मृषानंद, चौर्यानंद और परिग्रहानंद ये चार प्रकारके रौद्रध्यान इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग, पीड़ा चितवन और निदान बन्ध, ये चार प्रकारके आर्त्तध्यान, इस प्रकार नरक तिर्यंच गतिके कारण दोनों ध्यानों का त्यागकर निरंतर धर्मध्यानमें तत्पर रहना योग्य है ।

मूल प्राकृत

हायवम्मह तावउ कयसमभावऊ दुग्गइ गमन निवारणिउ ।
चिंतह अणुपेक्खउ जगगुरुसिखउ धम्मरुक्खजल सारणि ।

संस्कृत छाया

हतमन्मथतायाः कृतसमभाया दुर्गतिगमननिवारिका ।
चिंततं अनुप्रेक्षा जगत् गुरु शिक्षा धर्मबृक्ष जलसारिण्यः ।

भावार्थ—जो कामदेवको नाशने वाली, सम भावकी करनेवाली, दुर्गतिके गमनसे निवारनेवाली, जगत गुरुकी शिक्षा और धर्मरूप वृक्षकी वृद्धिके अर्थ जलकी सारिणी समान है ऐसी वारह अनुप्रेक्षाओंका चितवन करना योग्य है।

वारह अनुप्रेक्षाओं का (भावना) स्वरूप

मूल प्राकृत

अद्धुव असंरण भणिया संसारामेगमण्णमसु इत्तं।
आसव संवरणामा णिज्जर लोयाणुपेहाओ॥
इयजाणिउण भावहु दुल्लह धम्माणु भावणा णिच्चं।
मणवयण कायसुद्धी एदो उद्देसदो भणिया॥

संस्कृत छाया

अध्रुवं अशरणं भणिताः संसारः एकं अन्यत् अशुचित्वम्।
आस्रवः संवर नामा निर्जरा लोकानुप्रेक्षा॥
इति ज्ञात्वा भावयत् दुर्लभ धर्मानुप्रेक्षा नित्यं।
मनो वचन काय शुद्धा एताः उद्देशतः भणिताः॥

भावार्थ—भो भव्य जीव हो! ये अनुप्रेक्षा नाममात्रसे जिन देवने कही हैं उनको जानकर, मन वचन कायकी शुद्धतापूर्वक, जैसा कि आगे कहेंगे, उस प्रकार उनका चितवन करो, वे अध्रुव (अनित्य) १, अशरण २, संसार ३, एकत्व ४, अन्यत्व ५, अशुचित्व ६ आस्रव ७, संवर ८, निर्जरा ९, लोक १०, दुर्लभ ११, और १२ धर्म एवं वारह हैं।

उपर्युक्त द्वादश भावनाओंका समुच्चय अर्थ इस प्रकार है कि जो अस्थिर है, वह अध्रुव अर्थात् अनित्य, जिसमें शरण नहीं वह अशरण, जो सार रहित और जिसमें भ्रम हो वह संसार, जो सबसे पृथक् हो वह अन्यत्व, जो अशुचित्व है वह

अशुचित्व, जिसद्वारा कर्म आवे वह आस्रव, जो कर्मोंके द्वारको रोके वह संवर, जो उदय अनुदय कालमें कर्म क्षयहो वह निर्जरा जो षट् द्रव्यका समुदाय है वह लोक जो अति कठिनतासे प्राप्त होय वह दुर्लभ। और जो संसार-सागरसे उद्धार कर मोक्ष स्थानमें स्थापन करे वह धर्म, इस प्रकार सामान्य अर्थ है।

अध्रुव (अनित्य) अनुप्रेक्षा

मूल प्राकृत

जंकिपिवि उप्पणं तस्स विणासो हवेइ णियमेण।
परिणाम सरुवेण विणय किंपि वि सासयं अस्थि॥

संस्कृत छाया

यत्किमपि उत्पन्नं तस्य विनाशो भवति नियमेन।
परिणामस्वरूपेण अपि न च किं अपि शास्वतं अस्ति॥

भावार्थ—जो कुछ उत्पन्न हुआ है उसका नियमसे नाश होता है किंतु परिणाम स्वरूप कर कुछ भी शास्वता नहीं, अर्थात् समस्त वस्तु सामान्य विशेषात्मक हैं; तहां सामान्य तो द्रव्य रूप और विशेष गुण पर्याय स्वरूप है, सो द्रव्य कर वस्तु नित्य है तथा द्रव्यके आश्रय होनेसे गुण भी नित्य है।

किंतु पर्याय अनित्य है, इसीको परिणाम भी कहते हैं, संसारी जीवोंके पर्याय बुद्धि हो रही है, सो वे पर्यायके उत्पन्न और विनाश होता देखहर्ष विषाद करते हैं, तथा उसको नित्य रखना भी चाहते हैं, परंतु इसी अज्ञानतासे व्याकुल होते हैं इस कारण उसे इस अनुप्रेक्षाका चिंतवन करना उचित है।

इस प्रकार विचार करना कि द्रव्य कर तो शास्वता आत्म द्रव्य हूँ, और जो उत्पाद विनाश होता है, वह पर्यायका स्वभाव है, इसमें हर्ष विषाद क्यों करना? क्योंकि जो यह शरीर है, वह जीव और पुद्गल जनित पर्याय है; धन धान्यादि है, वे

पुद्गल परमाणुओंके स्कंध पर्याय हैं, इनका मिलना बिछुरना नियमपूर्वक अवश्य होता है।

इसमें जो स्थिर बुद्धि धारण करता है, सो यही मोह जनित भाव है, इस कारण वस्तुका स्वरूप जानकर हर्ष विषाद रूप नहीं होना।]

मूल प्राकृत

जम्मं मरणेन समं संपज्जइ जुव्वणं जरा सहियं।
लच्छी विनास सहिया इय सव्वं भंगुरं मुणह ॥

संस्कृत छाया

जन्म मरणेन समं संपद्यते यौवनं जरासहितम्।
लक्ष्मीः विनाश सहिता इति सर्वं भंगुरं जानीत ॥

भावार्थ—जो जन्म है वह मरण सहित है, यौवन है वह जरा (वृद्धत्व) सहित उत्पन्न होता है, और जो यह लक्ष्मी है, वह विनाश सहित है, इस प्रकार सर्व वस्तुको भंगुर (विनाश सहित) ही ज्ञात करो।

जगत्में यावन्मात्र अवस्था है, वह समस्त प्रतिपक्षी भावको लिये हुए है परन्तु यह प्राणी, जब जन्म होता है, तब उसे स्थिर मानकर हर्ष करता है, जब मरण होता है, तब गया जानकर शोक करता है। इसी प्रकार इष्टकी प्राप्तिमें हर्ष और अप्राप्ति विषाद, तथा अनिष्टकी प्राप्तिमें विषाद और अप्राप्तिमें हर्ष करता है।

सो यह समस्त मोह (अज्ञान) का महात्म्य है, इस कारण ज्ञानी जनोंको वस्तुका स्वरूप विचार कर सम भाव रूप रहना ही योग्य है।

श्लोक

लावण्ययौवन मनोहरणीयताद्या:
काय्र्येष्वमी यदिगुणाश्चिरमावसंति ।
संतो नत्रातु रमणी रमणीय सारं,
संसारमेनमवधारयितुं यतंते ।।१।।

यदि, ये लावण्यता, तरुणता, और मनोहरता आदि गुण, इस शरीरमें चिरकाल पर्य्यन्त निवास करते तो उत्तम पुरुष (तीर्थंकर चक्रवर्त्यादि) इस प्रत्यक्षीभूत कमनीय कामिनियों कर मनोहर मध्य युक्त संसारके त्यागनेका कदापि उद्यम न करते ।

उत्तम पुरुषोंने जो संसारका त्याग किया है, सो इसी हेतुसे कि इस नाशवान् संसारमें यावन्मात्र वस्तु है वह समस्त विनाशीक है, ऐसा जानकर अहो ज्ञानी जन ही किसी वस्तुके उत्पाद में हर्ष और विनाशमें विषाद कदापि मत करो ।

गजल पंजाबी—यह रेखता तथा और अनेक धुनियोंमें होता है ।

तन धन युवन कुटम्ब विभव अनित्य जानिये ।
राचौ न जगत जीव, सकल अथिर मानिये ।।टेक।।
जे भोग इंद्रियनके विनाशीक जानिये ।
चपला चपल जु क्षिनकमें बिलै गई ।।
मोहित भये स्थिर जानके ये मूढ़ बखानिये ।
राचो न जगत जीव सकल अथिर मानिये ।।१।।
सुर इंद्र चक्र धर खगेन्द्र संपदा गनो ।
नाशै है गवनमें मेघ जों करते जतन घनो ।।
स्वामी अनित्य लखि तजी वैराग्य ठानिये ।
राचौ न जगत् जीव सकल अथिर मानिये ।।२।।
जे इष्ट वस्तु पाय मूढ़ नित्य मानते ।
इक क्षिनमें विघट जाईगों मेला समानते ।।

इम जानि विरत हूजिये कर्मनको भानिये ।
राचो न जगत जीव सकल अथिर मानिये ॥३॥
यह भावना भावो सदा कल्याणकारिणी ।
वैराग्य मात भविनको भव सिंधु तारिनी ॥
चिंतो 'हजारी' बार बार मत भुलानिये ।
राचो न जगत जीव सकल अथिर मानिये ॥४॥

अशरण अनुप्रेक्षा

मूल प्राकृत

तत्थ भवे किं सरणं जत्थ सुरिंदाण दीसये विलओ ।
हरिहर वंभादीया कालेण कवलिया जत्थ ॥

संस्कृत छाया

तत्र भवे किं शरणं यत्र सुरेंद्राणां दृश्यते विलयः ।
हरिहर ब्रह्मादयः कालेन च कवलिताः यत्र ॥

भावार्थ—जिस संसारमें देवोंके इन्द्रोंका विनाश देखा जाता है। जहां ब्रह्मा, विष्णु महेश तथा आदि शब्दसे तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि पदवीधारक कालके ग्रास वन गए, उस संसारमें क्या कहीं भी शरण है अर्थात् नहीं है ।

भावार्थ—शरण उसे कहते हैं जहां अपनी रक्षा हो सके सो संसारमें जिनका शरण विचार किया जाता है वे ही जव काल के ग्रास वन जाते हैं, तो फिर शरण किसका ? अर्थात् इस संसारमें किसीका शरण नहीं । जैसे—

मूल प्राकृत

सीहस्स कमे पडिदं सारंगं जहण रक्खदे को वि ।
तह मित्तुणाय गहियं जीवं पि णं रक्खदे को वि ॥

संस्कृत छाया

सिंहस्य क्रमे पतितं सारंग यथा न रक्ष तेकः अपि ।
तथा मृत्युना च गृहीतं जीवम् अपि न रक्ष तेकः अपि ॥

मूलार्थ—जैसे अरण्यमें सिंहके पगतले पड़े हुए हिरणको कोई भी राखनेवाला नहीं है उसी प्रकार इस संसारमें काल कर ग्रसित प्राणीकी रक्षा करनेमें कोईभी सामर्थ्यवान नहीं है।

मूल प्राकृत

णरु सोक्स समीहइ मरणहो वीहइ देवहं सरणु पइसरइ ।
सिज्जहं घरु गच्छइ मन्तुप इच्छइ खयकाल हो णउ उपव्वरइ॥

संस्कृत छाया

नरः सौख्यं समीहति मरणात् विभेति देवतानां शरणं प्रति सरति ।
वैद्यानां गृहं गच्छति मंत्रं प्रपच्छति क्षयकाले न उवरति ॥

मूलार्थ—यह मनुष्य सुखकी इच्छा करता है और मरणसे डरता है इस कारण क्षेत्रपालादि देवताओंके शरणको प्राप्त होता है, वैद्योंके घर जाता है, मन्त्र यन्त्रादि पूछता है, परन्तु तो भी क्षय कालसे निवृत्त नहीं होता ।

मूल प्राकृत

जइ देवो विय रक्खइ मन्तो तन्तो य खेत्त पालो य ।
मिय माणं पि मणुस्सं तो मणुया अक्खया होंति ॥

संस्कृत छाया

यदि देवाः अपि च रक्षति मन्त्रः तन्त्रः च क्षेत्रपालः च ।
म्रियमाणं अपि मनुष्यं तत् मनुजाः अक्षया भवन्ति ॥

मूलार्थ—जो मरणको प्राप्त होते हुए मनुष्यको कोई देव मन्त्र, तन्त्र, और क्षेत्रपाल, उप लक्षणसे, लोक जिसको रक्षक मानते हैं, वे सबही, रखनेवाले होजाय तो, यह मनुष्य अक्षय होजाय अर्थात् कोई मरे ही नहीं ।

भावार्थ—मूढ़लोक निज जीवितव्यके निमित्त, रागी द्वेषी देव अर्थात् पद्मावती, क्षेत्रपाल, ऊत, पितर, सती, शीतला, देवी, दुर्गा, भवानी, महादेव मसानी, सेढ़ू, बूढ़ा वावू, गूंगापीर सैय्यद, ख्वाजापीर, कमालखाँ, जाहरपीर, नगरे, जखईया, लालगुरु, मलामान, कालूखां, कंठीमाता, दशमाबीबी, नूरी शहजादी आदि देवताओंकी पूजा करते हैं, तथा अनेक प्रकार के मन्त्र यन्त्र और तन्त्र आदि उपचार करते हैं।

इसके सिवाय और भी अनेक मिथ्यात्व सेवन करते हैं; परन्तु वास्तविक विचार किया जाय तो यही निश्चित होता है कि उपर्युक्त देवताओंमें कोई भी ऐसा नहीं जो इस जीवको मरणसे बचा सके। यदि कोई भी किसीको मरणसे राखनेवाला होता तो संसारमें कोई मरता ही नहीं।

इससे यही सिद्ध होता है कि जो मरण होता है वह आयुके क्षय होनेसे होता है, सो आयुका देनेवाला कोई है नहीं। यदि कोई आयुका दाता होता तो वह स्वयं अपनी आयु बढ़ा लेता सो कोई है नहीं।

इस कारण कुदेवादिका पूजन रूप, मिथ्या भावका त्याग कर निश्चय तो निज स्वभावका शरण है और व्यवहारमें पंच-परमेष्ठीका शरण है, सो इसीको ग्रहण करना उचित है।

भजन तथा अन्य धुनिमें भी होता है।

या जगमें जियको शरण मिलो नहीं कोई।
जब कृतांत, अजगर मुख वायो देखत निगल गयोई॥
या जगमें जियको शरण मिलो नही कोई॥ टेक॥
जो मृगछाव गृहो हरिने फिर कौन सहायक होई॥
या जगमें जियको शरण मिलो नहीं कोई॥ १ ॥टेक॥
इन्द्र धनेन्द्र फनेन्द्र बचे नहीं, जब यम गहत सिरोही।
या जगमें जियको शरण मिलो नहीं कोई॥ २ ॥टेक॥

तज परिग्रह वैराग्य धरो चित ध्यावौ 'हजारी' वोई।
या जगमें जियको शरण मिलो नहीं कोई ॥ ३ ॥टेक॥

दोहा

वस्तु स्वभाव विचारते, शरण आपको आप।
व्यवहारे पण परम गुरु, अवर सकल सन्ताप ॥

अथ संसारानुप्रेक्षा

मूल प्राकृत

एक्कं च यदि सरीरं अण्णं गिह्लेदि णवणवं जीवो।
पुणु पुणु अण्णं अण्णं गिह्लदि मुंचेदि बहुवारं ॥
एकं जं संसरणं णाणादेहेसु हवदि जीवस्स।
सो संसारो भणदि मिच्छकसायेहिं जुत्तस्स ॥

संस्कृत छाया

एकं त्यजति शरीरं अन्यंत् गृराहाति नवं नवं जीवः।
पुनः पुनः अन्यत् अन्यत् गृराहाति मुंचति बहुवारं ॥
एवं यत् संसरणं नानादेहेषु भवति जीवस्य।
सः संसारः भण्यते मिथ्याकषायैः युक्तस्य ॥

मूलार्थ—एकान्त वस्तु स्वरूपके श्रद्धान रूप मिथ्यात्व और क्रोध, मान माया, और लोभ एवम् चार कषाय, इ युक्त जीवके जो अनेक देहोंमें संसरण (भ्रमण) होता है, वही संसार है, सो इस प्रकार कि, एक शरीरको छोड़ अन्य शरीर को ग्रहण करे, पुनः ग्रहणकर उसे भी छोड़े, तथा अन्यको ग्रहण करे, इसी प्रकार वार-वार ग्रहण करे, और छोड़े, वही संसार है।

इस संसारमें, संक्षेपतया चार गति हैं, तथा अनेक प्रकार दुःख हैं, तिनमें प्रथम नरक गतिके दुःखोंको दिखाते हैं

मूल प्राकृत

पावोदयेण णरए जायदि जीवो सहेदि वहुदुक्खं।
पंचपयारं विविहं अणोवमं अणदुक्खे हिं ॥

संस्कृत छाया

पापोदयेन नरके जायते जीवः सहते बहु दुःखं।
पंच प्रकारं विविधं अनुपमं अन्य दुःखैः ॥

मूलार्थ—वह जीव पापके उदयसे नरकमें पैदा होता है, वहां अनेक भांति तथा पांच प्रकारके उपमा रहित दुःखोंको सहन करता है।

भावार्थ—जो जीवोंकी हिंसा करता है, मिथ्या भाषण करता है, चोरीमें तत्पर है, परस्त्रीका सेवन करता है, और बहुत आरम्भ तथा परिग्रहमें आसक्त रहता है, तथा बहुक्रोधी, प्रचुर मानी, अति कपटी, महा कठोर भाषी, पापी, चुगल, कृपण, देवशास्त्र गुरुका निंदक, अधम, दुर्बुद्धि, कृतघ्नी, शोक और दुःख करनेवाला जीव, मरकर नरकोंमें पड़ता है। वहां छेदन, भेदन, ताडन, मारण और शूलीरोहण एवम् पंच प्रकार तथा अनेक प्रकार दुःखों को सहता है।

मूल प्राकृत

तत्तो णीसरिऊणं जायदि तिरएसु बहुवियप्पसु।
तत्थ वि पावदि दुःखं गब्भे वि य छेयणादीयं ॥

संस्कृत छाया

ततः निःसृत्य जायते तिर्यक्षु बहु विकल्पेषु।
तत्र अपि प्राप्नोति दुःखं गर्भे अपि च वेदनादिकं ॥

मूलार्थ—तहां नरकोंसे निकलकर अनेक भेद रूप तिर्यञ्च योनियोंमें उत्पन्न होता है। वहां भी गर्भमें दुःखोंको प्राप्त होता है। तथा अपि शब्दसे सन्मूर्छन होकर छेदनादिकके दुःखों को सहता है।

भावार्थ—यह पूर्वोक्त पापकर्मोंके योगसे नरकोंकी असह्य वेदना को सहन कर पश्चात् अनेक प्रकार तिर्यञ्च योनिमें उत्पन्न होता है ।

वहां निगोद राशि, स्थावर काय, तथा त्रसपर्याय धारण कर जिह्वालम्पटी मनुष्य तथा तिर्यञ्चोंका भक्ष्य बनता है अथवा परस्पर एक दूसरेका भक्षण करता शीत, ऊष्ण, भूख, प्यास, रोग, अति भारारोहण, बध बन्धन आदि दुःखोंको भोगता है ।

मूल प्राकृत

एवं बहुप्पयारं दुःखं विसहेदि तिरियजोणीसु ।
तत्तोणीसरऊणं लद्धि अपुण्णो णरो होइ ॥

संस्कृत छाया

एवं बहुप्रकारं दुःखं विसहते तिर्यग्योनिषु ।
ततः निःसृत्य लब्धि अपूर्णः नरः भवति ॥

मूलार्थ—ऐसे पूर्वोक्त प्रकार तिर्यंच योनियोंमें यह जीव अनेक प्रकार दुःखोंको सहता है पश्चात् वहांसे निकलकर लब्धि अपर्याप्त मनुष्य होता है ।

मूल प्राकृत

अहगब्भे वि य जायदि तत्थ वि णिवड़ीकयंगपच्चंगो ।
विसहदि तिव्वं दुक्खं णिग्गममाणो वि जोणीदो ॥

संस्कृत छाया

अथगर्भे अपि च जायते तत्र अपि निवड़ीकृतांगप्रत्यंग ।
विसहते तीव्रंदुःखं निर्गममानः अपियोनितः ॥

मूलार्थ—तदनन्तर गर्भमें भी उत्पन्न होय तो वहां भी एकत्र संकुचित हस्त पादादि अङ्ग तथा अंगुली आदि प्रत्यंग होता हुआ दुःखोंको सहन करता है पश्चात् योनिसे निकल तीव्र दुःखोंमें पड़ता है ।

मूल प्राकृत

वालोपि पियरचत्तो परउच्छट्ठेन वड्ढते दुहिदो ।
एवं जायणसीलो गमेदि कालं महादुक्खं ॥

संस्कृत छाया

वालः अपि पितृत्यक्तः परोच्छिष्टेन वर्द्धते दुःखितः ।
एवं याचनाशीलः गमयति कालं महादुःखम् ॥

भावार्थ—गर्भसे निकल पश्चात् वाल्यावस्थामें ही यदि माता पिताका मरण हो जाय तो अन्य पुरुषोंकी उच्छिष्ट [जूंठन] से वृद्धिगन्त होता याचना-स्वभाव होकर काल व्यतीत करता है ।

मूलार्थ

पावेण जणो एसो दुक्कम्मवसेन जायदे सव्वो ।
पुनरवि करेदि पावं ण य पुण्णं को वि अज्जेदि ॥

संस्कृत छाया

पापेन जनः एषः दुष्कर्मवशेन जायते सर्वः ।
पुनः अपि करोति पापं न च पुण्यं कः अपि अर्जयति ॥

मूलार्थ—यह जन पापोदयसे असाता वेदनीय नीच गोत्र अशुभ नाम और कुत्सित आयु एवं दुष्कर्मके वशसे दुःखोंको सहता है तो भी पुनः पाप ही करता है किन्तु पूजा, दान, व्रत, तप और ध्यानादि लक्षणयुक्त पुण्य कर्म नहीं करता वह महान् अज्ञान है ।

मूल प्राकृत

विरलो अज्जदि पुणं सम्मादिट्ठी वयेहिं संजुत्तो ।
उवसमभावे सहियो णिंदण रहाहि संजुत्तो ॥

संस्कृत छाया

विरलः अर्जयति पुण्यं सम्यग्दृष्टि व्रतैः संयुक्तः ।
उपशमभावेन संहितः निंदन गर्हाभ्यां संयुक्तः ॥

मूलार्थ—यथार्थ श्रद्धावान् सम्यग्दृष्टि तथा मुनि अथवा

श्रावकके व्रतों कर सहित मन्द कषायरूप परिणाम उपशम भाव अपने दोषोंमें स्वयं पश्चाताप करना, निन्दना, अपने दोषों गुरुजनके निकट प्रकाशित करना, गर्हा एवं पुराण प्रकृतिको कोई विरला ही जीव उत्पन्न करता है।

उपर्युक्त पुण्य कर्मों के भी इष्ट वियोगादि दृष्टिगत होते हैं।

मूल प्राकृत

पुण्यजुदस्स वि दीसइ इट्ठविओयं अणिट्ठसंजोय।
भरहो वि साहिमाणो परिज्जओ लहुयभायेण॥

संस्कृत छाया

पुण्णयुतस्य अपि दृश्यते इष्टवियोगः अनिष्टसंयोगः।
भरतः अपि साभिमानः पराजितः लघुकभ्राता॥

मूलार्थ—पुण्योदय सहित पुरुषके इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग दृष्टिगत होता है, देखो अभिमान सहित भरतचक्रवर्ती भी लघु भ्रात बाहुबली द्वारा पराजित हुए।

भावार्थ—कोई ऐसा जानता होगा कि जिनके विशेष पुण्य का उदय होता है वे सर्वप्रकारसे सुखी हैं किन्तु उनके किसी प्रकार इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग नहीं होता होगा।

सो ऐसा नहीं क्योंकि देखो भरतचक्रवर्ती सरीखे उत्तम पुरुष भी जबकि लघु भ्रात बाहुबली द्वारा अपमानित हुए तो अन्य पुरुषकी क्या कथा है?

मूल प्राकृत

सयलट्ठविसहजोओ बहुपुणस्स वि ण सब्वदोहोदि।
तं पुण्णं पि ण कस्स वि सब्वं जे णिच्छिदं लहदि॥

संस्कृत छाया

सकलार्थ विषययोगः वहु पुण्यस्य अपि न सर्वत्र भवति।
तत् पुण्यं अपि न कस्य अपि सव येन निश्चितं लभते॥

मूलार्थ—इस संसारमें समस्त पदार्थ ही भोग्य वस्तु हैं उनका संयोग बड़े पुण्यवानोंको सर्वांगरूपसे नहीं होता क्योंकि ऐसा पुण्य तो नहीं जिसकर समस्त मनोभिलषित वस्तुकी प्राप्ति हो।

भावार्थ—वड़े पुण्यवानोंके भी वांछित वस्तुमें किञ्चित् न्यूनता रहती ही है अर्थात् सर्व मनोरथ किंसीके भी पूर्ण नहीं होते तो सर्व सुखी कैसे हो सकते हैं ?

समस्त सामिग्रीका मिलना अति दुर्लभ है।

मूल प्राकृत

कस्य विणत्थि कलत्तं अहव कलत्तं ण पुत्तसंपत्तीः।
अहतेसिं संपत्ती तह वि सरोओ हवे देहो ॥

संस्कृत छाया

कस्य अपि नास्ति कलत्रं अथवा कलत्रं न पुत्रसंप्राप्तिः।
अथ तेषां संप्राप्तिः तथापि सरोगः भवेत् देहः ॥

मूलार्थ—किसी मनुष्यके तो स्त्री नहीं, किसीके यदि स्त्री भी है तो पुत्रकी प्राप्ति नहीं है और किसीके पुत्रकी भी प्राप्ति हुई तो शरीर सरोग है।

मूल प्राकृत

अह नीरोओ देहो तो धणधण्णाण णेय संपत्ति।
अथ धणधणं होदि हु तो मरणं झत्ति ढुक्केइ ॥

संस्कृत छाया

अथ नीरोगः देहः तत् धनधान्यानां नैव संप्राप्तिः।
अथ धन धान्यं भवति खलु तत् मरणं झगिति ढौकते ॥

मूलार्थ—यदि किसीके नीरोग देह भी है तो धन धान्यादि की प्राप्ति नहीं और यदि धन धान्यादिकी भी प्राप्ति हो जाय तो शीघ्र ही मरण हो जाता है।

मूल प्राकृत

कस्स वि दुट्ठकलित्तं कस्स वि दुव्वसणवसणिओ पुत्तो ।
कस्स वि अरिसम बन्धू कस्स वि दुहिदा वि दुच्चरिया ।।

संस्कृत छाया

कस्य अपि दुष्ट कलित्र कस्य अपि दुर्व्यसन व्यसनिकः पुत्रः ।
कस्य अपि अरिसम बन्धुः कस्य अरि दुहिता अपि दुश्चरित्रा ।।

मूलार्थ—इस मनुष्य भवमें किसीके स्त्री दुराचारिणी है, किसीके द्यूतादि व्यसनोंमें रत पुत्र है, किसीके शत्रु समान बन्धु हैं और किसीके दुश्चारिणी पुत्री है ।

मूल प्राकृत

कस्स वि मरदि सुपुत्तो कस्स वि महिला विणस्सदे इट्ठा ।
कस्स वि अग्गिपलित्तं गिहं कुडंबं च डज्झेइ ।।

संस्कृत छाया

कस्य अपि म्रियते सुपुत्रः कस्य अपि वनिता विनश्यते इष्टा ।
कस्य अपि अग्निप्रलिप्तं गृहं कुटुंबं च दह्यते ।।

मूलार्थ—किसीका तो उत्तम पुत्र मर जाता है, किसीकी प्रिय स्त्रीका विनाश हो जाता है और किसीका गृह कुटुम्ब अग्निमें दग्ध हो जाता है ।

मूल प्राकृत

एवं मणुयगदीए णाणादुक्खाइं विसहमाणो वि ।
ण वि धम्मे कुणदि मइं आरम्भं णेय परिचइ ।।

संस्कृत छाया

एवं मनुजगत्यां नाना दुःखानि विसहमानः अपि ।
नअपि धर्मे करोति मतिं आरंभं नैव परित्यजति ।।

मूलार्थ—इसप्रकार पूर्वोक्त मनुष्यपर्यायमें अनेक प्रकार दुखोंको सहन करता हुआ भी जीव धर्ममें बुद्धि नहीं करता किंतु पापारंभ करता है ।

मूल प्राकृत

सधणो विहोदि णिधणो धणहीणो तह य ईसरो होदि ।
राया विहोदि भिच्चो भिच्चो वियहोदि णरणाहो ॥

मूलार्थ—जो धनवान है वह निर्धन होजाता है इसी प्रकार निर्धन है वह धनवान् होजाता है, तथा जो राजा है वह सेवक होजाता और जो सेवक है वह नरनाथ होजाता है ।

मूल प्राकृत

सत्तू वि होदि मित्तो मित्तो वि य जायदे तहा सत्तू ।
कम्मविवायवसादो एसो संसारसब्भावो ॥

संस्कृत छाया

शत्रुः अपि भवति मित्रं मित्र अपि च जायते तथा शत्रुः ।
कर्मविपाकवशात् एषः संसार सद्भावः ॥

मूलार्थ—कर्मोदयके वशसे जो शत्रु है वह मित्र होजाता है और जो मित्र है वह शत्रु होजाता है, यह संसारका स्वभाव ही ऐसा है ।

भावार्थ—पुण्यकर्मके उदयसे शत्रु भी मित्र होजाता है और पापोदयसे मित्र भी शत्रु होजाता है, क्योंकि संसारमें कर्म ही वलवान है ।

मूल प्राकृत

अह कहवि हवदि देवो तस्स य जायेदि माणसंदुक्खं ।
दट्ठूण महद्धीणं देवाणं रिद्धिसम्पत्ती ॥

संस्कृत छाया

अथ कथमपि भवि देवः तस्य च जायते मानसं दुक्खं ।
दृष्वा महर्द्धीनां देवानां ऋद्धि संप्राप्ति ॥

मूलार्थ—अथवा किसी प्रकार महान् कष्टसे देवपर्याय भी पावे तो महर्द्धिक देवोंकी ऋद्धि सम्पदाको देखकर मानसिक दुःख उत्पन्न होता है ।

मूल प्राकृत

इट्ठ विश्रोगं दुक्खं होदि महद्धीण विसय तण्हादो ।
विसयवसादो सुक्खं जेसिं तेसिं कुतो तित्ती ॥

संस्कृत छाया

इष्टवियोगं दुःक्खं भवति महद्धीनां विषयतृष्णातः ।
विषयवशात् सुखं येषां तेषां कुतः तृप्तिः ॥

मूलार्थ—महर्द्धिक देवोंके भी ऋद्धि और देवाँगनाओंके वियोगरूप इष्टवियोगसे दुःख होता है। जिनके विषयोंके आधीन सुख है उनको तृप्ति कहां क्योंकि तृष्णा निरन्तर वृद्धिगत होती ही है।

शारीरिक दुःखसे मानसिक दुःख प्रवल है ।

मूल प्राकृत

सारीरीरिय दुक्खादो माणसदुःखं हवेइ अइपउरे ।
माणसदुःखजुदस्स हि विसया वि दहावहा हुंति ॥

संस्कृत छाया

शारीरिक दुःखात् मानस दुक्खं भवति अति प्रचुरं ।
मानसदुःखयुतस्य हि विषयाः अपि दुःखावहाः भवंति ॥

मूलार्थ—कोई जानेगा कि शरीर सम्बन्धी दुःख बड़ा है, और मनका दुःख अल्प है परन्तु शारीरिक दुःखसे मानसिक दुःख प्रचुर है क्योंकि मानसिक दुःख सहित पुरुषके अन्य बहुत विषय होते हुए भी दुःखोत्पादक ही दृष्टिगत होते हैं यह सत्य ही है। जिस समय किसी भी प्रकारकी मानसिक व्यथा होती है उस समय समस्त सामग्री दुःख रूप ही ज्ञात होती है ।

मूल प्राकृत

एवं सुट्ठू असारे संसारे दुःख सायरे घोरे ।
किं कत्थ वि अत्थि सुहं वियारमाणं सुणिच्चयदो ॥

संस्कृत छाया

एवं सुष्टु असारे संसारे दुःखसागरे घोरे ।
किं कुत्र अपि अस्ति सुखं विचार्यमाणं सुनिश्चयतः ।।

मूलार्थ—ऐसे पूर्वोक्त प्रकार दुःख-सागर घोर और असार संसारमें यदि निश्चय पूर्वक विचार किया जाय तो क्या कहीं भी सुख है ? अर्थात् कहीं नहीं ।

भावार्थ—चतुर्गतिरूप संसारमें चारों ही गतियां दुःखरूप हैं इस कारण संसारमें सुखका लेश भी नहीं ।

मूल प्राकृत

इय संसारं जाणिय मोहं सव्वायरेण चइऊण ।
तं झायह ससहावं संसरणं जेण णासेइ ।।

संस्कृत छाया

इति संसारं ज्ञात्वा मोहं सर्वादरेण त्यक्त्वा ।
तं ध्यायति स्वस्वभावं संसरणं येन नश्यति ।।

मूलार्थ—इस प्रकार संसारको ज्ञात कर सर्व भांति पुरुषार्थ कर मोहको त्याग निज आत्माका ध्यान करो जिससे भ्रमणशील संसारका नाश हो जाय ।

धुनि गौड़की

संसार चतुर्गति दुख निवास,
या महि कदापि नहिं सुख आस ।
भ्रमबुधिकर राचे तेई डूबे जगमाहीं,
संसार चतुर्गति दुःख निवास ।।१।।
दारुण अति नर्क तनों असर्म,
तिथि उदधि जु तेतीस आयु कर्म ।
मारु मारु है सदैव साता रचहूंको नाहीं,
संसार चतुर्गति दुख निवास ।।२।।

इक द्वै त्रय चौ पन भेद करण,
इक स्वास अठारह जन्म मरण।
सूक्ष्म वादर विकलतिर जगमें लहाहीं,
संसार चतुर्गति दुख निवास ॥३॥
मानुष भवमें वह कष्ट भोग,
इष्ट देवको वियोग अनिष्ट संयोग।
जन्म मरण जरा रोगादिक ताई,
संसार चतुर्गति दुःख निवास ॥४॥
मानसीक दुःख देवायु पाइ,
पर विभव देख मूरख बनाय।
मात भूलोरे हजारी विरकत इकठा ही,
संसार चतुर्गति दुख निवास ॥५॥
दोहा—पंच परातंन मयी, दुःख रूप संसार।
मिथ्या कर्म उदें यहै, भरमें जीव अपार ॥

अथ एकत्वानुप्रेक्षा

मूल प्राकृत

परिवारेण लच्छिभुंज्जिइ रक्खिजइ महारणे।
धावइ सब्बुकोवि णरणाहो होति दुलय सय कारणे ॥

संस्कृत छाया

परिवारेण लक्ष्मी भोज्यते खिद्यते महारणे।
धावति सवाकं अपि भरत नाथः तंदुल कारणे ॥

मूलार्थ—यह जीव अकेला रणसंग्राममें खेद-खिन्न होता है। समस्त लोक एक सेर तंदुलोंके अर्थ राजाके आगे दौड़ता है किन्तु लक्ष्मीको सर्व परिवार सहित भोगता है।

मूल प्राकृत

इक्को जीवो जायदि इक्को गब्भम्मि गिह्लदे देहं।
इक्को बाल जुवाणो इक्को बुड्ढो जरा गहिओ ॥

संस्कृत छाया

एकः जीवा जायते एकः गर्भे गृह्णाति देहं।
एकः बालः युवा एकः वृद्धः जरागृहीतः ॥

मूलार्थ—जो एक जीव उत्पन्न होता है वही एक जीव गर्भमें शरीरको ग्रहण करता है, वही एक बालक होता है, जवान होता है और वही जीव जराग्रसित वृद्धावस्थाको प्राप्त होता है अर्थात् एक ही जीव अनेक प्रकार पर्यायोंको प्राप्त होता हुआ संसारभ्रमण करता है।

मूल प्राकृत

इक्को रोई सोई इक्को तप्पेइ माणसे दुक्खे।
इक्को मरदि वराओ णरयदुहं सहदि इक्को वि ॥

संस्कृत छाया

एकः रोगी शोकी एकः तप्यति मानसे दुःखे।
एकः म्रियते वराकः नरकदुःखं सहति एकः अपि ॥

मूलार्थ—एक ही जीव रोगी होता है, वही एक शोकवान् होता है, मानसिक दुखोंसे तप्त होता है, वही एक जीव मरता है और वही एक रंक होता हुआ नरकोंके दुःखोंको सहता है अर्थात् एक ही जीव अनेक अवस्थाओंको धारण करता है।

मूल प्राकृत

इक्को संचदि पुण्णं इक्को भुंजेदि विविहसुरसोक्खं।
इक्को खवेदि कम्मं इक्को वि य पावए मोक्खं ॥

संस्कृत छाया

एकः संचिनीति पुण्यं एकः भुनक्ति विविधसुरसौख्यं।
एकः क्षपति कर्म एकः अपि च प्राप्नोति मोक्ष ॥

मूलार्थ—एक ही पुण्यका संचय करता है, वही [एक जीव देवोंके अनेक प्रकारके सुख भोगता है, वही एक जीव कर्मकी निर्जरा करता है और वही जीव मोक्षको प्राप्त होता है अर्थात् एक ही जीव पुण्यका संचय कर स्वर्ग सुखोंका अनुभव करता हुआ मनुष्य पर्याय धारणकर कर्मोंका नाशकर मोक्षको प्राप्त होता है।

मूल प्राकृत

सुयणो पिछन्तो वि हू ण दुक्खलेसंपि सक्कदे गहितं ।
एवं जायन्तो वि हु तो वि ममत्तं ण छंडेइ ॥

संस्कृत छाया

स्वजनः पश्यन्नपि स्फुटं न दुःखलेशं अपिशक्नोति गृहीतं ।
एवं जानन्नपि स्फुटं तदपि ममत्वं न त्यजति ॥

मूलार्थ—स्वजन जन भी इस जीवमें आते हुए दुःखको देखता किंचित् मात्र ग्रहण करनेको समर्थ नहीं होता, ऐसा प्रगट रूप से जानता हुआ भी कुटुम्बसे ममत्व नहीं छोड़ता।

भावार्थ—यह जीव अनेकदुःखको आपही सहन करता है। किंतु कुटुम्बीजन उस दुःखके बांटनेमें किंचित्मात्र भी समर्थ नहीं होता, ऐसा जानता हुआ भी कुटुम्बीजनोंसे स्नेह नहीं छोड़ता, उनके अर्थ अनेक प्रकार प्रारम्भ करता है। निश्चयसे इस जीवका धर्म ही स्वजन है।

मूल प्राकृत

जीवस्स णिच्छिया दो धम्मो दहलक्खणो हवे सुयणो ।
सो णेइ देवलोए सो चिय दुक्खक्खयं कुणइ ॥

संस्कृत छाया

जीवस्य निश्चयतः धर्मः दशलक्षणः भवेत् स्वजनः ।
सः नयति देवलोके सः एव दुःखक्षयं करोति ॥

मूलार्थ—यदि निश्चयसे विचार किया जाय तो इस जीवका

उत्तम क्षमादि दश लक्षण धर्म ही हितू (स्वजन) है क्योंकि यही धर्म जीवको स्वर्गलोक प्रति प्राप्त करता है और यही धर्म समस्त दुःखोंका नाश रूप मोक्ष करता है अर्थात् धर्मके सिवाय अन्य कोई भी इस जीव का सहाय नहीं।

मूल प्राकृत

सव्वायरेण जाणह इक्कं जीवं शरीरदो भिण्णं।
जम्हि दु मुणिदे जीवो होइ असेसं खणे हेयं॥

संस्कृत छाया

सर्वादरेण जानीहि एकं जीवं शरीरतः भिन्नं।
यस्मिन् तु ज्ञाते जीवे भवति अशेषं क्षणे हेयं॥

मूलार्थ—अहो भव्य जीव हो! तुम इस जीवको शरीरसे सर्व प्रकार भिन्न जानने का उद्यम करो क्योंकि इसके जाननेसे अवशेष सर्व द्रव्य क्षण मात्रमें त्यजने योग्य हो जाती है अर्थात् जब निज स्वरूपका ज्ञान हो जायगा तब समस्त पर द्रव्य (जोकि आत्मा से पृथक् है) सर्वथा हेय ज्ञात होने लगेगी इस कारण सबसे प्रथम निज स्वरूपके जाननें का प्रयत्न करना चाहिये।

भजन की धुन्निमें

अकिला जग आया, जाहि अकेला जीवरा, अकिला जग आया॥
अकिलई भ्रमें चतुर्गति माहीं, संग साथी ना कोई गनो।
सुख दुःख सहे सदैव आप ही, होय सहाय न लोक घनो॥
जोई तरु बोवे सोई फल चाखे, कोई ना काको मीतरा।
अकिला जग आया जाहि अकेला जीवरा ॥१॥ टेक॥
जननी, जनक, बन्धु, तिय, सुत धिय कोई नहीं इनमें तेरा।
स्वारथ सबो पगे अपने हित तू करता मेरा मेरा॥
दुःख परेमें कोई काम न आवे भोगे एक सदीवरा।
अकिला जग आया जाहि अकेला यह जीवरा ॥२॥

अकिलई कर्मबन्धको, करतो शुद्ध भावसे निर्जरतो।
धर्म अर्थ पूरुषार्थको, धरि आगम भवोदधिको तरतो॥
अकिलई भोगी अकिलई योगी, अकिलई होत सुधीवरा।
अकिला जग आया जाहि, अकेला यह जीवरा॥ ३॥
अकिलई जानि तजौ जिय ममता, मोह जाल विच काई परो।
विरक्त होई भावना भावो, फेरि न जन मन मरन करो॥
अविचल धारी होउ 'हजारी', जिन वच अमृत पीवरा।
अकिला जग आया जाहि, अकेला यह जीवरा॥ ४॥

दोहा—एक जीव परजाय बहु, धारे स्वपर निदान।
पर तजि आपा जानके, करो भव्य कल्याण॥

अन्यत्वानुप्रेक्षा

मूल प्राकृत

अण्णं देहं गिह्लदि जणणी अण्णा य होदि कम्मादो।
अण्णं होदि कलत्तं अण्णो वि य जायदे पुत्तो॥

संस्कृत छाया

अन्यं देहं गृह्लाति जननी अन्या च भवति कर्मतः।
अन्यत् भवति कलत्रं अन्यः अपि च जायते पुत्रः॥

मूलार्थ—यह जीव संसारमें जिस शरीरको ग्रहण करता है वह अन्य है, माता भी कर्मयोगसे अन्य है, स्त्री है वह अन्य हैं और प्रगटरूपसे पुत्र है वह भी अन्य है।

मूल प्राकृत

एवं बाहिरदव्वं जाणदि रुवा हु अप्पणो भिण्णं।
जाणंतो वि हु जीवो, तत्थेव यरच्चदे मूढः॥

संस्कृत छाया

एवं ब्राह्यद्रव्यं जानाति रूपात् स्फुटं आत्मनः भिन्नं।
जानन् अपि स्फुटं जीवः तत्रैव च रज्यति मूढः॥

मूलार्थ—पूर्वोक्त समस्त बाह्य वतुस्ओंको आत्मस्वरूपसे यद्यपि भिन्न जानता है तथापि प्रगट रूपसे जानता हुआ भी यह मूर्ख जीव उनही पदार्थोंमें राग करता है सो यह महा मूर्खता है।

मूल प्राकृत

जो जाणिऊण देहं, जीवसरूपादु तच्चदो भिण्णं।
अप्पाणं पि य सेवदि, कज्जकरं तस्य अण्णत्तं ॥

संस्कृत छाया

यः ज्ञात्वा देहं जीवस्वरूपात् तत्त्वतः भिन्नम्।
आत्मानं अपि च सेवते कार्यकरं तस्य अन्यत्त्वम् ॥

मूलार्थ—जो जीव परमार्थतया निज स्वरूपसे भिन्न देहको जान कर अपने स्वरूपका ध्यान करता हैं उसीके यह अन्यत्व भावना कार्यभूत है अर्थात जो देहादिक पर द्रव्योंको अपनी आत्मासे पृथक् जानकर आत्म ध्यानमें निमग्न होजाता है उसी के अन्यत्व भावना सफलीभूत है।

धुनि पीलू

जीवतें लखो पुग्द्ल जड़, जीव ज्ञान दृग धारी।
धर्म अधर्म अकाशकाल द्रव्य, अन्य सकल चेतनतें किलधर ॥
जीव ज्ञान दृगधारी ॥ टेक ॥

फर्श गन्ध रस वर्ण आदि वपु, आत्म ते हैं अन्य जगत् कर।
जीव ज्ञान दृगधारी ॥ टेक ॥२॥

मोहादिक परवस्तु समिलच्चिद, तदपि अन्य खुवुधी नर।
जीव ज्ञान दृग धारी ॥३॥

जीव द्रव्यते अन्य अचेतन, तजह, 'हजारी' भज स्वयं अजवर।
जीव ज्ञान दृगधारी ॥४॥

दोहा—निज आतमतें भिन्न पर, जाने जे नर दक्ष ।
निजमें रमें बमैं अपर, ते शिव लखैं प्रत्यक्ष ॥

अशुचित्वानुप्रेक्षा

मूल प्राकृत

सयलकुहियाण पिंड़, किमिकुलकलियं, अउव्वदुग्गंधं ।
मलमुत्ताणं देहं जाणेह असुइमयं ॥

संस्कृत छाया

सकलकुथितानां पिण्डं कृमिकुलकलितं अतीवदुर्गंधं ।
मलमूत्राणां गृहं देहं जानीहि अशुचिमयं ॥

मूलार्थ—भो भव्य ! समस्त निंदनीय वस्तुओंका समूह लट आदि अनेक निगोदादि जीवोंका घर अत्यंत दुर्गंधमय और मल मूत्रादिका स्थान जो यह शरीर है उसे अपवित्रमयी ही ज्ञात कर शरीर अन्य सुगन्धमय वस्तुओंको भी दुर्गंधमय करता है ।

मूल प्राकृत

सुट्ठु पवित्तं दव्वं, सरससुगंधं मनोहरं जं पि ।
देहणिहित्तं जायदि, धिणावणं सुष्ठु दुग्गंधं ॥

संस्कृत छाया

सुष्ठु पवित्रं सरस सुगंधं मनोहरं यदपि ।
देहनिक्षिप्तं जायते घृणास्पदं सुष्ठु दुर्गंधं ॥

मूलार्थ—इस देह से लगाये हुए उत्तम पवित्र सरस सुगन्ध और मनोहारी द्रव्य भी घृणास्पद अत्यन्त दुर्गन्धमय हो जाते हैं

भावार्थ—चन्दन, कर्पूर, कुमकुम और मृगनाभि (कस्तूरी) आदि सुगन्धमय वस्तु जबतक शरीर से स्पर्श नहीं करते तब ही तक पवित्र और सुगन्धमय हैं और जब शरीरसे लग जाते हैं

उस समय सर्व अपवित्र हो जाते हैं। चन्दन, कर्पूरादि तो शरीर के स्पर्शसे तथा वस्त्राभूषणादि शरीरमें धारण करनेसे और रसयुक्त भोजन भक्षण करनेसे मलादि रूप परिणममान हो जाते हैं।

मुल प्राकृत

मणुआणं असुइमयं, विहिणादेहं विणिम्मियं जाण।
तेसिं विरमणकज्जे, ते पुण तत्थेव अणुरत्ता॥

संस्कृत छाया

मनुजानां अशुचिमयं विधिनादेहं विनिर्मितं जानीहि।
तेषां विरमणकार्ये ते पुनः तत्र एव अनुरक्ताः॥

मूलार्थ—भो भव्य! इन मनुष्यों के शरीर को जो विधिना (कर्म) ने अशुचि (अपवित्र) बनाया है सो ऐसी संभावना कर कि मनुष्योंको वैराग्य उत्पन्न होनेके अर्थ निर्मित किया है परन्तु यह मनुष्य इस देहमें भी अनुरागी होजाता है इससे विशेष और अज्ञान क्या है?

मूल प्राकृत

एवं विहं पि देहं, पिच्छंता वि य कुणंति अणुरायं।
सेवंति आयरेण य, अलध्दपुव्वत्ति मण्णंता॥

संस्कृत छाया

एवं विधं अपि देहं पश्यंतः अपि च कुर्वंति अनुरागं।
सेवंते आदरेण च अलब्धपूर्वं इति मन्यमानः॥

मूलार्थ—ऐसे पूर्वोक्त प्रकार अशुचि शरीर को देखता हुआ भी यह मनुष्य अनुराग करता है और कभी इसे प्राप्त ही नहीं हुआ ऐसा मानता संता आदर पूर्वक शरीरकी सेवा करता है सो यह भी अज्ञानका ही महात्म्य है।

इस देह के विरक्त होने से ही अशुचि भावना होती है।

मूल प्रकृत

जो परदेहविरत्तो णियदेहे, ण य करेदि अणुरायं ।
अप्पसरूवसुरत्तो, असुइत्ते भावणा तस्स ।।

संस्कृत छाया

यः परदेहे विरक्तः निजदेहे न च करोति अनुरागं ।
अत्मस्वरूपसुरक्तः अशुचित्वे भावना तस्य ।।

मूलार्थ—जो पुरुष ! स्त्री पुत्रादि परदेहमें विरक्त होता हुआ निज शरीर में भी अनुराग नहीं करता उसी महापुरुषके अशुचि भावना सार्थक होती है ।

भावार्थ—केवल विचार मात्रसे ही भावना की प्राधानता नहीं होती है, *किन्तु देहको अशुचि विचारते हुए यदि शरीरसे* वैराग्य प्रगट हो जाय तो उसीकी अशुचि भावना सत्यार्थ है ।

झंझोटी (भजनकी धुनिमें)

नेह तजो बुध ! हेय देहसों, अशुचि मलीन महा घिणकारी ।टेक।
मलि मलि धोवत सलिल सुगंधन, मंजन, अंजन चंदन, गारी,
दशम द्वार हर वार स्रवे मल, छिन्न कीच घट भीति नुनारी ।
नेह तजो बुध ! हेय देहसों, अशुचि मलीन महा घिणकारी ।।१।।
चर्म अस्थि रज रुधिर भरी नित, पोषत रोकत शोखत न्यारी,
होत न मीत संगीत कुटिल तिय, नीत तजो परतीत बिगाड़ी ।
नेह तजो बुध ! हेय देहसों, अशुचि मलीनमहा घिणकारी ।।२।।
निंद्य जिती दुर्गंध वस्तु, जगतावनकी उपजावन हारी,
पूरन गलन जरा रोग न रहे, केत नदी तट रेत अटारी ।
नेह तजो बुध! हेय देहसों, अशुचि मलीन महा घिणकारी ।।३।।
मात तात तिय पुत्र मित्र गनि, नाते वहुत जनावन हारी,
अथिर अनित्य मृत्यु संग डोले, ओसकी माल काल तरकारी ।
नेह तजो बुध ! हेय देहसों, अशुचि मलीन महा घिणकारी ।।४।।

जानि विश्वास करो न परोवश, राचि रहेते भये संसारी,
सन्त निहार करो परिहार, पुकार पुकार कहें जु 'हजारी'।
नेह तजो बुध! हेय देहसों, अशुचि मलीन महा घिणकारी ॥५॥

दोहा—स्वपर देह को अशुचि लखि, तजै तासु अनुराग।
ताके सांची भावना, सो कहिये वड़ भाग ॥

आस्रवानुप्रेक्षा

मूल प्राकृत

मणवयणकायजोया, जीवपयेसाणफन्दणविसेसा।
मोहोदएण जुत्ता, विजुदा विय आसवा होंति ॥

संस्कृत छाया

मन वचन काय योगाः जीव प्रदेशानां स्पंदनविशेषाः।
मोहोदयेन युक्ताः वियुताः अपि च आस्रवाः भवंति ॥

मूलार्थ—मन वचन और काय योग हैं वे ही आस्रव हैं। वे योग जीव के प्रदेशों का चंचलत्व विशेष हैं ! तथा मोहके उदय से अर्थात् मिथ्यात्व और कषाय सहित हैं तथा मोह के उदय से रहित भी हैं।

भावार्थ—मन वचन और कायका निमित्त पाकर जीवके प्रदेशोंका जो चलाचल होना वही योग है और वही आस्रव है, वे गुणस्थानकी परिपाटी में सूक्ष्मसांपराय नामक दशम गुण-स्थान पर्यंत तो मोह के उदयरूप यथासम्भव मिथ्यात्व और कषाय सहित जो होता है, वह सांपरायिक आस्रव है।

और जो दशम गुणस्थान से ऊपर के संयोग केवली नामक तेरहवें गुणस्थान पर्यंत जो आस्रव होता है, वह मोह के उदयसे रहित है, केवल योग द्वार ही होता है, उसे ईर्यापथ आस्रव कहते हैं। जो पुद्गल वर्गणा कर्मत्वरूप परिणमे उसे द्रव्यास्रव, और जो जीव के प्रदेश चंचल होवें वह भावास्रव है।

मूल प्राकृत

मोहविवागवसादो, जे परिणामा हवंति जीवस्स ।
ते आसवा मुणिज्जसु, मिच्छत्ताई अणेयविहा ॥

संस्कृत छाया

मोहविभाकवशात् ये परिणामा हवन्ति जीवस्य ।
ते आस्रवाः मन्यस्व मिथ्यात्वादयः अनेकविधाः ॥

मूलार्थ—भो भव्य ! तू ऐसा ज्ञात कर कि मोहकर्म के उदय से जीव के जो परिणाम होते हैं वे ही आस्रव हैं वे परिणाम, मिथ्यात्व आदि अनेक प्रकार हैं ।

भावार्थ—कर्मबन्ध के कारण जो आस्रव हैं वे मिथ्यात्व, उनमें स्थिति अनुभाव रूप गन्धके कारण, मिथ्यात्वादि चार ही हैं, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग से पांच प्रकार हैं, वे मोह कर्म के उदय से होते हैं, और योग हैं वे समय मात्र बन्ध के कारण हैं किन्तु स्थिति और अनुभाग बन्ध के कारण नहीं, इस कारण वन्ध के कारण में प्रधानत्व नहीं है ।

मूल प्राकृत

एवं जाणंतो वि हु, परिचयणीये वि जो णपरिहरइ ।
तस्सासवाणुपिक्खा, सव्वा वि णिरत्थया होदि ॥

संस्कृत छाया

एवं जानन् अपि स्फुटं परित्यजनीयान् अपि यः न परिहरति ।
तस्य आस्रवानुप्रेक्षा सर्वा अपि निरर्थका भवति ॥

मूलार्थ—इस प्रकार प्रगट रूपसे जानता हुआ भी जो त्यजने योग्य परिणामों को नहीं छोड़ता है, उसके समस्त आस्रवों का चितवन निरर्थक है ।

भावार्थ—आस्रवानुप्रेक्षा का चितवन कर, प्रथम ही तीव्र-कषायोंको छोड़े पश्चात् शुद्ध आत्म-स्वरूपका चितवन कर, समस्त कषाय भावों से रहित होवे, तब यह चितवन करना

सफल है, केवल वार्ता करने मात्र से सार्थक नहीं होता ।

मूल प्राकृत

एदे मोहजभावा, जो परिवज्जेइ उवसमें लीणो ।
हेयमिदि मण्णमाणो, आसव अणुपेहणं तस्स ।।

संस्कृत छाया

एतान् मोहजभावान् यः परिवर्जयति उपशमे लीनः ।
हेयं इति मन्यमानः आस्रवानुप्रेक्षणं तस्य ।।

मूलार्थ—जो पुरुष उपशम परिणामों (वीतराग भावों) में लीन होता हुआ इन मिथ्यात्वादि भावों को हेय अर्थात् त्यागने योग्य जानता हुआ इन पूर्वोक्त मोहके उदय से हुए मिथ्यात्वादि परिणामों को छोड़ता है, उसी के आस्रवानुप्रेक्षा का चिंतवन होता है ।

धुनि सारग में दादरा

कर्म आवनके हेत आस्रवके द्वारारे,
कर्म आवनके हेत आस्रवके द्वारारे ।।
पंच मिथ्यात्व योग पंद्रह भनि ।
अविरत गनिये वारारे ।।
कर्म आवनके हेत आस्रवके द्वारारे ।।१।।
जानि कषाय पंचविंशति जे, रलवामें संसारारे ।।
कर्म आवन० ।।२।।
इन मारग कर्मत्व वर्गणा, आवें समय अधारारे ।।
कर्म आवन० ।।३।।
तजिये ये सत्तावन परलखि, भजो 'हजारी' सारारे ।।
कर्म आवन० ।।४।।

दोहा—आस्रव पंच प्रकारकूं, चितवै तजै विकार ।
ते पावै निज रूपकूं, यहै भावना सार ।।

सम्वरानुप्रेक्षा

मूल प्राकृत

सम्मत्तं देसवयं महव्वयं, तह जओ कषायाणं ।
एदे संवरणामा, जोगाभावो तहच्चेव ॥

संस्कृत छाया

सम्यक्त्वं देशव्रतं महाव्रतं तथा जय कषायाणाम् ।
एते संवर नामानः योगाभावः तथा च एव ॥

मूलार्थ—सम्यक्त्व देशव्रत महाव्रत तथा कषायोंका जितना और योगोंका अभाव, ये संवरके नाम हैं।

भावार्थ—पूर्व मिथ्यात्व, अविरत, प्रमाद, कषाय और योग एवं पांच प्रकार आस्रवका वर्णन किया था उनका क्रम पूर्वक रोकना वही आस्रव है अर्थात् चतुर्थ गुणस्थान में मिथ्यात्वका अभाव हुआ, वहां मिथ्यात्वका संवर हुआ तथा देशव्रत गुणस्थान में अविरतिका एक-देश अभाव हुआ और प्रमत्त गुणस्थानमें सर्वदेश अभाव हुआ, वहां अविरतिका संवर हुआ।

और अप्रमत्त गुणस्थान में प्रमाद का अभाव होने से प्रमाद का संवर हुआ, सूक्ष्मसांपराय नामक गुणस्थान में समस्त कषायोंका अभाव हुआ, वहां कषायका संवर हुआ और अयोगी जिन नामक चौदहवें गुणस्थान में योग का अभाव हुआ अतः योगका संवर हुआ। इस भांति पांच प्रकार के आस्रवका संवर हुआ।

मूल प्राकृत

एदे संवरहेदुं, वियारमाणो वि जो ण आयरइ।
सो भमइ चिरं कालं, संसारे दुक्खसत्तत्तो ॥

संस्कृत छाया

एतान् संसारहेतून् विचारयन् अपि यः न आचरति।
सः भ्रमति चिरं कालं संसारे दुःखसन्तप्तः ॥

मूलार्थ—जो पुरुष, पूर्वोक्त प्रकार संवरके कारणोंको विचरता हुआ भी उसका आचरण नहीं करता, वह दुःखों से सन्तप्त होता हुआ चिरकाल पर्यंत संसारमें परिभ्रमण करता है।

मूल प्राकृत

जो पुण विसयविरक्तो, अप्पाणं सव्वदा वि संवरई।
मणहरविषयेहिंतो, तस्स फुडं संवरो होदि॥

संस्कृत छाया

यः पुनः विषयविरक्तः आत्मानं सर्वदा अपि संवृणोति।
मनोहरविषयेभ्यः तस्य स्फुटं संवरो भवति॥

मूलार्थ—जो मुनि इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त होता हुआ मनोहर विषयोंसे आत्माको निरन्तर संवर रूप करता है उसके निश्चतया प्रगट रूपसे संवर होता है।

भावार्थ—मन और इंद्रियोंको विषयोंसे रोककर अपने शुद्ध स्वरूप में रमाता है उसीके यर्थार्थ संवर होता है।

'शांति नमस्ते स्वामी इस धुनिमें।
संवर भजो सु ज्ञानी संवर भजो० ॥
नहीं कर्म वंधाजी जिहिं ध्यावत सुःख
अनन्ता लहि समकितवंताजी।
॥संवर भजो सु ज्ञानी० ॥१॥
त्रय गुप्ति समिति पंच धारो दश धर्म
सम्हारोजी अनुप्रेक्षाको अनुभवना।
निजकाज विचारोजी, संवर भजो सु ज्ञानी ॥२॥
द्वेवीस परीषह जीतो चारित्र ही पालोजी।
तातें न परो भव फंदा हो, परम अनंदाजी,
संवर भजो सु ज्ञानी ॥३॥

मन इंद्रिय विषय निरोधो, नहिं जीव विरोधोजी ।
परिग्रह तजि होउ स्वच्छन्दा, शुभ पूरन
चन्दाजी, संवर भजो सु ज्ञानी ॥४॥
मन वच तन भावन भावो जीवन हितकारी ।
जो वैराग्य तनी जननी है इमि कहत
'हजारी' जी, संवर भजो सुज्ञानी ॥५॥

दोहा—गुप्ति समिति वृष भावना, जयन परीसह कार ।
चारित धारे संग तजि, सो मुनि संवर धार ॥

अथ निर्जरानुप्रेक्षा

मूल प्राकृत

वारसविहेण तवसा, णियाणरहियस्स णिज्जरा होदि ।
वेरग्गभावानदो, णिरहंकारस्स णाणिस्स ॥

संस्कृत छाया

द्वादशविधेन तपसा निदानरहितस्य निर्जरा भवति ।
वैराग्यभावनातः निरहंकारस्य ज्ञानिनः ॥

मूलार्थ—जो निदान रहित और अहंकार वर्जित ज्ञानी है उसीके वारह प्रकार तप और वैराग्य भावनासे निर्जरा होती है

भावार्थ—जो ज्ञानपूर्वक तपश्चरण करता है उसीके निर्जरा होती है किन्तु अज्ञानसहित विपर्यय तपसे हिंसादि पापके होनेसे उलटा कर्मका बंध होता है तथा जो तप करता हुआ अहंकार करता है, परको न्यून जाने, कोई पूजादि नहीं करे, उससे क्रोध करै, इससे तो कर्मबंध ही होता है ।

किन्तु निरहंकारसे निर्जरा होती है और जो तपश्चरण, करता हुआ इसलोक संबंधी तथा परलोक सम्बन्धी ख्याति लाभ, पूजा, और इन्द्रियजनित विषयोंकी वांछा करता है उसके कर्मका बंध अवश्य होता है किन्तु निदान रहित तपश्चरणसे

ही निर्जरा होती है।

क्योंकि जो संसार देह भोगोंसे आशक्त होकर तपको तपता है उसका शुद्ध आशय न होनेसे निर्जरा नहीं होती क्योंकि निर्जरा तो वैराग्य भगवानसे ही होती है।

निर्जराका स्वरूप

मूल प्राकृत

सव्वेसिं कम्माणं, सत्तिविवाओ हवेइ अणुभाओ।
तदणंतरं तु सडणं, कम्माणं निज्जरा जाणं॥

संस्कृत छाया

सर्वेषां कर्मणां शक्तिविपाकः भवति अनुभागः।
तदनन्तरं तु सटनं कर्मणां निर्जरां जानीहि॥

मूलार्थ—ज्ञानावर्णादि समस्त कर्मोंकी फल देनेकी सामर्थ्यका जो विपाक है वही अनुभाग है सो उदय आनेके अनन्तर अर्थात् उदय आनेके समयसे प्रथम ही उसका क्षरण होय उसे निर्जरा ज्ञात करना।

भावार्थ—कर्म उदय आकर खिर जाय अथवा उदयकाल विना ही जिसका खिरना होजाय उसे निर्जरा कहते हैं।

मूल प्राकृत

सा पुण दुविहा णेया सकालपत्ता तवेण कयमाणा।
चादुगदीणं पढमा, वयजुत्ताणं हवे विदिया॥

संस्कृत [छाया

सा तुनः द्विविधा ज्ञेया सकालप्राप्ता तपसा क्रियामाणा।
चातुर्गतिकानां प्रथमा व्रतयुक्तानां भवेत् द्वितीया॥

मूलार्थ—वह पूर्व कथित निजरा स्वकाल प्राप्त [सविपाक] और अकालमें तपश्चरण द्वारा की हुई अविपाक इस तरह दो प्रकार हैं। तिनमें स्वकाल प्राप्त प्रथम निर्जरा तो

चारों ही गतिके जीवोंके होती है और दूसरी अविपाक निर्जरा तप द्वारा व्रतियोंके ही होती हैं।

भावार्थ—पूर्वोक्त निर्जरा, सविपाक और अविपाकके भेद से दो प्रकार हैं वहां जो कर्म स्थिति पूर्णकर उदय होय रस देकर खिरै वह सविपाक निर्जरा हैं।

यह निर्जरा तो समस्त जीवोंके होती है और जो तपश्चरण द्वारा स्थिति पूर्ण हुए विना ही खिर जाय, यहअविपाक निर्जरा है, यह व्रतधारी तपस्वियोंके ही होती है।

मूल प्राकृत

तस्स य सहलो जम्मो, तस्स वि पावस्स णिज्जरा होदि।
तस्स वि पुणं वड्ढइ, तस्स य सोक्खं परो होदि ॥

संस्कृत छाया

तस्य च सफलं जन्म तस्य अपि पापस्य निर्जरा भवति।
तस्य अपि पुण्यं वर्द्धते तस्य च सौख्यं परं भवति ॥

सूलार्थ—जो महा पुरुष पूर्वोक्त प्रकार निर्जराके कारणों में प्रवर्त्तमान होता है, उसीका जन्म फल सफल है, उसीके होती हैं,निर्जरा कर्मोंको उसीके पुण्य कर्मका अनुभाग वृद्धिगत होता है और उसीके उत्कृष्ट सुख की प्राप्ती होती है।

भावार्थ—जो विरक्त-चित्त निर्जराके कारणोंमें प्रवर्त्तता है उसीके पापका नाश होकर पुण्यकी वृद्धि होती है तथा वही महाभाग स्वर्गादिक सुख भोग मोक्ष प्रति गमन करता है।

दादरा नई धुनि

जे कर्म बंध दुखदाई, तिन करहु निर्जरा भाई। टेक।
निर्जरत कर्म तप बलतें, निर्मल समकित उर धरतें ॥
भव फँद कटैं शिव पाई, तिन करहु निर्जरा भाई।
जे कर्म बन्ध दुःखदाई, तिनि करहु निर्जरा भाई।
द्वादश विध तपहि बखानो, सम्यक्त्व भेद द्वै जानों।
मन, वच, तन धारो जाई, तिन करहु निर्जरा भाई ॥२॥

करि मन्द कषाय जु प्राणी, तजिये ममबुद्धि सुज्ञानी ।
मन इन्द्रिय वशहि कराई, तिनि करहु निर्जरा भाई ॥३॥
जब करण विशुद्ध भयोई, निर्जर असंख्य गुण होई ।
परणति रागादिक जाई, तिनकरहु निर्जरा भाई ॥४॥
हिरदे विच भाव न धारो, परिग्रह चतु वीस निवारो ।
सुखदेन 'हजारी' गाई, तिन करहु निर्जरा भाई ॥
जे कर्म वन्ध सुखदाई, तिन करहु निर्जरा भाई ॥५॥

दोहा—पूरव बांधे कर्म जे, धरै तपोवल पाय ।
सो निर्जरा कहाय है, धारैं ते शिव जाय ॥

अथ लोकानुप्रेक्षा

मूल प्राकृत

सव्वायासमणंतं, तस्य य बहुमज्भिसंट्ठियो लोओ ।
सो केण वि णेय कओ, ण य धरिओ हरिहरादीहिं ॥

संस्कृत छाया

सर्वाकाशमनंतं तस्य च बहुमध्यसंस्थितः लोकः ।
सः केन अपि नैव कृतः न च धृतः हरिहरादिभिः ॥

मूलार्थ—समस्त आकाश द्रव्यका क्षेत्र अनंत प्रदेशी है, उसके वहु मध्य देशमें [बीचमें] तिष्ठा हुआ लोक [छः द्रव्यका समुदाय रूप] तिष्ठा हुआ है वह किसीका किया हुआ नहीं तथा हरिहरादिकोंकर धारण किया हुआ भी नहीं है ।

भावार्थ—अन्य मतावलम्वी ऐसा प्रतिपादन करते हैं कि इस लोककी रचना ब्रह्माने की है, नारायण रक्षा करते हैं और शिव (महादेव) संहार करते हैं तथा शेषनाग अथवा कच्छवा निज पीठपर धारण किये हुए हैं ।

और जब इस सृष्टि (लोक) का प्रलय हो जाता है तब सर्व शून्य हो जाता है किन्तु ब्रह्माकी सत्तामात्र रह जाती है

पश्चात् ब्रह्माकी सत्तासे पुनः सृष्टिकी उत्पत्ति होती है,

इत्यादि कल्पित कथन करते हैं उसका निषेध इस सूत्रसे होता है क्योंकि यह लोक किसीका किया हुआ, किसी कर रक्षित और किसी कर संहारित नहीं होता, जैसा है वैसा ही अनादि निधन अर्थात् आदि अन्तरहित सर्वज्ञ देवने देखा है।

लोकस्वरूप

मूल प्राकृत

अण्णोण्णपवेसेण य, दव्वाणं अत्थणं भवे लोओ।
सव्वाणं णिच्चत्तो, लोयस्स वि मुणह णिच्चतं॥

संस्कृत छाया

अन्योन्यप्रवेशेन च द्रव्याणां अस्तित्वं भवेत् लोकः
द्रव्याणां नित्यत्वात् लोकस्य अपि जानीहि नित्यत्वम्॥

मूलार्थ—जीवादि षट्द्रव्योंके परस्पर एक क्षेत्रावगाह मिलाय रूप जो अवस्थान वह लोक है और वे द्रव्य हैं वे नित्य हैं, इसी हेतुसे लोक भी नित्य ही है ऐसा ज्ञात करना योग्य है।

भावार्थ—द्रव्योंके समुदायको ही लोक कहते हैं, सो द्रव्योंकी नित्यतासे लोककी नित्यता सिद्ध होती है।

लोक का आकार विशेष

मूल प्राकृत

सत्तेक्कु पंच इक्का, मूले मज्झे तहेव वंभन्ते।
लोयंते रज्जओ पुव्वावरदो य वित्थारो॥

संस्कृत छाया

सप्त एक पंच एक-मूले मध्ये तथैव ब्रह्मान्ते।
लोकान्ते रज्जवः पूर्वापरतः च विस्तारः॥

मूलार्थ—लोककी पूर्व और पश्चिम दिशामें मूलमें सात-राजू विस्तार है तथा मध्यमें एक राजूका विस्तार-ऊपर ब्रह्म स्वर्गके अन्त पर्यंत पांच राजू विस्तार और लोकके अन्तमें एक राजूका विस्तार है।

भावार्थ—यह लोक नीचेके पूर्व पश्चिम सात राजू चौड़ा वहांसे क्रम पूर्वक घटता हुआ मध्य लोकमें एक राजू चौड़ा पश्चात् ब्रह्म स्वर्ग पर्यंत वृद्धि होता पांच राजू चौड़ा और अन्त में एक राजू चौड़ा है, इस प्रकार डेढ़ मृदंग खड़ा करनेसे जो आकार होता है वही आकार लोकका है।

मूल प्राकृत

दक्खिणउत्तरदो पुण, सत्त वि रज्जू हवेदि सव्वत्थ।
उड्ढो चउदशरज्जू, सत्त वि रज्जूघणो लोओ॥

संस्कृत छाया

दक्षिणोत्तरतः पुनः सप्त अपि रज्जवः भवति सर्वत्र।
ऊर्ध्वः चतुर्दशरज्जुः सप्त अपि रज्जुघनः लोकः॥

मूलार्थ—यह लोक उत्तर दक्षिण सर्वत्र सातराजूका विस्तार है तथा ऊँचा चौदह राजू है, और समस्त लोक सात-राजू घन प्रमाण है।

भावार्थ—चौदह राजू की ऊँचाई पर्यंत सर्वत्र सातराजू के विस्तारमें है और घनाकार फैलानेसे ३४३ राजू प्रमाण होता है।

कवित्त छन्द जैजैवन्ती की धुनिमें

लोक स्वरूप लखो सुबुधी, संशय तजि होउ सचेत जु प्रानी।
द्रव्यनिको समुदाय जहां, षट् भेद कथंचित् भिन्न बखानी॥
पुरुषाकार लसै जु खरो, राजू चौदह विस्तार बखानी।
ऊर्ध अधो अरु मध्य गनों त्रय, रूप धरैं तिष्ठो निज थानी॥१॥
नर्क निगोद पाताल विखें तहां, क्षेत्र जु राजू सात बखानो।
मध्यमें द्वीप समुद्र घनें गनि, राजू एक तनो परमानों॥

ऊर्धमें स्वर्ग विमान लसै, सर्वारथ सिद्धि तनों षट जानों ।
लोकशिखरश्रीसिद्ध विराजत, नमत 'हजारी' तिन चरणानों ॥२॥

कुन्डलियां

लोकाकार विचारके, सिद्ध स्वरूप चितारि ।
राग विरोध विडारिके, आतम रूप संभारि ॥
आतम रूप संवारी, मोक्षपुर बसो सदा ही ।
आधि व्याधि जर मरन आदि, दुःख होहूं न कदा ही ॥
श्री गुरु शिक्षा धारि टारि, अभिमान कुशोका ।
मनथिर कारण यह विचारि, निज रूप सु लोका ॥१॥

बोधदुर्लभानूप्रेक्षा

मूल प्राकृत

जीवो अणंतकालं, वसइ निगोएसु आइपरिहीणो ।
तत्तो णीसरिऊणं, पुढवीकायादियो होदि ॥

संस्कृत छाया

जीवः अन्तकालं वसति निगोदेषु आदिपरिहीनः ।
ततः निःसृत्य पृथ्वीकायादिकः भवति ॥

मूलार्थ—यह जीव, अनादि काल से संसार में अनन्तकाल पर्यंत तो निगोद में रहा पश्चात् वहां से निकल कर पृथ्वी कायादि पर्यायोंको धारण करता है ।

भावार्थ—यह जीव, अनादि काल से अनन्तकाल पर्यंत तो नित्य निगोद में रहा, वहां एक शरीर में अनन्तानन्त जीवोंका आहार श्वासोच्छवास जीवन मरण समान है, एक श्वास के अठारहवें भाग मात्र आयु है, वहां से निकलकर यदि कदाचित् पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, और वनस्पति पर्याय को पावै सो यह अत्यन्त दुर्लभ है ।

त्रसपर्याय की दुर्लभता

मूल प्राकृत

तत्थ वि असंखकालं, वायरसुहमेसु कुणइ पणियत्तं ।
चिंतामणिव्व दुलहं, तसत्तणं लहदि कट्ठेण ॥

संस्कृत छाया

तत्र अपि असंख्यकालं वादरसूक्ष्मेसु करोति परिवर्तनं।
चिंतामणिवत् दुर्लभं त्रसत्व लभते कष्टेन ॥

मूलार्थ—तहां पृथ्वी कायादि पर्यायों में वादर तथा सूक्ष्म शरीरों में असंख्यात काल पर्यंत भ्रमण करता है, वहाँ से निसरि त्रसपना पावना अति कष्टकर चिंतामणी रत्नवत् अति दुर्लभ है ।

त्रस पर्यायमें भी पंचेन्द्रियपना पाना अति दुर्लभ है

मूल प्राकृत

वियलिंदिएसु जायदि, तत्थवि अत्थेइ पुव्वकोड़ीओं ।
तत्तो णीसरिऊणं, कहमपि पंचिदिओ होदि ॥

संस्कृत छाया

विकलेंद्रियेषु जायते तत्र अपि आस्ते पूवकोटयः ।
तेभ्यः निःसृत्य कथमपि पंचेंद्रियः भवतिः ॥

मूलार्थ—स्थावर पर्यायसे निकलकर यदि त्रस पर्याय धारण करै तहां भी विकलत्रय अर्थात् द्वे इन्द्रिय ते इन्द्रिय और चौ इन्द्रिय पावे वहां कोटि पूर्व पर्यंत रहै पश्चात् वहांसे निकल पंचेंद्रियपना महा कष्ट कर अति दुर्लभ है ।

मूल प्राकृत

सो वि मणेण विहीणो, ण य अप्पाणं परं पि जाणेदि ।
अह मणसहिओ होदि हु, तह वि तिरक्खो हवे रुद्दो ॥

संस्कृत छाया

स: अपि मनसा विहीन: न च आत्मानं परं अपि जानाति ।
अथ मन: सहित: भवति स्फुटं तथा अपि तिर्यक् भवेत् रौद्र: ॥

मूलार्थ—विकलत्रयसे निकल यदि पंचेन्द्रिय भी होय तो असैनी (मनरहित) होय वहां आपा परका भेद नहीं जानता, और यदि कदाचित् सैनी (मनरहित) पंचेन्द्रिय भी होय तो रौद्र परिणामी घुघू, विलाव, सर्प, सिंह, मच्छ आदि तिर्यञ्च होय ।

क्रूर परिणामी तिर्यंचोंका नरक पात होता है

मूल प्राकृत

सो तिव्वसुहलेस्सो, णरये णिवडेइ दुक्खदे भीमे ।
तत्थ वि दुक्खं भुंजदि, सारीरं माणसं पउरं ॥

संस्कृत छाया

स: तीव्रा् शुभ लेश्यो नरके निपतति दु:खदे भीमे ।
तत्र अपि दुखं भुङ्क्ते शारीरं मानसं प्रचुरं ॥

मूलार्थ—वह तीव्र परिणामी तिर्यञ्च, तीव्र अशुभ लेश्या कर भथानक और दु खके देनेवाले नरकमें पड़ता है वहां भी शारीरिक और मानसिक एवं दोनों प्रकारके प्रचुर दु:खको भोगता है ।

नरकसे निकल पुन तिर्यंच होकर दु:ख सहता है

मूल प्राकृत

तत्तो णीसरिऊणं, पुणरवि तिरिएसु जायदे पावं ।
तत्थ वि दुक्खमणंतं, विसहदि जीवो अणेयविहं ॥

संस्कृत छाया

तत: निसृत्य पुनरपि तिर्यक् जायते पापम् ।
तत्र अपि दुखं अनंतं विसहते जीव अनेकविधं ॥

मूलार्थ—उस नरकसे निकलकर फिर भी पापरूप तिर्यञ्च

योनिमें उत्पन्न होता है, वहां भी अनेक प्रकार अनन्त दुःखोंको यह जीव सहन करता है।

मनुष्यत्व अत्यन्त दुर्लभ है

मूल प्राकृत

रयणं चउप्पहेपिव, मणुअत्तं सुट्ठु दुल्लहं लहिय ।
मिच्छो हवेइ जीवो, तत्थ वि पावं समज्जेदि ॥

संस्कृत छाया

रत्नं चतुष्पथे इव मनुजत्वं सुष्टुदुर्लभं लब्ध्वा ।
म्लेच्छः भवेत् जीवः तत्र अपि पापम् समर्जयति ॥

मूलार्थ—तिर्यञ्च योनिसे निकलकर चतुष्पथमें पड़े हुए रत्नकी भांति मनुष्य पर्याय अति दुर्लभ है, परन्तु ऐसी मनुष्य पर्यायमें भी म्लेच्छ होकर यह जीव, पापोपार्जन करता है।

भावार्थ—अति कष्टसे यदि मनुष्य पर्याय भी पाई और वह म्लेछ कुलमें उत्पन्न हुआ तो मिथ्यादृष्टी अभक्ष्य भक्षियोंकी संगतिसे पापोपार्जन कर पुनः कुगतिमें पड़कर असंख्य दुःखोंका पात्र बनता है।

मनुष्य पर्यायमें भी आर्यक्षेत्र और उत्तम कुलकी प्राप्ति अति दुर्लभ है

मूल प्राकृत

अह लहइ अज्जवंतं, तह ण वि पावेइ उत्तमं गोत्तं ।
उत्तम कुले वि पत्ते, धणहीणो जायदे जीवो ॥

संस्कृत छाया

अथ लभते आर्य्यत्वं तत्र न अपि प्राप्नोति उत्तमं गोत्रं ।
उत्तमकुले अपि प्राप्ते धनहीनः जायते जीवः ॥

मूलार्थ—यदि मनुष्य पर्याय भी पाये और आर्यक्षेत्रमें भी जन्म होवे तोभी उत्तम [ब्राह्मण क्षत्रि वैश्य] कुलमें जन्मका

होना अति दुर्लभ है और यदि उत्तम कुलकी प्राप्ति होजाय तो धनहीन होकर वहां किसी भी प्रकारका सुकृत नहीं कर सकेगा, किंतु पापोपार्जन कर पुनः कुयोनियोंमें भ्रमण करेगा।

मूल प्राकृत

अह धनसहिओ होदि हु, इंदियपरिपुण्णदा तदो दुलहा
अह इंदि य संपुण्णो, तह वि सरोओ हवे देहो ॥

संस्कृत छाया

अथ धनसहितः भवति स्फुटं इन्द्रियपरिपूर्णता ततः दुर्लभा।
अथ इंद्रियसंपूर्णः तथापि।सरोगः भवेत् देहः ॥

भावार्थ—और यदि धन सहित भी होवे तो इन्द्रियोंकी परिपूर्णता उससे भी दुर्लभ है और यदि इन्द्रियोंकी भी पूर्णता होजाय तो भी रोग सहित शरीर होय, तहां किसी प्रकारका सुकृत नहीं कर सकेगा।

मूल प्राकृत

अह णीरोओ होदि हु, तह वि ण पावेइ जीवियं सुइरं।
अह चिरकालं जीवदि, तो सीलं णेव पावेइ ॥

संस्कृत छाया

अथ नीरोगः भवति स्फुटं तथापि न प्राप्नोति जीवित सुचिरं।
अथ चिरकालं जीवति तत् शीलं नैव प्राप्नोति ॥

मूलार्थ—अथवा कदाचित् नीरोग भी होय तो चिर जीवति (दीर्घायु) की प्राप्ति दुर्लभ है, और यदि चिरकाल पर्यंत जीवित भी रहै तो उत्तम प्रकृति अर्थात् भद्र परिणामी होना दुर्लभ है।

मूल प्राकृत

अह होदि सीलजुत्तो, तह विण पावेइ साहुसंसग्गं।
अह तं पि कहवि पावइ, सम्मत्तं तह वि अइदुलहं ॥

संस्कृत छाया

अथ भवति शीलयुक्तः तथापि न प्राप्नोति साधुसंसर्गम्।
अथ तमपिकथं अपिप्राप्नोति सम्यक्त्वं तथा अपि अतिदुर्लभं।

मूलार्थ—यदि कदाचित् भद्र परिणामी भी होय तो भी साधु पुरुषोंकी संगति पाना दुर्लभ है और यदि साधु संसर्ग भी मिल जाय तो भी सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति अत्यन्त ही दुर्लभ है।

मूल प्राकृत

सम्मत्ते विय लद्धे, चारित्तं णेव गिण्हदे जीवो।
अहकह वि तं पि गिण्हदि, तो पालेदुं ण सक्केदि ॥

संस्कृत छाया

सम्यक्त्वे अपि च लब्धे चारित्रं नैव गृह्णाति जीवः।
अथ कथमपि तत् अपि गृह्णाति तत् पालयितु न शक्नोति।

मूलार्थ—यदि सम्यग्दर्शन भी पावे तो यह जीव चारित्रको ग्रहण नहीं करता और यदि कदाचित् चारित्रको ग्रहण भी कर लेवे तो उसे निर्दोष पालनेमें असमर्थ होता है।

मूल प्राकृत

रयणत्तये वि लद्धे, तिव्वकसायं करेदि जइ जीवो।
तो दुग्गईसु गच्छदि, पणट्ठरयणत्तओ होऊ ॥

संस्कृत छाया

रत्नत्रये अपि लब्धे तीव्रकषायं करोति यदि जीवः।
तत् दुर्गतिषु गच्छति प्रणष्टरत्नत्रयः भूत्वा ॥

मूलार्थ—यदि यह जीव सम्यग्दर्शन, ज्ञानचारित्र रूप रत्नत्रयको भी प्राप्त हो जावे, परन्तु यदि तीव्र कषाय करे तो उस रत्नत्रय को नष्ट कर पुनः दुर्गति को गमन करता है।

मूल प्राकृत

रयणुव्व जलहिपड़ियं, मणुयत्तं तं पि होइ अइदुलहं।
एवं सुणिच्चइत्ता, मिच्छकसायेय वज्जेह ॥

संस्कृत छाया

रत्नं इव जलधि पतितं मनुजत्वं तत् अपि भवति अतिदुर्लभं।
एवं सुनिश्चित्य मिथ्यात्वकषायं त्यजत ॥

मूलार्थ—जो भव्य ! समुद्र में पड़े हुए रत्नकी भांति यह मनुष्यपना अत्यन्त दुर्लभ है, ऐसा निश्चय कर मिथ्यात्व और कषाय का त्याग करो।

भावार्थ—जैसे अति कष्टसे प्राप्त हुआ चिंतामणी रत्नको समुद्रमें फेंक देवें, पुनः उसकी प्राप्ति होना अति दुर्लभ है उसी भांति पूर्वोक्त प्रकार से प्राप्त हुई मनुष्य पर्याप्त तिस पर भी रत्नत्रयको प्राप्त होकर यदि मिथ्यात्व और कषाय का सेवन करेगा, तो मनुष्य पर्याय अत्यन्त दुर्लभ हो जायगी, ऐसा निश्चय ज्ञात कर मिथ्यात्व और कषाय को छोड़ दो।

मूल प्राकृत

अहवा देवो होदि हु, तत्थ वि पावेइ कहवि सम्मतं।
सो तवचरणं ण लहदि, देशजमं सीललेसं पि॥

संस्कृत छाया

अथवा देवः भवति स्फुटं तत्र अपि प्राप्नोति कथमपि सम्यक्त्वं च।
तपश्चरणं न लभते देशयमं शीललेशं अपि॥

मूलार्थ—अथवा मनुष्य पर्यायसे शुभ परिणामों कर यदि देव भी हो तो किसी भी प्रकार सम्यग्दर्शनकी तो प्राप्ति हो जाय परन्तु वह तपश्चरण, देवव्रत, शीलव्रत, का लेश भी न पावे।

भावार्थ—देव पर्याय में चतुर्थ गुणस्थान तक ही होता है, इस कारण यदि कदाचित् शुभ परिणामोंसे देवगति भी पावै तो महान् कष्टसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति तो हो जाय परन्तु सकल चारित्र (मुनिधर्म) और देश चारित्र (श्रावक धर्म) तथा ब्रह्म-चर्यकी प्राप्ति कदापि नहीं होवे। क्योंकि देवोंमें पंचम गुणस्थान का अभाव है, और व्रतादिकी प्राप्ति पंचम गुणस्थानमें ही होती है, सो देवोंके पंचम गुणस्थान न होनेसे व्रत शीलादि भी उनके नहीं होते।

मूल प्राकृत

मणुअगईए वि तओ, मणुअगईए महव्वयं सयलं ।
मणुअगईए झाणं, मणुअगईए वि णिव्वाणं ॥

संस्कृत छाया

मनुजगतौ अपि तपः मनुजगतौ महाव्रतं सकलं ।
मनुजगतौ ध्यानं मनुजगतौ अपि निर्वाणं ॥

मूलार्थ—भो भव्य ! इस मनुष्य गति ही में तपका आचरण इस मनुष्य गतिमें ही समस्त महाव्रत, इस मनुष्य गति में ही ध्यान और इस मनुष्य गतिमें ही निर्वाणकी प्राप्ति होती है ।

मूल प्राकृत

इय दुलहं मणुयत्तं, लहिऊण जे रमंति विषएसु ।
ते लहिय दिव्वरयणं, भूइणिमित्तं पजालंति ॥

संस्कत छाया

इति दुर्लभं मनुजत्वं लब्ध्वा ये रमंति विषयेषु ।
ते लब्ध्वा दिव्यरत्नं भूतिनिमित्तं प्रज्वालयंति ॥

मूलार्थ—उपरोक्त प्रकार अति दुर्लभ इस मनुष्य पर्यायको प्राप्त होकर जो विषयों में रमण करते हैं वे दिव्य अमूल्य रत्न को प्राप्त होकर भस्म (राख) के निमित्त उसे दग्ध करते हैं ।

भावार्थ—अति कठिनतासे प्राप्त होने योग्य यह मनुष्य पर्याय अमूल्य रत्न तुल्य है । उसे विषयोंके निमित्त वृथा खो देना उचित नहीं है ।

मूल प्राकृत

इय सव्वदुलहदुलहं दंसण, णाणं तहा चरित्तं च ।
मुणिऊण य संसारे, महायरं कुणह तिण्हं पि ॥

संस्कृत छाया

इति सर्वदुर्लभं दर्शनं ज्ञानं तथा चारित्रं च।
ज्ञात्वा च संसारे महायरं कुरुत त्रयाणां अपि ॥

मूलार्थ—ये समस्त उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं तिनमें दर्शन, ज्ञान और चारित्र एवं रत्नत्रय अत्यन्त ही दुर्लभ है ऐसा ज्ञात कर अहो भव्य ! इस संसारमें उपरोक्त तीनों रत्नोंका आदर करो।

भावार्थ—निगोदसे निकलकर पूर्वोक्त प्रकार क्रम पूर्वक उत्तरोत्तर दुर्लभ है तहां भी सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति अत्यन्त ही दुर्लभ है इनको प्राप्त होकर जीवोंको यत्न-पूर्वक आदर करना योग्य है।

दादरा कालिंगड़

दुर्लभ अति बोध जगत माही है।
जगत माहीं रे हो जगत माहींरे, दुर्लभ अति बोध जगत माहींरे ॥
इक ते द्वै इंद्री अति दुर्लभ, कठिन कठिन कर त्रय पाई रे।
दुर्लभ अति बोध जगत माहींरे ॥१॥
चउ तें पंच इंद्री अति दुर्लभ, सेनी हुइवो कठिनाईरे।
दुर्लभ अति बोध जगत माहींरे ॥२॥
कष्ट कष्ट मानुष हूवो कुल, नीच मिली नहिं जो गाईरे।
दुर्लभ अति बोध जगत माहींरे ॥३॥
महा खेद उत्तम कुल पायो, ग्रसित रोग तन दुखदाईरे।
दुर्लभ अति बोध जगत माहींरे ॥४॥
औसर पाई न चूको, बुध वृष सेव 'हजारी' सुखदाईरे।
दुर्लभ अति बोध जगत माहींरे ॥५॥

छप्पय

वसि निगोद चिर निकसि, खेद सहि धरनि तरुनि वहु।
पवनबोद जल अगिनिगोद, लहि जरन मरन सहु ॥

लट गिंडोल उटकण मकोड़, तन भमर भ्रमण कर।
जल बिलोल पशु तन सुकोल, नभचर सर उरपर।।
फिर नरक पात अति कष्ट सहि, कष्ट कष्ट नरतन महत।
तहं पाय रतन त्रय चिगत जे, ते दुर्लभ अवसर लहत।।

धर्मानुप्रेक्षा

धर्मके व्याख्याता सर्वज्ञ देव हैं

मूल प्राकृत

जो जाणदि पच्चक्खं; तियालगुणपज्जएहिं संजुत्तं।
लोयालोयं सयलं, सो सव्वण्हू हवे देओ ।।

संस्कृत छाया

यः जानाति प्रत्यक्षं त्रिकालगुण पर्यायैः संयुक्तं।
लोकालोकं सकलं सः सर्वज्ञः भवेत् देवः।।

मूलार्थ—जो समस्त लोक और अलोक एवं त्रिकालगोचर समस्त गुण पर्यायों कर संयुक्त प्रत्यक्ष जानता और देखता है वही सर्वज्ञ देव है।

भावार्थ—इस लोकमें जीव द्रव्य अनन्तानन्त हैं। उनमें अनन्तानन्ता गुण पुद्गल द्रव्य हैं। एक-एक आकाश, धर्म, और अधर्म द्रव्य हैं असंख्यात कालाणु द्रव्य हैं और लोकसे परे अनन्त प्रदेश आकाश द्रव्य हैं वह अलोक है। एवं समस्त द्रव्यों के अतीत काल अनंत समयरूप तथा अगामी काल उससे भी अनन्तगुणरूप और वर्तमान काल एवं समस्त कालों समयवर्ती एक-एक द्रव्यके अनन्त अनन्त पर्याय हैं तिन सर्व द्रव्य और

पर्यायोंको युगपत एक समयमें प्रत्यक्ष स्पष्ट पृथक्-पृथक् यथावत् जैसे हैं वैसे ही जाने, ऐसा जिसका ज्ञान है वही सर्वज्ञ है, वही देव है, इनके सिवाय अन्य को सर्वज्ञ कहना केवल कथन मात्र ही है।

यहां इस कथन का तात्पर्य यह है कि जो धर्मका स्वरूप कहा जायगा, वह यथार्थ स्वरूप इन्द्रियगोचर नहीं किंतु अतीद्रिय है जिसका फल स्वर्ग और मोक्ष है, वह भी अतीन्द्रिय है।

और सर्वज्ञ विना अन्य छद्मस्थोंका इन्द्रिय जनित ज्ञान परोक्ष है, इस कारण जो अतीन्द्रिय पदार्थ हैं वे इसके ज्ञान गोचर नहीं, इस कारण जो निज अतीन्द्रिय ज्ञानद्वारा समस्त चराचर पदार्थोंको देखता जानता है, वह धर्म और धर्मके फल को भी देखेगा जानेगा इसी हेतुसे धर्मका स्वरूप सर्वज्ञ कथित वचनों द्वारा ही प्रमाणभूत है।

किन्तु अन्य छद्मस्थ (अल्पज्ञ) कथित प्रमाणभूत नहीं और जो सर्वज्ञकी परम्परा से कहैं, वह भी प्रमाणिक है, इसी कारण धर्म स्वरूपके कथनकी आदि में प्रथम सर्वज्ञका कथन किया है।

सर्वज्ञ न माननेवालोंसे किंचित् कहते हैं।

मूल प्राकृत

जदि ण हवदि सव्वण्हू, ता को जाणदि अदिन्दियं अत्थं।
इंदियणाणं ण मुणदि, थूलं पि असेसपज्जायं॥

संस्कृत छाया

यदि न भवति सर्वज्ञः तत् कः जानाति अतीन्द्रियं अर्थं।
इन्द्रियज्ञानं न जानाति स्थूलं अपि अशेषपर्यायं॥

मूलार्थ—यदि सर्वज्ञ न होय तो जोकि इन्द्रियगोचर नहीं ऐसे अतीन्द्रिय पदार्थोंको कौन जाने ? क्योंकि इन्द्रिय ज्ञान तो स्थूल पदार्थ जोकि इन्द्रियोंसे सम्बन्ध रूप वर्तमान होता है उसे ही जानता है, सो भी उसके समस्त पर्यायोंको नहीं जान सकता।

भावार्थ—मीमांसक और नास्तिक दोनों मतानुयायी सर्वज्ञ का अभाव मानते है, उनका निषेध इस सूत्रसे हुआ और यह तो स्पष्ट ही है कि सर्वज्ञ विना जे अतीन्द्रिय पदार्थ हैं उन्हें कौन जान सकता है ?

इसी प्रकार धर्म और अधर्मका फल भी अतीन्द्रिय है, उसे इन्द्रिय ज्ञानवाला छद्मस्थ कैसे जानेगा ? इस कारण प्रथम सर्वज्ञ को मानकर उनके वचनोंके द्वारा धर्मके स्वरूपका निश्चय करो।

धर्मका सामान्य स्वरूप

आद्या जीवदया गृहस्थ शमिनोर्भेदाद् द्विधा च त्रयं ।
रत्नानां परमं तथा दशविधोत्कृष्टक्षमादिस्तथा ॥
मोहोद्भूतविकल्पजालरहिता वागंगसंगोज्झितः ।
शुद्धानन्दमयात्मनः परिणतिर्धर्माख्यया जायते ॥ १ ॥

—श्री पद्मनंद्याचार्य ।

मूलार्थ—सामान्य प्रकारसे धर्म दो प्रकार है—एक व्यवहार और दूसरा निश्चय। जिसमें व्यवहार धर्ममें प्रथम जीव-दया धर्म है, वही दयागत धर्म गृहस्थ और मुनियोंके भेदसे दो प्रकार हैं अर्थात् गृहस्थ धर्ममें एकदश दयाका पालन होता है और मुनिधर्ममें सर्वदेश दया का प्रतिपालन होता है।

तथा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र एवं रत्नत्रय रूप तथा उत्तम क्षमा, मार्दव; आर्जव सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, अकिंचन्य और ब्रह्मचर्य एवं दश प्रकार धर्म हैं यह समस्त व्यवहार धर्म है और जो मोहसे उत्पन्न हुए विकल्पोंके समूहोंसे, रहित, वचन और अङ्गसे वर्जित ऐसी शुद्ध आनन्दमय आत्माकी परणति वह निश्चय धर्म है।

मूल प्राकृत

हिंसारंभोण सुहो, देवणिमित्त गुरुण कज्जेसु।
हिंसा, पावन्ति मदो, दयापहाणो जदो धम्मो ॥

संस्कृत छाया

हिंसारंभः न शुभः देवनिमित्त गुरूणां कार्येषु।
हिंसा पापं इति मतः दयाप्रधानः यतः धर्मः ॥

मूलार्थ—देवके निमित्त, तथा गुरुओंके कार्योंमें जो हिंसाका आरम्भ है वह शुभ नहीं हैं क्योंकि जो हिंसा है वही पाप माना है, इस कारण दयाप्रधान ही धर्म है।

भावार्थ—अन्य मतावलम्बी, हिंसामें धर्मका स्थापन करते हैं। तिनमें मीमांसक तो यज्ञमें पशुओंका हवन करते हुए उसका शुभफल कहते हैं। बौद्धमतानुयायी—हिंसाकर मांस आदिके आहारको भी शुभ ही कहते हैं।

तथा देवीके भैरोंके उपासक बकरा आदि पशुओंका नाशकर, देवी और भैरोंको चढ़ाते हैं, और उसका फल भी शुभ ही बतलाते हैं और श्वेतांबरोंके अनेक सूत्रोंमें ऐसा प्रतिपादन किया है कि जो देव शास्त्र गुरुके निमित्त चक्रवर्तीकी सेनाका भी चूर्ण करना और जो साधु ऐसा न करें तो अनंत संसारी होय। कहीं मद्य मांसका आहार भी लिखा गया है इत्यादि

सर्वोंका निषेध इस गाथासे होता है।

जो देवगुरु शास्त्रके निमित्त हिंसाका आरंभ करता है वह शुभ नहीं है, क्योंकि धर्म है वह दयाप्रधान ही है, इसके सिवाय ऐसा भी जानना कि जो पूजा, प्रतिष्ठा, जिनालयका बनाना, संघ, यात्रा, धर्मशाला बनाना, इत्यादि समस्त कार्य गृहस्थोंके हैं उनको मुनिराज न तो आप करें और न दूसरेसे करावें, और न उसका अनुमोदन करें। क्योंकि यह कार्य गृहस्थोंका है, सो जैसा शास्त्रोंमें इनका विधान बतलाया है, उसी प्रकार गृहस्थ करें और यदि गृहवासी—जैन श्री मुनिराजसे इनके विषयमें प्रश्न करें तो श्री मुनिराज भी शास्त्रोक्त विधिके अनुसार उनको उपरोक्त कार्योंके करने रूप उत्तर देवें। ऐसा करनेमें उस कार्य सम्बन्धी हिंसा दोष तो गृहस्थोंको ही लगता है किन्तु उपरोक्त कार्योंमें जो जो श्रद्धान भक्ति और धर्मकी प्रधानता होयउस सम्बन्धी जो पुण्य उत्पन्न होगा, उसके भागी मुनिराज भी होंगे।

क्योंकि हिंसा, गृहस्थोंकी है इस कारण हिंसा सम्बन्धी दोष गृहस्थों पर ही है, किन्तु मुनिपर नहीं, और गृहस्थ भी यदि हिंसारूप अभिप्राय करें तो वह अशुभ ही है। यद्यपि पूजा प्रतिष्ठा आदिको यत्नपूर्वक करें तो भी उस कार्यमें जो हिंसादि हो वह टल नहीं सकती।

जैन सिद्धांतमें भी यह वाक्य कहा है—"सावद्यलेशो बहुपुण्यराशिः" जिसमें पाप अल्प होय और पुण्य विशेष होय वह कार्य गृहस्थोंको करना योग्य है, सो गृहस्थ भी जिसमें लाभ विशेष होय और नुकसान अल्प होय, ऐसा कार्य अवश्य करें, किंतु यह रीति मुनियोंकी नहीं इसी हेतुसे मुनिराज हिंसा के फलसे रहित हैं।

मूल प्राकृत

देव गुरूण निमित्तं, हिंसारम्भो विहोदि जदि धम्मो ।
हिंसारहिओ धम्मो, इदि जिण वयंण हवे अलियं ॥

संस्कृत छाया

देव गुर्वोः निमित्तं हिंसारम्भः अपि भवति यदि धर्मः ।
हिंसारहितः धर्मः इति जिनवचनं भवेत् अलीकं ॥

मूलार्थ—देव और गुरुओंके निमित्त हिंसाका आरम्भ ही यदि धर्म माना जावे तो हिंसा रहित धर्म जो भगवानने वर्णन किया है वह मिथ्या हो जायगा ।

जै जै बन्सी की पुरानी धुनि

ऐसी दयारूपी जिन धर्म जीव उद्धार करायो है ।
मेरे मन भायो है, सु मेरे मन भायो है ॥ टेक ॥
श्रावक मुनीश जानी द्रग बोध चरण मानो ।
जिनदेव सकल दरसायो है, सु मेरे मन भायो है ॥ १ ॥
उत्तम क्षमादि धारो, दश अङ्गको समारो ।
आगम अनुसार वतायो है, सु मेरे मव भायो है ॥२ ॥
इह भावनाको ध्यावे, पंचम गति को पावे ।
तिन शीस 'हजारी' नायो है, सु मेरे मन भायो है ॥ ३ ॥

दोहा—धर्म करत संसार सुख, धर्म करत निर्वान ।
धर्म पन्थ साधन विना, नर तिर्यंच समान ॥

क्षुल्लक महाराज द्वारा राजा मारिदत्त आदिका दीक्षा ग्रहण ।

श्री अभयरुचिकुमार नामक क्षुल्लक महाराज मारिदत्त नृपति से कहने लगे—राजन् ! श्री दुत्ताचार्य ने उपर्युक्त द्वादश अनुप्रेक्षाओं का वर्णन कर फिर मुझसे कहा—

हे वत्स ! मैंने जैसा आचरण बतलाया तू उसी प्रकार कर अर्थात् तू क्षुल्लक-वृत्ति धारण कर क्योंकि मुनि व्रत के धारने को तू असमर्थ हो जायेगा।

राजन् ! मारिदत्त ने उस समय श्री आचार्य की आज्ञा प्रमाण संसार-समुद्र के पार करने के जहाज तुल्य क्षुल्लक व्रत अंगीकार किया अर्थात् अन्य समस्त वस्त्राभरणों का त्याग कर एक शुभ्र वस्त्र [पिछोड़ी] और लंगोटी मात्र का ग्रहण किया तथा मस्तक के केशों को दूर कर पीछी और कमण्डल को धारण किया। तत्पश्चात्——

मद को विजय कर महाराज यशोमति और रानी कुसुमावली मुनि और आर्यिका के व्रत ग्रहण करते भये पश्चात् सुर और मनुष्यों कर सेवनीक श्री गुरुदेव सुदत्ताचार्य ने रानी कुसुमावली को गणिनी (आर्यिका) के निकट स्थापन किया।

वे श्री सुदत्ताचार्य गुरु जिन्होंने भगवान् सर्वज्ञ देव कथित तपश्चरण के करने में पूर्णतया मन स्थापन किया, तथा जिन्होंने कामदेव रूप मृत्यु का नाश किया वे गुरुवर्य्य ! निज ध्यान में ऐसे तल्लीन हुए कि ध्यानस्थ समय जिनके प्रस्वेद (पसीना) को निज जिह्वा से सर्पगण, चाटते हैं।

वे मुनिनायक तपस्या के योग से कृश शरीर हैं कि जिनकी अस्थिसंधि स्वयमेव कटकटादि शब्द करते हैं जिनके उत्तम तेजमूर्ति शरीर में समस्त पसुलीं और नशी जाल दृष्टिगत होता है, वे तपोनिधि। तपश्चरण करते जगत के जीवों को अभय प्रदान करते हैं।

नृपवर ! वे दिगम्बराचार्य शीतकाल में स्नेह (मोह) अथवा तैल वर्जित किन्तु पाले (वर्फ) के पटलों कर आच्छादित गात्र होते हुए रात्रि समय सरिता तट किंवा सरोवर के तट प्रति ध्यानस्थ होते हैं।

वे दया प्रतिपालक मुनिपुंगव, ग्रीष्म काल में पर्वतों की शिखर तथा मरु भूमि में जहां छाया के नाम एक पक्षी भी ऊपर होकर नहीं निकलता किंतु नीचे तो पाषाण की उष्णता, और ऊपर तेज पूर्ण दिवानाथ की उष्णता, तिस पर भी धूलि के पटलों से पूर्ण विकराल पवन गात्रको दग्ध करती थी ऐसे समय में वे गुरुवर्य निज आत्मा के ध्यान में ऐसे तल्लीन होते हैं कि जिनको किंचित् भी कष्ट नहीं होता।

वे गुणनिधि ! वर्षा काल में जहां सर्व आडम्बर युक्त मेघराज, समस्त धरातल पर अपना राज्य स्थापन करता है अर्थात् एक तरफ मेघ गर्जना करता है, कहीं विजुली चमकती है तिस पर भी झंझावात अपना प्रबल कोप दिखा रही है उस समय वे मुनिराज वृक्ष के नीचे निज ध्यान में मग्न होते हैं।

वे समदर्शी महामुनि, स्पर्श इंद्रियके आठ प्रकारके विषयमें समभाव धारण करते थे, स्वर्ग और मोक्षके मार्गको प्रगट दिखाते, माया मिथ्या और निदान एवं तीनों शल्यों का निराकरण करते, निज ज्ञान रूप अंकुश से अष्ट मद रूप मदोन्मत गजराज को निर्मद करते, किंतु मान और अपमानमें समभाव धारण करते, और शरीर से निष्पृह होते ध्यानमें तल्लीन होते हैं।

वे दयाके भण्डार, वृक्षोंकी कोटर, पर्वतोंकी कंदरा और स्मशान भूमिमें निवास करते; रात्रि समय धनुष्य, दण्ड, मृतक और शय्या एवं कठिन आसनोंमें क्रिंचित् निद्रा लेकर रात्रि व्यतीत करते हैं, तथा दिवसमें भी गोदुहासन, वज्रासन, पद्मासन, वीरासन, गज सुंडासन आदि अनेक आसनोंसे ध्यानमें लीन होते हैं।

वे महामुनि, पक्ष मासादि उपवास धारण करते, दीर्घ रोमावली सहित अस्थि पंजर, पूर्णगात्र, निजमन वचन और कायको वशमें लाकर आत्माके ध्यानमें ध्यानस्थ होते, तथा प्रस्वेद और रजादिकर लिप्त शरीर धारण करते, मेदिनी (पृथ्वी) वत् क्षमावान् सुमेरु समान धीर, आर्त्त, रौद्र एवं दोनों कुध्यानों कर रहित, ममत्व वर्जित हमारे गुरु श्री सुदत्ता-चार्य, प्रमाद रहित जीवों की दयायुक्त पृथ्वी पर भ्रमण करते यहां इस नगरके उद्यानमें आए हुए हैं, और उन ही यति पति के संग हम भी आये हैं, सो श्री गुरुकी आज्ञा प्रमाण गुरुके चरण-कमलोंकी वन्दना कर भिक्षाके अर्थ निकले हुए हैं।

तपश्चरण करते तथा जिन भगवान्का स्मरण करते मार्गमें गमन करते हम दोनों (भाई-वहिन) को, शुभाचरण के धारकों को किंकरोंने हाथमें पकड़ कर यहां देवी गृहमें प्राप्त किये।

अभयरुचिकुमार क्षुल्लक महाराज मारिदत्त नृपतिसे और भी कहने लगे—

राजेन्द्र! आपके किंकरोंने हम दोनोंको यहां लाकर आपके सन्मुख उपस्ति किया तत्पश्चात् जव आपने हमारा चरित्र पूछा, तो हमने अपने कृत कर्म द्वारा संसारका परिभ्रमण रूप समस्त वृतांत आपके कर्णगोचर किया, अव आपको जैसा रुचे वह कीजिये।

ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि उपरोक्त क्षुल्लक महाराजका समस्त जीवन चरित्र ज्ञात कर मारिदत्त नृप और चण्डीकादेवी एवं दोनों ही संसारसे उदास चित्त होते संसारसे विरक्त होकर प्रथम जो समस्त पशु युगलोंको ताप देनेका जो कार्य प्रारम्भ किया था उसका निषेध कर धर्ममें तत्पर हुए।

उस समय वे दोनों ही प्रतिवोधको प्राप्त होकर निज हृदयमें चिंतवन करने लगे—

इस लोकमें पवित्र और प्रधान बालक युगल यथार्थमें पूजनीक हैं, किन्तु मस्तकोपरि तिष्टते चूडामणि रत्न की भांति वन्दनीय हैं।

इस प्रकार चितवन कर मारिदत्त नृपति, चण्डिका देवी और उसके उपासक भैरवानन्दने वसाघृतकर आद्रित रसवान् मांस-दिगंत व्याप्त रुधिर तथा अस्थि मांस नसा जालसे व्याप्त किंतु मस्तक रहित कबन्ध और उसकी समस्त सामग्री मद्यपात्र आदि [जो कि चण्डिका गृहमें बलि प्रदानके अर्थ उपस्थित की गई थी] पृथ्वीतलमें क्षेपण कर उस कर्तव्यसे विमुक्त हुए।

पश्चात् राजाने कर्मचारियोंको बुलाकर कहा—

हे कर्मचारिन्! तुम शीघ्र जाकर, उपवनको सुशोभित करो—

कर्मचारीगण—(हाथ जोड़कर) जो आज्ञा महाराजकी! अभी शीघ्र जाकर उपवनको शृङ्गारित करते हैं।

इस प्रकार महाराजकी आज्ञा शिरोधारण कर समस्त कर्मचारियोंने शीघ्र जाकर, वृक्ष लता फल पुष्पादिसे मनोहर वन कि जिसमें रक्त पत्रोंसे युक्त आम्रकी शाखामें अनेक पक्षिगण अपनी मनोहर ध्वनि करते अत्यन्त रमणीक दृष्टिगत होते थे, कहीं खर्जूर ताल और तमाल आदिके वृक्ष, आकाशसे वार्त्ता करते थे।

कहीं जल निमानोंमें क्रीड़ा करते, हंस तथा चक्रवाक (चकवा) युगल अत्यन्त रमणीक दृष्टिगत होते थे, किसी स्थलमें लता मंडपोंमें तिष्ठती कमनीय कामिनी समूह निज मधुर स्वरसे गान करती पथिक जनोंके मनको मोहित करते थे।

किसी प्रदेशमें सरोवरोंमें प्रफुल्लित कमलोंपर गुंजार करते भ्रमरोंके यूथ, अपनी मदोन्मत्ता प्रगट करते थे।

कहीं२ महलोंकी पंक्ति शुभ्ररूप धारण किये अपनी उज्वलता और उच्चता प्रगट करते थे। उसी निर्मल वनमें कर्मचारियोंने मुक्ताफलोंकी जाली तथा रेशमी वस्त्रों मण्डप और रत्न विनि-मित चन्दोवा आदिसे ऐसा सुशोभित किया, मानो दूसरा स्वर्ग विमान ही स्वर्गकी लक्ष्मीको छोड़कर पृथ्वीतल पर आया है।

इत्यादि बनको सुशोभित कर महाराजके निकट जाकर निवेदन किया—

कर्मचारी—(उच्च स्वर से) श्री महाराजकी जय हो। आपकी आज्ञानुसार समस्त वन सुशोभायुक्त होगया।

इस प्रकार कर्मचारियोंकी वार्त्ताको श्रवणकर चण्डिकादेवी जो कि प्रच्छन्न रूपसे तिष्ठी हुई थी, प्रकट होकर महाराज मारिदत्तसे कहने लगी—

चण्डिका—राजन्! यद्यपि आपके कर्मचारियोंने उपवनको शृङ्गारित किया है तथापि मैं श्री क्षुल्लक महाराज के निवास उसे तपोवन बनाऊंगी।

महाराज—मातुश्री! जो आपकी अभिलाषा हो वही कीजिये।

इस प्रकार नृपतिकी सम्मति पाकर चण्डिका देवीने अपनी अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति-प्राकाम्य ईशत्व और वशित्व एवं अष्टगुणों द्वारा उस वनको और भी शृङ्गारित किया।

पश्चात् श्री अभयरुचिकुमार क्षुल्लक और अभयमती क्षुल्लिका तथा राजा मारिदत्त और भैरवानन्दको साथ लेकर महोत्सव पूर्वक तपोवनमें लेजाकर उपस्थित किया।

तदनन्तर देवोपनीत सिंहासन पर क्षुल्लक युगलको विराज-मान कर आप प्रकट होकर श्री क्षुल्लक महाराज के सम्मुख उपस्थित हो गई।

वह चण्डमारी देवी जो किंचित् काल पूर्व अस्थि, मांस, रुधिर, वसा आदिसे सर्वांग व्याप्त थी, मनुष्योंके रुन्डोंकी माला कंठमें धारण किये महा भयावनी मूर्ति थी सो श्री क्षुल्लक महाराजके उपदेशको श्रवण कर अपनी असली सूरतमें आकर समस्त हिंसादि कर्मका त्यागकर सौम्यवदन हो गई।

वह चण्डमारी देवी महा वात्सल्यांग धारिणी, प्रसन्न-वदना, सुवर्णका पात्र निज करकमलमें धारण किये सौम्य भावयुक्त, अपने चरणोंके अन्ततक कटिमेखला लटकाती, असदृश लावण्य और सौभाग्यकरि सारभूत लंबमान हारावलीके तेजकर मनोहरा, उछलती, स्वच्छ जलपूर्ण भृंगार (झाड़ी) कर शोभायमान करकमला, जिसके पग नूपरोंको ध्वनिको श्रवणकर मयूरगण नृत्य करते और उत्तम शब्द करते थे।

वह मनोहरा देवता निज पीनोन्नत कुच, क्षीणकटि, कृश उदर, आदि सर्वांग सुन्दर, देवोपनीत वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित, जैनमार्ग (दयाधर्म) में लीन होती, हिंसा धर्मको जलांजलि देती किन्तु पूर्व समाजमें एकत्रित किए हुए जीवोंके युगलों पर दयापूर्वक वात्सल्य धारण करती श्री क्षुल्लक महाराजके सन्मुख उपस्थित हुई। पश्चात्—

वह चण्डमारी देवी, नखोंकी सुन्दर क्रांतियुक्त गुरुके चरणोंमें पड़कर अपना शिष्यत्व समर्थन करने लगी पश्चात् जल और कमल युक्त तथा भ्रमरों कर चुंबित अर्घपाद्य कर गुरुके चरणोंको नमस्कार करने लगी—

स्वामिन्! आप केवल कृत्रिमकुर्कुटके मारनेसे सघन भव वनमें भ्रमें, मैंने असंख्य जीवोंको निज मायासे ग्रसित किया और रुधिरके समुद्रमें स्नान किया सो इन पापसे किस प्रकार मुक्त होऊंगी?

नाथ दयानिधे ! महिष, मेष आदि जीवोंका हिंसाजनित पातक जब तक मुझे ग्रसित न करे तब तक आप मेरी रक्षा करें।

हे देव ! पूर्वकृत तीव्र पाप से मुक्त होने के प्रायश्चित्त रूप तीव्र तप का आचरण करूंगी जिससे जीव-वध से उत्पन्न हुई हिंसा का पाप विलय हो सके।

इस प्रकार पापसे कम्पित देवी के विनयपूर्ण वचन सुनकर अभयरुचिकुमार क्षुल्लक महाराज इस प्रकार कहने लगे—

क्षुल्लक—हे देवि ! हे विस्तीर्ण नितम्बे ! हे हंसगमने, हे देवकामिनि ! उत्पाद शय्या से उत्पन्न हुए सप्त धातु उपधातु सहित शरीर के धारक, वात पित्त और कफ जनित रोगों से विमुक्त सार रूप शब्द और मनके मैथुन सहित तथा काम रहित तथा एक एक हाथ से अनेक धनुष प्रमाण देह के धारक, दश हजार वर्ष से तेतीस सागर पर्यंत आयु के भोक्ता व्यन्तर देवों के सर्वार्थसिद्धि के अहमिंद्र पर्यंत एवं समस्त देवों में तपश्चरण नहीं।

क्योंकि देवों के उत्कृष्ट चार गुण स्थान होते हैं इससे अव्रत पर्यंत रहते हैं अर्थात् सम्यग्दर्शन तो हो जाता है किंतु श्रावक के व्रत भी जो कि देशव्रत नामक पंचम गुणस्थान में होते हैं नहीं होते तो मुनिव्रत [जो कि प्रमत्त नामक छठे गुणस्थान में होता है] किस प्रकार हो सकता है ?

हे देवि ! इस चतुर्गति रूप संसार में और भी असंख्य जीव ऐसे हैं कि जो तपश्चरण ग्रहण नहीं कर सकते।

चंडमारी—स्वामिन् ! यदि उनका कथन मुझे भी श्रवण कराया जावे तो अत्यन्त कृपा होगी।

क्षुल्लक—यदि तू चित्त लगाकर श्रवण करेगी तो मैं अवश्य सुनाऊंगा। अच्छा तू सुन, मैं कहता हूं, इस प्रकार श्री क्षुल्लक महाराज कहने लगे—

पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वनस्पतिकाय, और पवन-काय, एवं आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास, इस प्रकार चार प्राण धारक ज्ञान रहित एकेन्द्रिय जीवों के दीक्षा का ग्रहण नहीं है।

हे सुकुन्तले ! उपरोक्त पंचस्थावरों के सिवाय शंख, लट आदि दोइन्द्रिय पिपीलिका, [चींटी] आदि तेन्द्रिय और भ्रमर आदि चौ इंद्रिय एवं विकलत्रय जीवों के भी दीक्षा ग्रहण नहीं है।

इसी प्रकार असैनी पंचेन्द्री तथा सैनी पंचेन्द्री तिर्यंचों में दीक्षा धारण नहीं होता। हां, इतना अवश्य है कि जो सैनी पंचे-न्द्रिय सौम्य स्वभावी तिर्यंच हैं उनके पंचम गुणस्थान होने से श्रावकके व्रत हो तो हो सकते हैं किंतु मुनिव्रत नहीं हो सकते। मुनिव्रत तो केवल मनुष्य पर्याय में ही होता है।

हे देवि ! मनुष्यों में भी जो परके ठगने में तत्पर, दूसरे की ज्यादा चीज लेना, और अपनी कमती देना, झूठी साक्षी देने-वाले, पर जीवोंके घातनेमें कठोर परिणामी, मायाचारी, अति-शय क्रोधी, सप्त व्यसन के सेवने वाले, हलवाईगिरी का व्यापार लोह पीतल का व्यापार, लाख, शक्कर, अनाज [गल्ला], सींक रस्सा आदि के व्यापार करने वालों में भी जिन दीक्षा न हो।

हे सुकोमले ! रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूम्रप्रभा, तमप्रभा और महातमप्रभा, इन नरकों की सातों ही पृथ्वी के नारकियों में तपश्चरण नहीं हो सकता। हां, इतना अवश्य है कि उपर्युक्त नारकियों के सम्यग्दर्शन हो जाता है।

हे शोभने ! तिर्यंचों में भी जो सर्प, गोह, नौला, तथा एक खुरके धारक घोटक (घोड़ा) आदि, फटे खुर के धारक महिष आदि तथा हस्ती आदि स्थलचर और मीन, कछवा, मगर आदि जलचर और गृद्ध, काग, चील्ह, घुग्घू आदि नभचर जीवों के भी जिन दीक्षा नहीं हो सकती।

हां, यदि किसी महात्मा का उपदेश मिल जाय और काल-लब्धि निकट आ जाय तो सम्यग्दर्शन तथा श्रावक के व्रत हो सकते हैं।

हे देवकामिनि ! मनुष्योंमें भी स्त्री, वालक, वृद्ध, मुनिघातक ग्रामोंके दाहनेवाले, परस्त्री लंपट, मद्य, मांस, मधुके लंपटी, द्यूतक्रियामें रत, वेश्यासक्त, जैन धर्मके निंदक, चोरकर्मी, शिकारी निर्दय परिणामी, दूसरोंमें लड़ाई झगड़ा करानेवाले, दूसरेके धन ऐश्वर्यको देखकर झूरनेवाले इत्यादि जितने निर्दय परिणामी हिंसाके व्यापारमें संलग्न रहनेवाले हैं उनके भी मुनिव्रत नहीं हो सकता। हां, जब वे ही सद्उपदेशसे पूर्व कर्मका त्याग कर देवें तो अवश्य हो सकता है।

देवि ! यद्यपि समस्त पर्यायोंमें मनुष्य पर्याय उत्तम है क्यों-कि मोक्षका उपाय इस पर्यायके सिवाय अन्यमें नहीं है, परन्तु जो मूर्ख मोक्षके साधनोंसे अनभिज्ञ होकर विषयमें लम्पटी होते हुए हिंसादिक कर्ममें प्रवृत्त होते हैं वे अति रौरव नरकमें पड़ते हैं।

वहां मानसिक दुःख है ही, परन्तु क्षेत्र जनित और असुर कुमारों द्वारा परस्पर लड़ने भिड़नेसे तीसरे नरक पर्यंत अति त्रासित होते हैं।

वे नारकी अत्यन्त परिग्रहके धारनेसे, नरककी पृथ्वीमें विहार करनेसे, अनन्त दुःखोंके भाजन होते हैं और परमाणुके सम्मिलन तथा नेत्रके टिमकार काल भी वहां सुख नहीं है।

नरकोंके नारकी परस्पर शस्त्र प्रहार करते, कम्पित शरीर होते, एक दूसरेको खण्ड २ करते हैं तो भी पारेवत् मिल जाते हैं। इसके सिवाय नारकियोंका शरीर खड्गसे छेदा जाय, त्रिशू-लसे भेदा जाय, घानीमें पेला जाय तो भी आयु पूर्ण हुए बिना नाशको प्राप्त नहीं होता।

सातों अधो भूमियों में किये हुए अन्तर युक्त चौरासी लाख विलोंके उदरमें प्राप्त हुए नारकियोमें जिन दीक्षा नहीं। पर वैरानुबंधके बलसे जानेवाले तथा शरीरको विक्रियासे उत्पन्न किये आयुधोंसे परस्पर युद्ध करनेवाले नारकियोंमें मुनिव्रत नहीं।

नित्य रौद्र परिणामी संहारकर्त्ता सात प्रकारके नारकियोंमें दिगम्बरी दीक्षा नहीं होती।

हे भद्रे! इसी प्रकार अनेक सुखोंके आस्वादक अमृतभोजी और अनुपम क्रीड़ामें रत ऐसे देवोंमें दिगंबरी दीक्षा नहीं होती।

इनके सिवाय कल्पवृक्षोंसे उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके पदार्थों के सेवनसे और मरण कर देव गतिमें जानेवाले भोगभूमियाँ मनुष्योंमें भी तपश्चरण नहीं होता।

तथा जो मिथ्यामति और उनके भक्त कुचारित्री, तापसी, मेषी, कुपात्र दानके दाता, विपरीत कर्ण पल्लव समान मुखके धारक, छानवे कुभोग भूमिके मनुष्य तथा आठसौ पचास म्लेच्छ खण्डके मनुष्योंमें भी तपश्चरण नहीं है।

जम्बूद्वीप, धातुकी खंडद्वीप, और पुष्करार्द्ध एवं अढ़ाई द्वीपके अन्तिम जीवोंमें एकसौ सत्तर कर्मभूमियोंके मनुष्योंमें यद्यपि जिनदीक्षा और मोक्षका सद्भाव है तथा निम्नलिखित क्रिया विना मोक्षकी प्राप्ति नहीं है।

जो पुरुष उपरोक्त कर्मभूमियोंमें उत्पन्न होकर श्री गुरुको नमस्कार कर गर्व और कुटिल भावोंके विना पंचेन्द्रिय जनित सुखको तृण समान गिनता हुआ तपश्चरण करता है वह मुनि-पुंगव अनल्प दिनोंमें ही सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप एवं चार आराधनाओंका फल अविचल केवलज्ञानको प्राप्त हो जाता है।

भो, त्रिदशभामिनि! देव और नारकियोंमें सम्यक्त्व हो तो जाता है, किंतु उस भवमें तपश्चरण नहीं होता। इसी प्रकार

भोगभूमिके मनुष्यों में सम्यग्दर्शन होता है, जिन दीक्षा नहीं होती, तिर्यंचोंमें सम्यग्दर्शन और श्रावकके व्रत भी होते हैं किंतु तपश्चरण नहीं होता, और कर्मभूमिके मनुष्योंमें समस्त व्रत होते हैं क्योंकि महाव्रत रूप भारके वहनेमें मनुष्य ही समर्थ है।

इस प्रकार श्री मुनिके कथनको श्रवण कर संसारके दुःखोंसे भयभीत होकर वह चंडिकादेवी सम्यग्दर्शनको धारण कर श्री क्षुल्लक महाराजको नमस्कार कर सुमधुर वाणीसे श्रीगुरुसे कहने लगी—

चंडिका—नाथ! चतुर्गति रूप पाताल गर्तों सहित दुःख कर तरने योग्य और अत्यन्त भयानक घोर, संसार—समुद्रमें पड़ती हुई मुझे आपने हस्तावलम्ब दिया।

स्वामिन्! आप देवोंके देव और जैनसिद्धांतके रहस्यके पूर्ण ज्ञाता हो इस कारण आप मेरे स्वामी हो और मैं आपके चरणों की दासी हूं।

हे धर्मवत्सल! आपसे एक प्रार्थना करना चाहती हूं, यदि आपकी आज्ञा हो तो निवेदन करूं।

क्षुल्लक—हे देव भामिनि! जो इच्छा हो वह कह, तुझे योग्य उत्तर दिया जायगा।

चंडिका देवी—स्वामिन्! विज्ञप्ति यह है, कि आपने कहा कि देव पर्यायमें तपश्चरण नहीं है सो तो ठीक ही है। परंतु यह तो कहिये कि अब मुझे क्या करना चाहिये? आप कृपाकर शीघ्र मुझे सन्तोषित कीजिये।

क्षुल्लक—(मेघोंकी विजय करनेवाली दुंदभि समान शब्द उच्चारण करते) शोभने! जिस पुरुषके शरीरमें व्रण (घाव) वा गूमड़ा नहीं होता उसपर मक्षिका नहीं बैठती।

इसी प्रकार जो सर्व वस्तुसे निर्ममत्व रखता है वह किसीके दिये हुएको ग्रहण नहीं करता।

इस प्रकार श्री क्षुल्लक महाराजके वचनोंको श्रवण कर चण्डिकाने कहा—

चंडिका—हे गुणरत्न भंडार! आपने यत्किंचित् संकेत मात्र वर्णन किया वह मैं पूर्णतया समझ गई, आपकी आज्ञानुसार ही करूंगी।

क्षुल्लक—भो देवि! यदि तू मेरे वचनानुसार परोपकार पूर्वक जीव दयामें तत्पर रहेगी और जिन वचनोंका श्रद्धान करेगी तथा धर्मात्माओंकी रक्षा करेगी तो अवश्यमेव तेरा कल्याण होगा।

इस प्रकार क्षुल्लक महाराजके वचनोंसे संतुष्ट होती हुई चंडिकादेवी श्री क्षुल्लक महाराजके चरणोंको पुनः पुनः नमस्कार कर उनकी आज्ञाको शिरोधारण करती हुई। पश्चात् श्री गुरुके समक्ष महीपतिसे कहने लगी—

चंडिका—राजन्! अभीतक तो जो कुछ हुआ सो हुआ। परंतु अब आजसे किंचित् मात्र भी किसी जीवकी हिंसा न करना।

पृथ्वीनाथ! आजसे अपने समस्त राज्यमें इस बातकी घोषणा कर देना चाहिये कि समस्त प्रजा सौम्य भाव धारण कर रौद्र भावको त्यागे अर्थात् जो पुरुष, स्त्री, बालक और वृद्ध वनमें उपवनमें चौपथमें जिन गृहमें देवीके मंदिरमें साक्षात् पशुको तथा कृत्रिम पशुकी, देवता पितृ इत्यादिकोंके निमित्त हिंसा करेगा उसे मैं (देवी) गृह कुटुम्ब सहित क्षयको प्राप्त करूंगी।

इस प्रकार चण्डिका देवीके आदेश पूर्ण वचन सुनकर मारिदत्त नृपति इस प्रकार कहने लगा—

नृपति—मातुश्री! आपकी आज्ञासे पूर्व ही श्री क्षुल्लक महाराजके उपदेशसे मेरा हृदय जीव हिंसासे सकम्प होगया था, क्योंकि श्री क्षुल्लक महाराजने यशोधरके भवमें कृत्रिम कुर्कट ही

कुल देवीके अर्थ अर्पण किया था, उसी पापसे आपने जो संसारमें परिभ्रमण किया उसका चरित्र हृदयविदारक है।

भो चंडिके ! ऐसा कौन पाषाण-हृदय होगा जो श्री गुरुकी भवावलीको श्रवण कर जीव हिंसासे भयभीत न हो ? मैंने भैरवानंदकी आज्ञानुसार अनेकश: जीवोंके युगल एकत्रित किये, उसीसे मेरा हृदय भयसे सकंप हो रहा है, तिसपर भी आपकी आज्ञा हुई, अब तो अवश्य ही अपने राज्यमें जीव हिंसा नहीं होने दूंगा।

इसप्रकार मारिदत्त नृपतिको आज्ञा प्रदान कर और श्री मुनिके चरणोंको नमस्कार कर श्री गुरुको आज्ञानुसार चंडिका देवी अदृश्य होकर निज स्थानको प्रयाण कर गई। तत्पश्चात्—

पुलकित-लोचन होते और अपने गुणोंकी निंदा करते मारिदत्त महाराज निज हृदयमें शुद्ध बुद्धके ध्यानमें रत और दिग्गज समान गतिके धारक श्री क्षुल्लक महाराजके चरणोंमें नमस्कार कर इस प्रकार निवेदन करने लगे—

मारिदत्त नृप—स्वामिन् ! आपने निज माताके आग्रहसे कृत्रिम कुर्कुटका घात कर कुलदेवताके अर्थ अर्पण किया उसी पापसे आप संसार-वनमें इतने भ्रमें और इतना क्लेश भोगा कि जिसका पारावार नहीं तो मैंने जो अनेक जीवोंके इतने युगलोंका हनन किया कि जिसके देखनेसे वज्र हृदय भी दयाकर पूर्ण हो जाता परन्तु मेरे हृदयमें किंचित् भी दया न आई।

नाथ ! धर्मवत्सल ! उपरोक्त पाप कर्मसे नारकी जीवोंके रक्तसे व्याप्त अंधकारमय नारकियोंके कोलाहल शब्दसे पूर्ण और महारौरव नरकमें पड़ कर दु:सह वेदनाका पात्र बनूंगा।

हे गुणरत्नाकर ! उपर्युक्त पापकी शांतिके अर्थ समस्त पापों की निवृत्ति करने वाली निग्रन्थ वृत्तिका ही आचरण करूंगा। क्योंकि जबतक निर्जन वन गिरि गुफा आदिमें निवास कर

दिगम्वरी वृत्ति धारण कर पाणिपात्र आहार न करूंगा तब तक संसार रूपी दृढ़पाशसे मुक्त होना कष्ट-साध्य ही नहीं किंतु असंभव है,इस कारण आप मुझे जिनदीक्षा देकरकृतार्थ कीजिये।

इस प्रकार मारिदत्त नृपति के वचन सुनकर क्षुल्लक महाराज ने, मारिदत्तासे इस प्रकार कहा--

क्षुल्लक—राजन् ! आपका विचार अत्युत्तम है परंतु मैं स्वयं महाव्रतका धारक मुनिराज नहीं, इस कारण आपको दीक्षा नहीं दे सकता।

इसके सिवाय यह भी एक नियम और आचार-व्यवहार है कि यदि अपने गुरु निकटस्थ हो तो स्वयं दीक्षा, शिक्षा किसीको न देवे, और यदि हठात् देवे तो वह पापियोंकी पंक्तिमें गिना जायगा। इस कारण तुमको अपने गुरु सुदत्ताचार्यके निकट ले चलता हूं, वे ही आपको दीक्षा शिक्षा देवेंगे।

इस प्रकार श्री क्षुल्लक महाराजके वचन सुनकर मारिदत्त नृप आश्चर्य युक्त होता हुआ निज हृदयमें विचार करने लगा—

आहाहा ! जगतमें तपस्याके समान कोई महान नहीं, क्योंकि समस्त मनुष्योंमें मैं पूज्य, मुझसे पूज्य चण्डिका देवी तथा देवीके गुरु क्षुल्लक महाराज और क्षुल्लक महाराजके भी गुरु श्री सुदत्ताचार्य हैं यह समस्त तपकी महिमा है।

इस प्रकार अपने हृदयमें विचार कर पुनः विनय पूर्वक हाथ जोड़ नृपतिने क्षुल्लक महाराजसे कहा—

नृप—धर्मरत्न भंडार स्वामिन् ! आपके श्रीगुरु कहां तिष्ठे हुवे हैं, आप मुझे उनके निकट ले चलिये, मैं चलनेको तैयार हूं।

इस भांति नृपतिकी विज्ञप्ति सुनकर क्षुल्लक महाराज राजाको अपने साथ लेकर श्री सुदत्ताचार्यके निकट पहुंचे।

वे श्री सुदत्ताचार्य महामुनि ! अवधिज्ञान नेत्रके धारक, देव मनुष्यों कर पूज्य, अष्ट मदोंको निर्मद कर मोह मल्लको

निर्जित कर गुण समृद्ध, अनेक ऋद्धियों कर पूर्ण होते हुये समस्त कर्मोंके बलको जर्जरित किये हुए हैं।

वे दयानिधि दिगम्बराचार्य तपमें तिष्ठे हुए दशधा धर्मको धारण करते निज आत्माके ध्यानमें मग्न हैं।

उन महा तपस्वी आचार्यवर्यके निकट पहुंचकर क्षुल्लक महाराज और मारिदत्त नृपतिने उन जगत् पूज्य श्रीगुरुके चरणों की वन्दना की पश्चात् भूमिसे मस्तक लगाकर गुरुके चरणोंके मूलमें तिष्ठे। तत्पश्चात्—

उस अवसरमें गुणोंके समूहोंसे महान् श्री सुदत्ताचार्य गुरुने धर्म वृद्धि दी, जिसे सन्तुष्ट मनसे नृपतिने मस्तक पर ग्रहण की।

तदनन्तर हर्षित-चित्त होकर महाराज मारिदत्तने श्री गुरुवर्यको नमस्कार कर कहा—

स्वामिन्! मुझे आपकी भवावलीके श्रवणकी अभिलाषा है तथा यह मस्तक नीचा किये हुये गोवर्द्धन सेठ बैठा हुवा है इसके भवोंकी कथा, मेरे संसार-भ्रमणका चरित्र, इस शांति चित्त हुए भैरवानन्दकी संसार कहानी, चण्डमारी देवीके भवोंका वृत्तान्त, तथा गुण पूर्णप्रधानपुरुष यशोधर राजा, चन्द्रवदनी चन्द्रमती रानी तथा महा अवगुणोंकी खानि दुश्चारिणी पापिष्ठा जारकर्म दक्षा अमृतमती, जगत्प्रसिद्ध विनयगुणयुक्त यशोमति नृपति और लज्जावती, विनयवती, कुसुमकुमारी की भव सम्पत्ति आप कृपाकर कहिये जिससे हमारा संशय दूर हो। इसके सिवाय घोड़ाके भी भवोंका वर्णन कीजिये।

इस प्रकार मारिदत्ताकी प्रार्थनासे श्री आचार्यवर्य कहने लगे—राजन्! यदि तेरी यही इच्छा है तो मैं कहता हूं तू चित्त लगाकर श्रवण कर जिससे तेरे हृदयका संशय-तिमिर नष्ट होकर ज्ञान-सूर्यका प्रकाश होजाय।

श्री आचार्य—राजन् ! उत्तम ऋद्धियुक्त प्रसिद्ध गंधर्व नामक देश है, जहां खेतोंमें पके हुये शालिके वृक्षोंकी झनकार और चावलोंकी सुगन्धिसे समस्त वन सुगन्धमय हो रहा है, जिस देशमें मृगनाभि (कस्तूरी) की सौरभ कर अति सुगन्धमय और अति उन्नत शिखरोंकी शोभासे गंधर्वनगरकी शोभाको तिरस्कार करता गन्धगिरि नामका पर्वत है।

उस पर्वतके ऊपर घन कण कर सम्पूर्ण गृहोंकी पंक्ति और शुभाचारी मनुष्योंके निवासयुक्त गंधर्वपुर नामकी नगरी है जिसमें राजमार्गका ज्ञाता वैदर्भ नामका राजा हुआ। वह नृपति असदृश दान और भोगोंकर चिह्नित शरीरका धारक शत्रुवर्गके दलवलका घातक और राजनीतिमें अति निपुण न्यायपूर्वक प्रजाका पालन करता था।

उस वैदर्भ नामक पृथिवीपालके विंध्यश्री नामकी अति मनोहरा पतिव्रता स्त्री थी। वह विंध्यश्री निज स्वरसे कोकिला व निजमतिसे हंसिनी की विजेता थी जिसकी रूप सम्पदाको देखकर देवांगना भी लज्जित होती थी।

उस विंध्यश्री रानीकी कुक्षिसे कामदेव समान अनुपम रूप का धारक सज्जनों कर प्रशंसनीय गन्धर्वसेन नामका पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ तथा अति कोमल और क्षीण शरीरको धरनेवाली उत्तम लक्षणों युक्त गंधश्री नामकी पुत्री उत्पन्न हुई।

इन पुत्र पुत्रीका मनोहर युगल ऐसा दृष्टिगत होता था मानों विधाताने स्वयं उसका लालन-पालन कर जगतमें उत्तम रूप लावण्य युक्त किया है। वह युगल जैसा ही रूपवान था वैसा हीं स्वभावकर सौम्य और मधुर वचनों द्वारा लोगोंका मनोरंजन करता था। वह युगल निज बाललीलासे समस्त पुरजन और परिजनको प्रिय था। जिसका विद्याभ्यास अनेक सुरीतियोंका बोधक और ज्ञानवृद्धिका मुख्य कारण था।

वह गन्धश्री नामकी पुत्री ! सुकोमलांगी गजगामनी मृदु-हासिनी निज माता पिताओंके चित्तको आनन्ददायिनी थी।

वह मानका रचनेवाला सज्जन पुरुष रूप कमलोंको दिवाकर तुल्य, दुष्टजन रूप गजराज को सिंह समान और दीर्घजीवी नरेश्वर अपनी पुत्रीको पुत्र समान मानता राज्य भोगता था।

उस वैदर्भ नामक नृपतिके मन्त्रविद्या विशारद, सर्व विद्याओंमें निपुण, राज्यभार चलानेमें चतुर, राम नामका मन्त्री था जिसके रूप लावण्य गुण विशिष्टा पतिव्रता और निज पतिकी अनुगामिनी चन्द्रलेखा नामकी प्रिय भार्या थी।

उस चन्द्रलेखाके उदरसे उत्पन्न हुआ, दोष रहिर, गर्व रहित, भय रहित, रूप गुणका पात्र, शत्रु दलका विध्वंसक जितशत्रु नामका पुत्ररत्न पृथ्वीपर प्रसिद्ध था।

उस जितशत्रु भीम नामका लघु भ्राता पाप कर्ममें चतुर भीम समान बलवान् और कपट चातुर्यमें निपुण था।

श्री सुदत्ताचार्य मारिदत्त नृपसे कहने लगे—राजन् ! वह वैदर्भ नामका राजा निज चातुर्य और न्यायपरायणता पूर्वक राज्य करता काल व्यतीत करने लगा। एक दिन सखियों के साथ क्रीड़ा करती गन्धर्वश्री नामकी अपनी पुत्रीको यौवनरुढ़ देखकर हृदयमें विचार करने लगा कि पुत्री विवाह योग्य हुई है।

इसके वास्ते वर ढूंढ़ना परमावश्यक है ऐसा विचारकर अपनी प्रिया पत्नी विन्ध्याश्रीसे इस प्रकार कहा—

वैदर्भनृप— प्रिये ! आज पुत्रीको देखकर मुझे इसके विवाह की चिंता उत्पन्न हुई है अर्थात् पुत्री विवाह योग्य हो गई तो इसके अर्थ योग्य वरकी खोज करना चाहिये। वर भी ऐसा होना चाहिये जैसी कि रूपवती गुणवती और रूप लावण्य गुण-युक्त पुत्री है।

विंध्यश्री रानी—प्राणनाथ ! आपका कहना सत्य है परन्तु हम तो पुत्रोके जन्म और पालन-पोषणके अधिकारी हैं। कन्याके योग्य वरकी खोज करना आपके अधिकारमें हैं, इससे आप ही मंत्रियों द्वारा योग्य वरकी खोज कीजिये।

वैदर्भनृप—प्रिये ! तुम्हारा कहना यथार्थ है परंतु तुमको पूछ लेना भी तो सर्वथा उचित है।

विंध्यश्री—प्राणवल्लभ ! यह आपका अनुग्रह है परन्तु अब आप ही जैसा उचिय समझें पुत्री का पाणिग्रहण करवाईये।

इस प्रकार महारानीसे वार्त्तालाप कर द्वारपालको बुलाकर मन्त्रिमण्डलको एकत्रित करनेकी आज्ञा दी, सो द्वारपालने समस्त मन्त्रियोंको बुलाकर एकत्रित किया और राजाने उनसे इस प्रकार पूछा—

वैदर्भनृप (मन्त्रियोंसे)—आज निज सखियों सहित क्रीड़ा करती पुत्रीको देखकर पुत्रीके विवाहकी चिन्ता उत्पन्न हुई है सो आप लोग योग्य वरकी खोज कीजिये।

राम मन्त्री—पृथ्वीनाथ ! आपकी आज्ञा शिरोधारण करता हूं। यद्यपि प्रतापी राजाओंके अनेक पुत्र हैं तथापि पुत्रीके योग्य वर दृष्टिगत नहीं होता क्योंकि नीति शास्त्रमें सप्त गुणयुक्त वर कहा है। यथा—

श्लोक

कुलं च शीलं च वपुर्वयश्च, विद्या च वित्तं च सनाथतां च।
एतान् गुणान् सप्त परीक्ष्य देया, ततः परं भाग्यवशा हि कन्या॥

अर्थ—उत्तम कुल, सुन्दर लोकप्रिय स्वभाव, नीरोग शरीर, पूर्ण आयु, लौकिक और पारमार्थिक विद्या, योग्य धन और स्वामित्व एवं सप्तगुणों की परीक्षा लेना पश्चात् कन्या का भाग्य है।

स्वामिन् ! उपर्युक्त गुणविशिष्ट राजपुत्र मेरी दृष्टिमें नहीं आता क्योंकि, बहुत खोज करने पर भी कहीं कुल है तो अन्य गुण नहीं इत्यादि किसीमें भी सातों गुण देखनेमें नहीं आते, इस कारण मेरी सम्मति तो यह है कि पुत्री स्वयं योग्य वरको देखकर उसके कण्ठमें वरमाला डाले तो अत्युत्तम होगा, क्योंकि गन्धश्री पुत्री स्वयं सामुद्रिकादि अनेक शास्त्रोंकी ज्ञाता है वही योग्य वरको वरे तो उत्तम है ।

वैदर्भ नृप—तो क्या स्वयम्बर मण्डप बनवाना चाहिये ।

राम मन्त्री-(हाथ जोड़कर)-श्री महाराज ! अवश्य स्वयंवर मण्डप बनाना होगा और समस्त राजपुत्रोंको निमंत्रण भेजना होगा ।

इस प्रकार राजमंत्री का कथन श्रवण कर महाराजने अन्य मंत्रियोंसे भी सम्मति मांगी, सो सर्व मंत्रियोंने भी राम मन्त्रीकी भांति स्वयंवर मण्डपकी सम्मति दी ।

महाराज वैदर्भने सर्व मन्त्रियोंकी संमतिसे स्वयम्वर करनेकी राय पक्की कर मन्त्रियोंको आज्ञा दी कि स्वयम्वर मण्डप तैयार कराकर राजपुत्रोंको बुलानेके अर्थ हलकारों द्वारा निमंत्रण पत्र भेजनेकी भी आज्ञा दी सो समस्त राजकर्मचारियोंने जो जिसका काम था उसने उसे सम्पादन किया ।

स्वयम्वरके अर्थ अत्युत्तम अनेक स्तंभोंका मण्डप तैयार कर राजपुत्रोंके बैठने योग्य रमणीक मनोरंजक स्थान निर्मापण किया ।

अनेक देशोंके आये हुए राजपुत्रोंका स्वागत राजकर्मचारियों ने सर्व प्रकारसे अत्युत्तम किया । पश्चात् जिस समय समस्त राज कुमार अपने-अपने वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित होकर मंडपमें बैठे उसी समय गंधश्री नामकी राजपुत्रीने अपनी सखियों सहित स्वयंवर मंडपमें आकर समस्त राजकुमारों पर दृष्टिपात किया ।

उस समय वृद्ध खोजा ने सर्व कुमारोंके नाम, कुल, गुणस्थान, पराक्रम आदिका वर्णन किया। परन्तु राजपुत्रीके हृदयमें एकभी राजपुत्रने प्रवेश न किया, किंतु रामनाम नामक मंत्रीका पुत्र जितशत्रु जो कि यथार्थमें जितशत्रु ही था उसके कंठमें वर-माला डाली।

जिस समय राजपुत्रीने जितशत्रुके कण्ठमें वरमाला डाली उस समय न्यायवान् नृपतियों द्वारा धन्य धन्य! वाह वाह! का शब्द सर्व ओरसे प्रतिध्वनित होने लगा।

पश्चात् विधिपूर्वक पाणिग्रहण हुआ उस समय शंख, तुरही, भेरी आदि अनेक वादित्रोंके शब्दसे सर्व दिशा बधिर होने लगी इसके सिवाय और भी अनेक प्रकारके उत्सवोंसे विवाहका कार्य समाप्त हुआ।

तदन्तर जितशत्रु अपनी प्रिया सहित सुखपूर्वक मनोरंजक क्रीड़ा करता काल व्यतीत करने लगा।

अथानन्तर एक दिवस वैदर्भ महाराज मृगया (शिकार) के अर्थ अनेक बधिक (शिकारी) आदि अनेक शस्त्रधारी सुभटों और हिंसक जानवरों सहित वनको गए। वहां हिरणके युगलको दूबके अंकुर चरते देख बाणका निशाना लगाया सो वह हिरण और हिरणी एवं दोनों ही यह आपत्ति देख वहांसे भागे परंतु भागकर कहां जा सकते थे?

राजाने भी उनके पीछे घोड़ा दौड़ाकर बाण छोड़ा सो हिरणी बाणसे वेधित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।

उस प्राण रहित मृगीको बधिकोंने उठाकर प्रयाण किया पश्चात् उस दौड़ते हुए हिरणने जब मृगी-निज स्त्रीको न देखा तो दिशा भूल होकर पुकारता हुआ इतस्ततः भ्रमण करने लगा।

वह हिरण निज पत्नीके विरहमें व्याकुल ऐसा अंध होगया कि उसे अपने प्राणोंका भय न रहा। किंतु दौड़ता गिरता शब्द

करता और नेत्रोंसे अश्रुधारा बहाता मृतक हिरणी की ओर आया।

उस समय हिरणकी शोकपूर्ण अवस्था देखकर राजा वैदर्भ का हृदय दया-रससे आर्द्र होने लगा।

उस समय करुणारससे पूर्ण गर्व रहित हुआ राजा वैदर्भ अपने हृदयमें चितवन करने लगा—हा शोक ! मैं इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त होकर शारीरिक क्रियामें लंपट अज्ञानी होता हुआ इतने काल पर्यंत धर्म अधर्म तथा उसके फल सुख दुःखसे अनभिज्ञ ही रहा।

हा ! मैंने विषयोंमें सुख मान किसी भी प्रकारका परोपकार, न किया किन्तु निरपराध जीवोंकी हिंसा कर उलटा पाप का बन्ध किया।

राजा विचार करने लगे—अब मुझे समस्त पापकर्मोंका त्याग कर धर्म सेवन करना ही उचित है क्योंकि इन विषयोंको सेवन करनेसे कल्प कालमें भी तृप्ति नहीं होगी। इसके सिवाय ये विषय वर्त्तमानमें तो उत्तम ज्ञात होते हैं किन्तु परिपाकमें अति विषम और नरकादिको ले जानेवाले हैं।

इस प्रकार संसार देह और भोगोंसे विरक्त होकर नृपति निज गृह जाकर सर्व राजमण्डल को एकत्रित कर निज वैराग्य की सूचना करने लगे।

यद्यपि समस्त राजकर्मचारीगण और रनिवास आदिने राजाके वैराग्यसे शोकाकुल होकर राजाको दीक्षासे निवृत्त करनेके अर्थ अनेक प्रकारके षड्यंत्र रचे, परन्तु वैराग्य-विभूषित नृपति किसी प्रकार न रुके, किन्तु अपने प्रिय पुत्र गंधर्वसेनको राज्यासन समर्पण कर आप तपोवनको गमन कर जैनाचार्यके निकट जिन दीक्षा ग्रहण करते हुए।

उसी समय महारानी विंध्यश्री भी आर्यिकाओंके निकट समस्त परिग्रहका त्याग कर एक श्वेत साड़ी मात्र धारण कर भगवतीके यशको प्रकाशित करती आर्यिकाके व्रतको ग्रहण करती हुई।

वे वैदर्भ महाराज समस्त वस्त्राभूषणादि परिग्रहका त्याग कर परम दिगंबरी दीक्षा धारणकर श्री सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र-रूपी धनसे अलंकृत हो दिशारूप वस्त्रोंको धारणकर महा-मुनि हुये।

वैदर्भमहाराज मुनि हुए पश्चात् गन्धर्वसेन शत्रुओंके मानको मर्दन करनेवाले राज्यासन पर बैठा।

वह गन्धर्वसेन गजराज, अश्व, रथ, पयादे आदि राज्य-ऋद्धि युक्त न्याय पूर्वक प्रजाका पालन करने लगा।

एक समय उस गन्धर्वसेनने अपनी सेना सहित यत्न पूर्वक पवित्र और निर्मल-चित्त निज पिता वैदर्भऋषिके निकट गमन किया।

उस समय वैदर्भऋषि सन्यासमें तिष्ठे हुए थे। जिस समय गन्धर्वसेनको चतुरंग सेना सहित पूर्ण तेजयुक्त देखा, उस समय वैदर्भनृपने निज हृदयमें निदान किया कि मैं निज व्रतके प्रभाव से इस प्रकार की ऋद्धिका धारक धरापति होऊं।

श्री ग्रंथकर्त्ता कहते हैं कि हा ! धिक् ! इस निदान बंधको कि अमूल्य रत्नको तंदुलके तुष[भूसी] में दे दिया ! जिस तप-श्चरणके प्रभावसे इन्द्रादि पद तथा मोक्षकी प्राप्ति होती है उस महान् फलदायक व्रतके फलको किंचित् विभूतिके लोभमें विक्रय कर दिया।

पश्चात् वह मिथ्यात्व कर दूषित वैदर्भऋषि आयुके अन्तमें मरणको प्राप्त होकर उज्जैनी नगरीमें यशोधर राजाके गृहमें यशोर्ध नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह यशोर्ध निज यशसे समस्त

दिग्मंडलको पूरित करता हुआ। समुद्रांत पृथ्वीके स्वामित्वका राज्य पट्ट निज ललाट प्रति धारण करता हुआ।

विंध्यश्री (विदर्भकी रानी) जो आर्यिका हुई थी भगवानके चरणकमल निज हृदयमें धारणकर तपश्चरणकर शरीरका शोषणकरती और मिथ्यात्वके उदयसे गंगादि सरिताओंमें तीर्थ की कल्पना कर स्नान करती अन्त समय मरणको प्राप्त होकर अजितांगज राजाके गृहमें चंद्रमती नामकी पुत्री हुई।

वह चंद्रमती स्वभावकी भोली और बुद्धिकर मंद थी उसे यशोधर नृपतिने परणी पश्चात् चंद्रमतीकी कुक्षीसे यशोधर नामका पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ।

वह यशोधर अपने परिवारके पोषणमें कल्पवृक्ष तुल्य हुआ। एक समय जब यशोर्ध महाराजको वैराग्य उत्पन्न हुआ तब यशोधरको राज्यासन पर स्थापन कर समस्त राज्यभार सम्पूर्ण किया।

पश्चात् यशोर्ध महाराज समस्त परिवार और शरीरादिसे मोहका त्याग कर द्वादश विध तपश्चरण कर अन्त समय समाधिमरण कर छट्ठे ब्रह्मोत्तर नामक स्वर्गमें बड़ी ऋद्धिकाधारक देव हुआ।

महाराज वैदर्भकी गन्धश्री नामकी पुत्री जो कि मंत्रीके पुत्र जितशत्रुके साथ ब्याही गई थी, वह पाप कर्मके उदयसे अपने देवर (जितशत्रुका लघुभ्राता) भीमसे आसक्त-चित्त होकर गुप्त रीतिसे भोगोंमें संसक्त-चित्त हुयी।

एक दिवस जितशत्रुने गुप्त रीतिसे निज पत्नी गन्धश्रीका कुत्सित कर्म देख लिया सो सत्य ही है कि अशोभन पापकर्म कितना ही छिपकर किया जाय, किंतु किसी दिन प्रगट हो ही जाता है।

जितशत्रुने अपनी भार्याका व्यभिचार जैसे ही देखा था कि तत्काल स्त्रियोंके चरित्र और संसार देह भोगोंसे विरक्त होकर तपोवनमें जाकर जैन दिगम्बराचार्यके निकट जिन दीक्षा धारण कर चिरकाल तपश्चरण कर अंत समय समाधि मरण कर चन्द्रमती (राजा वैदर्भकी रानी विंध्यश्रीके जीव) के गर्भसे यशोधर नामका पुत्र हुआ था।

वही राजा यशोधर! यशोधंके पीछे राज्य शासन करता न्यायपूर्वक प्रजा पालन करने लगा।

जितशत्रुकी माता निज पुत्रवधूके व्यभिचारके कारण जित-शत्रु का वैराग्य होना श्रवण कर निज भर्तार रामसहित ब्रह्मचर्य नामक व्रत ग्रहण कर अन्त समय समाधिमरण कर दृढ़ ब्रह्मचर्य के प्रभावसे विजयार्द्धगिरि पर उत्पन्न हुए।

और राजा वैदर्भका पुत्र जो गंधर्वसेन था वह भी गंधश्रीका अशोभन कर्म श्रवण कर स्त्रियोंके कुत्सित कर्मकी निन्दा करता श्रीमज्जैन मतकी शिक्षा ग्रहण कर अनशनादि व्रतका आचरण कर निदान सहित मरणको प्राप्त होकर तू मारिदत्त हुआ सो अब तू निज आत्माका स्वरूप जानकर आत्म कल्याण कर।

भो राजन् मारिदत्त! जन धन और कण (धान्य) कर पूर्ण गुण भरित और रमणीक मिथुलापुरीमें अन्य कथांतर श्रवण कर।

राजन्! उस मिथुलापुरी नामकी नगरीमें गुणोंके समूहसे शोभायमान सम्यक्त्व रत्नसे विभूषित व्रतदानरूप कार्य और श्रुतके अर्थका धारक जिनदत्त नामका श्रावक सेठ प्रचुर द्रव्यका धनी था।

नृपवर! राजा यशोधरका घोटक जो जलावगाहन समय महिष द्वारा मरणको प्राप्त हुआ था वह जिनदत्तकी गायके उदरसे दृढ़ और दीर्घ काय वृषभ उत्पन्न हुआ।

कालांतरमें एक दिन जब वह वृषभ आसन्न मृत्यु हुआ तब जिनदत्त सेठने उसे पंचणमोकार मंत्र श्रवण कराया। उसने संसारके दुःखोंसे तप्त बल धन ध्यान, पूर्वक णमोकार मन्त्रका श्रवण किया, जिसके फलसे हे राजन् मारिदत्त ! तेरी रुक्मिणि रानीके श्रेष्ठ गर्भसे पृथ्वी वलयमें प्रतापधारी, और शत्रुओंके मानका मर्दक रिपुमर्दन नामका पुत्र हुआ।

नृपवर ! राममन्त्रीका लघु पुत्र जो कि निज भावज गंधश्री से व्यभिचार कर्म सेवन करता था वह पाप कर्मके योगसे संसार-समुद्रमें पतन कर पापिष्ट कूबड़ा हुआ।

और कुटिल-चित्ता गन्धश्री व्यभिचार रूप कुत्सित कर्मसे क्षीण शरीरा कालकी कुटिलताकर मरणको प्राप्त होकर विमल-वाहन नृपकी रानीके गर्भसे अमृतमती नामकी पुत्री हुई सो यौवनारम्भमें दैवयोगसे यशोधर महाराजसे पाणिग्रहण हुआ।

नृपश्रेष्ठ ! वह अमृतमती जोकि पूर्व भवमें गन्धश्री थी उसने पूर्व संस्कारसे भीमका जीव जो कूबड़ा हुआ उससे पुनः व्यभि-चार सेवन किया।

राजन् ! अब तुझे यशोमति और अभयरुचिकुमारकी वार्ता सुनाता हूं अर्थात् राममन्त्री जो कि मरण प्राप्त होकर विजयार्ध गिरि पर उत्पन्न हुआ था, वह दिनकर तुल्य प्रतापका धारक होता हुआ ब्रह्मचर्य पूर्वक अणुव्रतोंका पालन कर शुभ कर्मके योगसे समाधिमरण कर यशोधर राजाकी रानीके गर्भसे यशोमति नामक वीर पुत्र हुआ।

राम मन्त्री की स्त्री जितशुत्रुकी माता जो कि ब्रह्मचर्यके प्रभावसे विजयार्धगिरी पर चन्द्रलेखा नामकी विद्याधारी हुई थी वह धर्म सेवन कर अन्त समय समाधिमरण कर यशोमतिको रानी कुसुमावली हुई थी वह समस्त विद्याओं में निपुण दोनों कुलोंको उज्वल करती हुई सुखपूर्वक तिष्ठी।

सुभटों कर रक्षा किया हुआ और तीक्ष्ण खुरों कर चपल जल पीते हुए राजतुरंगको जैसा ही देखा, तत्काल रोषके आवेशमें महिषेश्वरने घोड़ेको मारा।

इस प्रकार मुनि महाराजके वचन श्रवण कर महाराज मारिदत्तने श्री मुनिको नमस्कार कर पुनः पूछा— स्वामिन्! जो संशय तिमिरभास्कर! महिषने राज-तुरंगको किस कारण जल-पान करते मारा?

श्रीमुनि बोले-राजन्! यह प्राणी पूर्व वैरके योगसे एक दूसरेका घात करता है-पूर्वभवके रोष रूप अग्निमें भस्म होता है इसीप्रकार इन दोनोंमें पूर्वभवका वैर था अर्थात् घोटकके जीवने महिषके जीवका घात किया था उसी पूर्व वैरानुबंधी से महिषने घोटकका विनाश किया।

पृथ्वीपाल! ज्ञानीजन इसी कारण किसी जीवसे वैर धारण नहीं करने क्योंकि जो एकबार किसीका घात करता है वह अन्य जन्ममें उसके द्वारा स्वयं घात किया जाता है।

धरानाथ! जो कि बच्छड़ेके जीवको सेठने णमोकार मंत्र दिया था उसके प्रभावसे वह स्त्रीके गर्भमें तिष्ठा वह समयांतरमें जन्म लेकर यौवनारंभमें दिनकर तुल्य प्रतापका धारक राजा होकर पृथ्वीका पालक हुआ।

राजन्! वह तेरा पुत्र चिरकाल पर्यंत राज पालन कर भगवान् सर्वज्ञ वीतरागके मार्गका पथिक बनकर चित्रांगद नाम का धारक महाबली तेरे दिये हुए राज्यको त्याग, भगवती दीक्षा धारण कर, नदी सरोवरादिका अवगाहन करता हुआ पृथ्वी पर भ्रमण कर तेरे नगरके श्रेष्ठ देवीगृह प्रति आया।

वहां तप करता हुआ निजचित्तमें इसप्रकार वांच्छा करने लगा—मैं तपके प्रभावसे इस देवीकी विभूतिको प्राप्त होऊं।

नृपवर! उस मिथ्यादृष्टिने निदान द्वारा अमूल्य रत्नको

कौड़ियों में बेच डाला अर्थात् मरकर मिथ्यात्वके योगसे स्त्रीकी पर्यायमें चण्डमारी देवी हुई।

और तेरी माताका जीव संसारमें भ्रमण कर मिथ्यात्वके योगसे यह भैरवानन्द हुआ जिसे तूने वार २ प्रणाम किया, जिसकी आज्ञासे तूने देवोंकी वलिके अर्थ अनेक जीवोंके युगल एकत्रित किये।

अब यह भैरवानन्द जो कि अधोमुख किये हुए करुण रससे पूरित तिष्टा हुआ है यह मरण प्राप्त होकर कल्पवासी देव होगा।

श्री मुनिराज और भी कहने लगे—

राजन्! यह उज्जैनी नगरीका यशोबध नामका जगत्प्रसिद्ध उच्छ्रस्कंधका धारक प्रजापालक था। वह पट् दर्शन (मत)का भक्त था। उसने अनेक कुदेवोंके मठ बनाकर मूर्ति स्थापना की, अनेक तालाब और बावड़ी बनवाई, अनेक धर्मशालाएं बनवाईं, जिनमें सहस्रशः तापसोंको भोजनादि सामग्रीसे तृप्त किये।

तथा ऊंचे ध्वजा और शिखरों मंडित रत्न खचित जिनराज के मन्दिरोंकी उत्तम प्रकारसे प्रतिष्ठा भी कराई, जैन साधुओं को आहारदानभी दिया और दुःखित जीवोंको करुणाकर औषध आहारादि दान वितरण किया और अनेक प्रकारकी भोग क्रीड़ा करता चिरकाल पर्यंत राज्य शासन कर पश्चात् मरण समय मिश्रभावके योगसे मरण प्राप्त होकर कलिंग देशके स्वामी महामदकर मदोन्मत्त भगदत्त नामक महाराजकी भार्यासे सुदत्त नामका मैं पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ।

सुदत्त नामका राजा मैं राज्य शासन करने लगा। एक दिवस कोटपालने दृढ़ बन्धनयुक्त चोरको लाकर मेरे सन्मुख सभागृहमें उपस्थित किया और सनम्र होकर इस प्रकार विज्ञप्ति करने लगा—

कोटपाल—(हाथ जोड़कर) श्रीमहाराजकी जय हो। आज यह चोर बड़े प्रयत्नसे पकड़ा है, आप इसके योग्य दण्ड देनेकी आज्ञा दीजिये।

महाराज सुदत्त (मैं)—इस समय इस चोरको कारावासमें स्थापित करो पश्चात् विचार कर इसको दण्ड दिया जायगा।

इस प्रकार मेरी आज्ञा सुनकर कोटपाल (जो आज्ञा महाराजकी) कहकर उस चोरको राजवाडेमें ले गया।

श्री सुदत्ताचार्य कहने लगे—राजन्! कोटपाल चोरको ले गया पश्चात् मेरे निकट तिष्ठे हुए विद्वान् ब्राह्मणों से मैंने पूछा कि इस दुष्ट चोरको क्या दंड देना उचित है?

एक ब्राह्मण—श्री महाराज! इस चोरके प्रथम पांव, कान नाक छेदन करे पश्चात् इसका मस्तक छेदन करना चाहिए।

द्वितीय ब्राह्मण—पृथ्वीनाथ! यद्यपि इस चोरको यही दंड उचित है तथापि ऐसा करनेसे आप पापके भागी अवश्य होंगे। इस कारण इस पापसे मुक्त होनेके प्रायश्चित्तका प्रथम विचार कर लेना आवश्यकीय है।

अन्य ब्राह्मण—श्री महाराज, धरानाथ! यद्यपि इनका कहना सर्वथा सत्य है परन्तु राजनीतिके विषयमें ऐसा विचार नहीं किया जाता क्योंकि यदि इसके अपराध योग्य दण्ड न दिया जायगा तो भी आप पापके भागी होंगे क्योंकि अपराधीको दंड देना राजनीतिके अनुसार राजाका धर्म है और यदि अपराधके योग्य दंड न दिया जायेगा तो समस्त प्रजाजन अन्यायसे प्रवर्त्तने लग जायेंगे।

इसप्रकार विद्वान् विप्रोंकी वार्त्ता श्रवण कर मैं सुदत निज हृदय में विचार करने लगा—अहो! इस संसार में जैसा करो उसीमें पाप है। यदि दंड देते हैं तो पाप और जो छोड़ देते हैं तो भी पाप है, इस कारण समस्त पापोंकी जड़ यह राज्य ही है

इसकारण इस राज्यको जीर्ण तृणकी भांति त्यागकर दिगम्बर दीक्षा धारण करूंगा।

इसप्रकार विचार कर समस्त राज्य और कुटुम्ब आदिसे महत्व त्याग निर्जन वनमें समस्त परिग्रहका त्यजन कर जैनेश्वरी दीक्षा धारण करता हुआ। पश्चात् तीर्थक्षेत्रादिकोंमें पर्यटन करता हुआ संघ सहित अनेकवार इस नगरमे आया[1]।

सुदत्ताचार्य कहते हैं कि मैं इस अवसरमें यहां चार प्रकारका संघ जो मुनि आर्यिका श्रावक श्राविकाके सहित तीव्र तपश्चरण करता हुआ तृण और कांचनको समान मानता हुआ, शत्रु मित्र को समान जानता हुआ आया। उजैन नगरी विषैं यशोधर राजाका मंत्री गुणसिन्धु नामका था।

जिसने मनुष्योंमें शांति उत्पन्न की उसनें अपना मंत्री पद नागदत्त नामा पुत्रको दिया जो घरके भारका वहनेवाला अर पिताके चरणोंका भक्त था। गुणसिंधु मंत्री परिग्रहको त्यागकर साथ घर विषैं तिष्ठा। वह शुभ भावकर युक्त शुभ परिणाम करि विचरे है। वह शरीर त्याग श्रीपति नाम वणिकके घर गोवर्द्धन नामा पुत्र हुआ।

कैसा है गोवर्द्धन ! गुणन कर शोभायमान अर सम्यक्त्ववान्, अर दैदीप्यमान है ललाट जाका, अरु करुणा विषै तत्पर, अर परोपकारी, अर यशोमति राजाको सम्वोधन करनेवाला, अरु हेमारिदत्त राजा देखियो, उदासीन मेरे संघविषैं तपलक्ष्मीका घर अर नरेन्द्र है सो समस्त शब्द सुन अर आनन्द अर शोक कर पूरित ही कहा, मानो या अवसर में मैं हूं सो विनय ताहि करी।

नोट—(१) इस से आगे हमको नई टीका पंडितजी टीकाकारकी स्वास्थ्य रक्षा न रहनेसे नहीं प्राप्त हुई इस कारण यहां से हमने पुरानी टीकासे नकल कर दिया है।

अर हे साधो, सम्बोध कर अर प्रभु जो आप हो सो धर्म-लाभ है सो किया भले प्रकार प्रसन्न होय मोकूं दीक्षा ताहि दो तपश्चरण ताहि आचरण करूंगा। अर शिक्षा ताहि पालन करूंगा। तदि गुरु दीक्षा दिगम्बरपणा विषैं तिष्ठा। हे मारिदत्त राजा, ऋद्धि है सो त्याग, तदि नरपति है सो नयप्रमाण करि जीती है कषाय जाने ऐसा पैंतीस नरपति सहित निर्ग्रन्थ दीक्षा कर शोभायमान् भया। अरु त्यागा है राज जाने ऐसा योगीश्वर है सो भला वैराग्य ताहि भया। अर भैरवानंद है सो प्रणाम करे है।

भो स्वामिन्! स्वामीपणा कर दीक्षाके प्रसादसे शोभायमान् है ताहि करो। गुणविशाल ऐसा मुनि है सो कहै है, दीक्षा तेरे नाही है जा कारणतें तेरे हाथमें छह अंगुली हैं। तो हे देव! कहा करों। तदि साधु कहे हैं कि तू अणुव्रतोंको पालन कर, तेरी आयु अल्प है सो दीखे है सो तू देह विषैं शीघ्र सुन्दर उपाय कर। तदि भैरवानन्दने संन्यास ग्रहण किया। बाईस दिनपर्यंत चार प्रकारका सर्व आहार त्यागकर और समाधिमरण कर तीसरे स्वर्ग विषै भैरवानन्द उपजा।

बहुरि अभयरुचि क्षुल्लकने हू क्षुल्लकपणा त्याग तहाँ तिसही क्षण विषैं ऋषिपणा अंगीकार किया। अर कामदेवको ध्यानके प्रभाव कर रोका, अरु पांचों इन्द्रियोंके विषयनते इंद्रियनको रोकी, अरु अभयमति भी विरक्त भाव होती भई। कुसुमावली ने अर्जिकाका चरित्र अङ्गीकार किया। निर्ग्रन्थ मार्गको निर्मल ग्रहण किया।

अरु अभयरुचि जे मुनि तिनसे गुणका समूह तिनको स्मरण करते दोनों अभयमति और कुसुमावली तिसदेवीके वनविषैं चार प्रकारकी आराधना मनविषें धर दर्शन, ज्ञान, चारित्र, अरु तप थे चार आराधना आराधकर अरु बारह प्रकारके तप पापका हरनेवाला, अरु पन्द्रह दिनका सन्यास, अरु भली समाधि-

मरण कर दोनों ही प्राण त्याग दूसरे ईशान स्वर्ग विषैं देव होते भये। उस समय शीघ्र ही सैंकड़ों देव सेवा करने लगे। सम्यक्त्व के बलसे स्त्री लिंग छेद देव होय विमान संबन्धी अनेक क्रीड़ा करते भये।

तहां दोऊ देव जिन मंदिरोंमें अकृत्रिम प्रतिमाओंकी वंदना करते भए। कैसे हैं जिनभवन ? जगत विषें उत्तम हैं अरु सम्यक्त करि स्वर्ग मोक्ष ताहिके प्राप्त करानेवाले हैं। अरु सम्यक्त्व कर निश्चयते सुख होय ही है।

तिस देवीके बनमें सुदत्ताचार्य चार प्रकारके संघ कर वेष्टित सिद्धगिरि नामा पर्वत पर यतिपति हैं सो शीघ्र ही प्राप्त भया तहां सुदत्ताचार्य सिद्धगिरि पर्वत विषे तिष्ठते संसारकी अनित्य भावनाको चितवन करते हैं कि संसारकी गति है सो नित्य नाहीं है। सुन्दर सत्य आराधनाको आराधन कर और एकाग्र चित्त हो सत्यार्थ पणा कर सात तत्वोंको जान संन्यास धारण कर भली समाधिसे युक्त सातवें स्वर्गमें प्राप्त भये।

यरु यशोमति राजा अरु कल्याणमित्र, अरु अभय नामा, अरु मारिदत्त अरु वणिक कुल रूप कमलके बोधनेमें सूर्य गोवर्द्धन सेठ, अरु गुणके समूह कर विशिष्ठ, अरु कुसुमावली पाली है तीन गुप्ति जाने, ऐसी अभयमति या प्रकार राजाकी पुत्री भव्य दुर्नयके नाश करनेको तप आचरण कर और सुन्दर सन्यास कर स्वर्गको सर्व ही प्राप्त भए।

गन्धर्व नगर विषैं कन्हड़का पुत्र मुझ पुष्पदंत कविनें भवनका वर्णन थिर मनकर किया सो मोकूं दोष नाहीं दीजिये, पूर्व कवि वछराय करि कहा सूत्र ताहि प्राप्त होय अरु मैं कवि पुष्पदंतने यशौधर चरित्र रचा सो जानना।

जो जीदया विषैं तत्पर प्रहारको नाहीं करनेवाला ब्रह्मचारी, अरु राया है जरा मरण जाने और ज्ञान ही हैं नेत्र जाके ऐसा ाप रहित धर्म अरु पुष्पदंत निज मेरे शरण होहु ।। छ ।। पपको नाश करने वाली मुग्धनामा ब्राह्मणीके उदर विषैं उपग सुन्दर श्याम है वर्ण जाका अरु काश्यपगोत्र अरु केशव ब्राह्मणका पुत्र जिनेन्द्रके चरणोंका भक्त, अरु धर्मविषैं आसक्त,व्रसंयुक्त, उत्तमप्राणी, निःशंक, अभिमान करि चिह्नित अर प्रसन्न है मुख जाका ।

औरकविका खण्ड कहिंये अल्पकवि, अरु रंजायमान करी है पंडितोंगे सभा जाने, अरु यशोधर महाराजकी कथा करी है, जो पुरु मनोज्ञ-मन कर सुने हैं पढ़े हैं पढ़ावे हैं ।

और सका जगतमें प्रकाश करे हैं और जो मनविषैं भावे हैं सो नर ज्ञानावरणादिक कर्मके पटलको उखाड़ शास्वती केवलज्ञानसम्पदाको पाय मोक्ष प्राप्त होय है ।

सो हे मात ! हे महासती देवी ! सरस्वती ! सकल सन्देह दुःख तूनें हरे हैं । हे भट्टारकी ! तू तीन भुवनविषैं सार है, सो मुझ पुष्पदंतको जिन कर कहा वचन रूप वाणी क्षमतु कहिंये क्षमा करो ।

इति महामान्य नन्हकर्णाभरण पुष्पदन्त महाकवि विरचित श्रीयशोधरचरित्र महाकाव्यमें यशोमति, कल्याणमित्र, मारिदत्त और अभयरुचि स्वर्ग गमन नामक चतुर्थ परिच्छेद समाप्त हुआ ।। ४ ।।

एस०नारायण एंड संस ७११७/१८ प्रिंटिंग प्रेस,पहाड़ी धीरज देहली